CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी '95

सहारनपुर

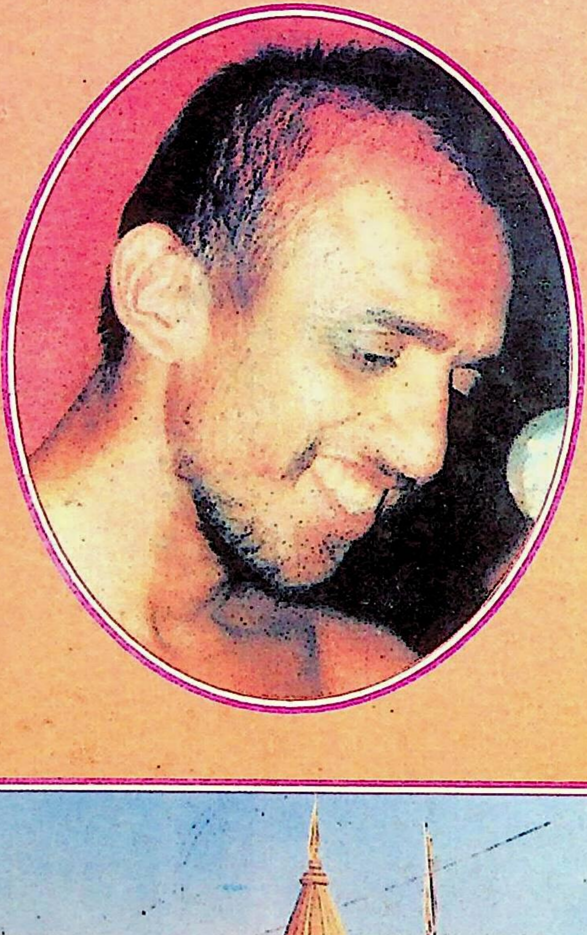

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आख्या

जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी '95

सहारनपुर

द्रव्यदातार एवम् आयोजक :

श्री १००८ आदिनाथ पंचकल्याणक महोत्सव समिति

सहारनपुर

प्रकाशक :

सराक साहित्य प्रकाशन दिल्ली-110 095

प्राप्ति स्थल :

आनन्द जैन

803 कटरा छतरी, नई सड़क, दिल्ली-110 006

4496
29-7-99

विशेष : लेखकों द्वारा व्यक्त तथ्यों / विचारों के वे स्वयं उत्तरदायी हैं। प्रकाशन संस्था / संपादकगण का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आख्या
जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी '95
सहारनपुर, 25-27 मई '95

पावन प्रेरणा एवम् मंगल आशीर्वाद

परमपूज्य, युवामनीषी, सराकेद्धारक, आगमवेत्ता

उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज

एवम्

मुनि 108 श्री वैराग्य सागर जी महाराज

सम्पादक :

प्रा० निहाल चन्द जैन

शा० उ० मा० विद्यालय क्रमांक ३ के सामने

बीना (म०प्र०)

डॉ० नीलम जैन

सहारनपुर ☎ 0132-722673

डॉ० अनुपम जैन

इन्दौर

द्रव्यदातार एवम् आयोजक :

श्री १००८ आदिनाथ पंचकल्याणक महोत्सव समिति

सहारनपुर

प्रकाशक :

सराक साहित्य प्रकाशन दिल्ली-110 095

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

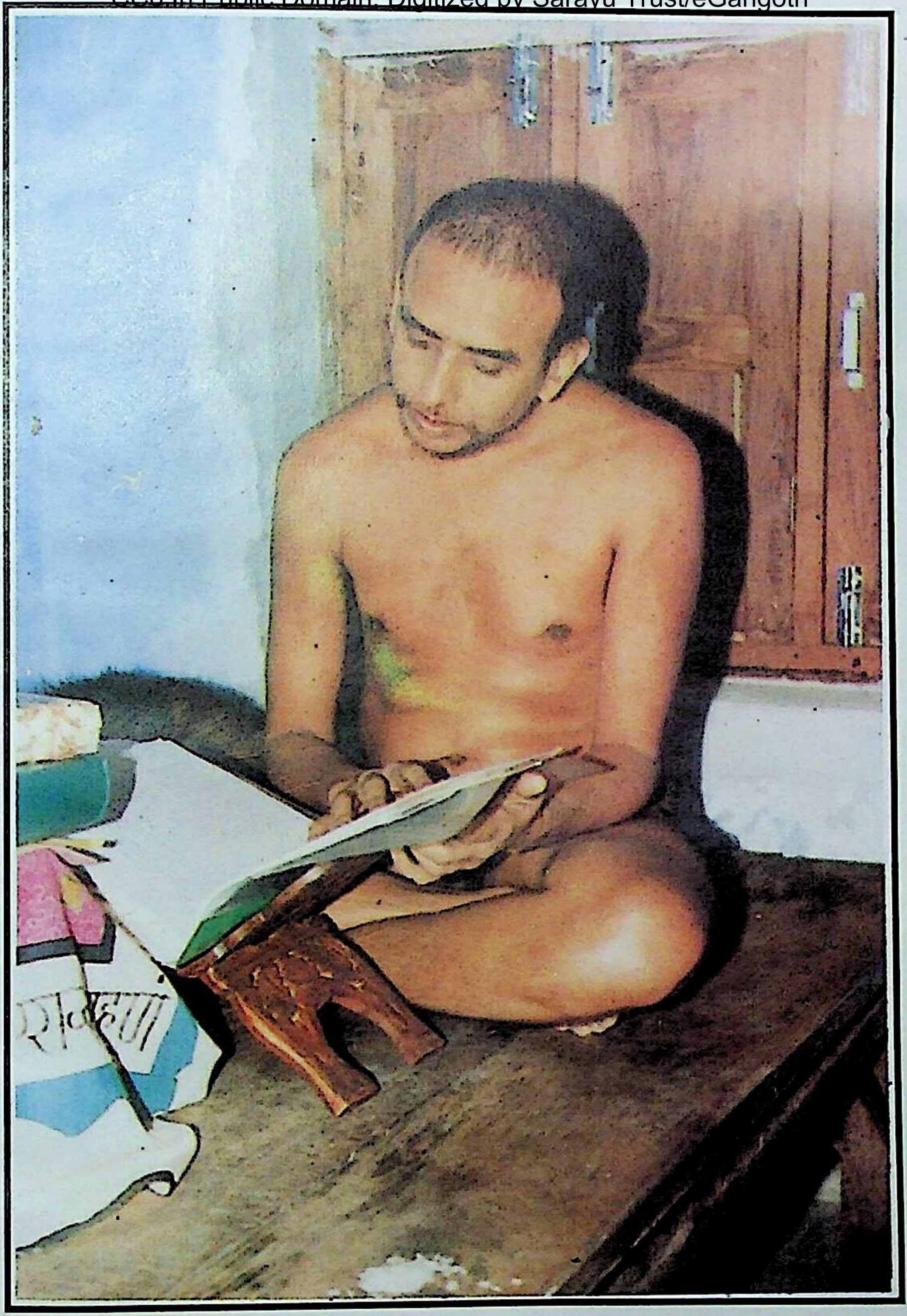

पूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञान सागर जी महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूज्य मुनि श्री 108 वैराग्य सागर जी महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी '95

जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी '95

शोध-निबन्ध-अनुक्रम

1.	मंगल आशीष	उपाध्याय ज्ञानसागर जी	19
2.	सम्पादकीय	प्राचार्य निहाल चन्द जैन	21
3.	पारस पुरुष : उपाध्याय ज्ञानसागर जी	डॉ. नलिन शास्त्री	27
4.	सहारनपुर में ऐतिहासिक तीस दिन	डॉ. रूवी जैन	35
5.	सहारनपुर के जैन मन्दिर	उपश्रेणिक जैन	40
6.	संगोष्ठी आमन्त्रण प्रारूप	निहाल चन्द जैन प्राचार्य	45
7.	स्वागत भाषण	विरेश्वर प्रसाद जैन	47
8.	संक्षिप्त आख्या		48
9.	आमंत्रित वैज्ञानिकों/विद्वानों की सूची		53
10.	कंदमूल एवं अन्य अभक्ष्यों के.....	डॉ. अशोक जैन	55
11.	पौद्गलिक स्कन्धों का वैज्ञानिक.....	अजित कुमार जैन	59
12.	आचार्य श्रीधर एवं उनका गणितीय.....	डॉ. अनुपम जैन	74
13.	श्रावकाचार में वर्णित अष्टमूल गुण.....	डॉ. अशोक कुमार जैन	82
14.	मानव शरीर : चुम्बकीय गुणों का.....	डॉ. अभय प्रकाश जैन	89
15.	मंगलमंत्र णमोकार : एक विश्लेषण	डॉ. जय कुमार जैन	96
16.	विशुद्धि का गणितीय पक्ष	प्रो. लक्ष्मी चन्द जैन	100
17.	मांसाहार और मद्यपान से शरीर.....	डॉ. एम.एम. बजाज	108
18.	वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए पशु.....	डॉ. नीलम जैन	112
19.	पर्यावरण संरक्षण एवं जैन दृष्टि	डॉ. नलिन के. शास्त्री	116
20.	अनेकान्त : एक वैज्ञानिक दृष्टि	पं. निहालचंद जैन	118
21.	जैन आहार की वैज्ञानिकता	निर्मल जैन	124
22.	जैन भौतिकी और नवीन भौतिक	डॉ. नंदलाल जैन	132
23.	आधुनिक विज्ञान एवं जैन दर्शन.....	डॉ. पारसमल अग्रवाल	134
24.	जैन आगमों में उपलब्ध गणितीय.....	डॉ. रमेश चन्द जैन	147
25.	उपवास और उसकी वैज्ञानिकता	डॉ. रमेश चन्द जैन	155
26.	जैन आहार- एक वैज्ञानिक विवेचन	डॉ. सुपार्श्व कुमार जैन	161
27.	पर्यावरण संरक्षण और जैन धर्म	डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन	168

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूलनायक भगवान महावीर स्वामी जी
श्री दि० जैन पंचायती मन्दिर
जैन बाग (बीर नगर)

भगवान महावीर स्वामी जी
नवनिर्मित जिनालय चन्द्रनगर की नवनिर्मित
वेदिका (प्रथम तल) में स्थापित

श्री 1008 पार्श्वनाथ जी
भगवती कालोनी मन्दिर की मूलनायक प्रतिमा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवनिर्मित जिनालय (भगवती कालोनी)

श्री दिगम्बर जैन पंचायती मन्दिर जैन बाग (संगोष्ठी स्थल)

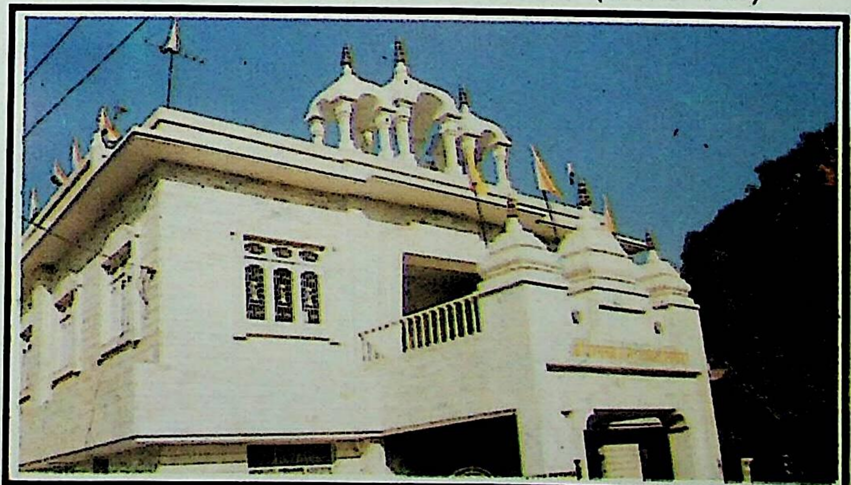

नवनिर्मित मन्दिर चन्द्रनगर, सिविल लाइन्स

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

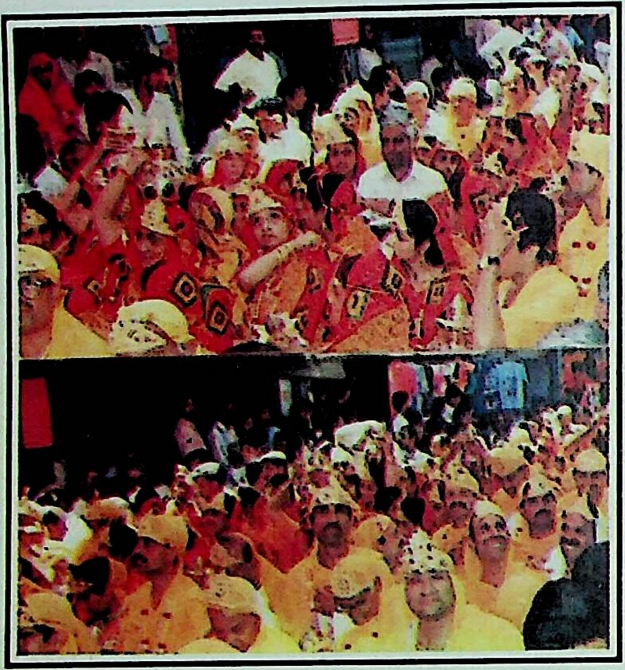

जन्म कल्याणक
समारोह

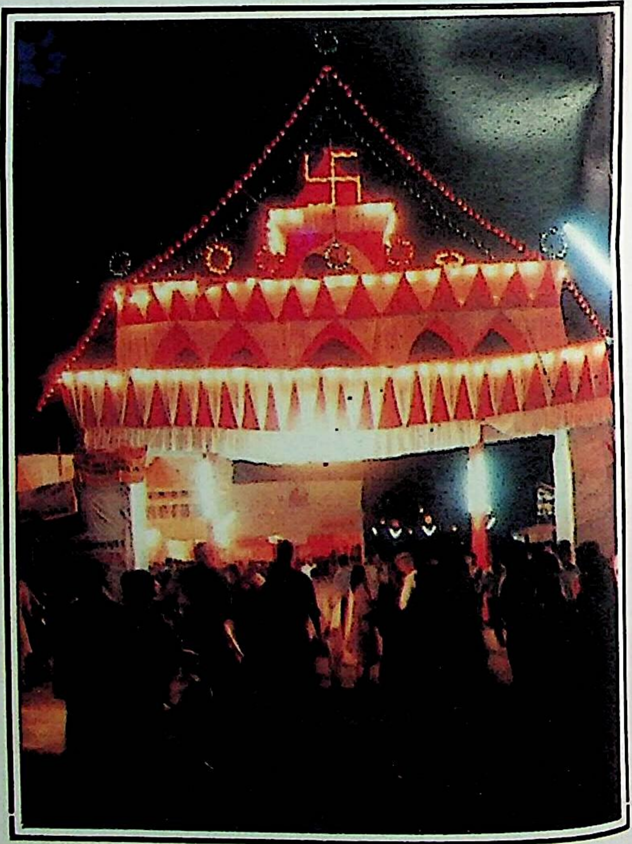

रात्रि में जगमगाती
अयोध्या नगरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महिला सम्मेलन में उपाध्याय श्री जी से मंगल आशीष लेते हुए महिला वृन्द

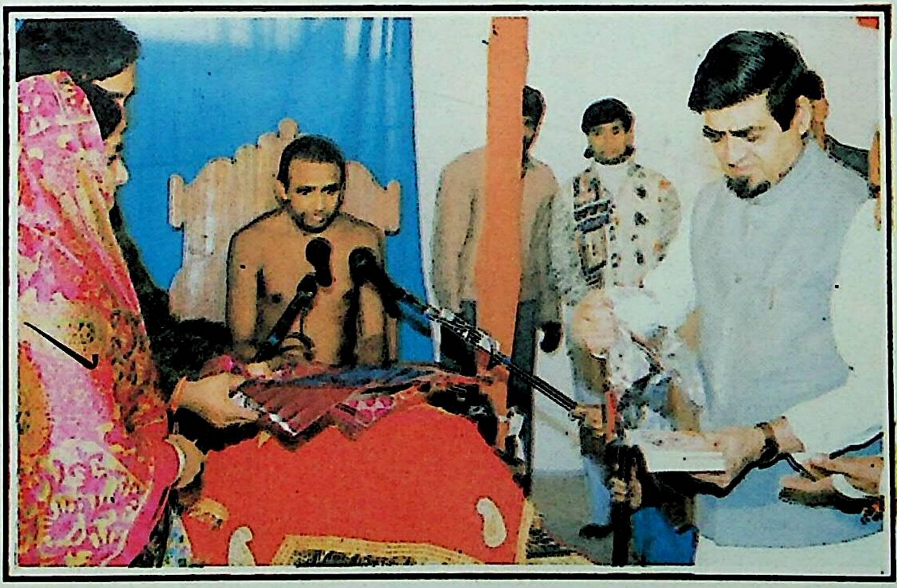

केन्द्रीय मंत्री श्री जगदीश टाइटलर उपाध्याय श्री जी के चरण सानिन्ध्य में।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

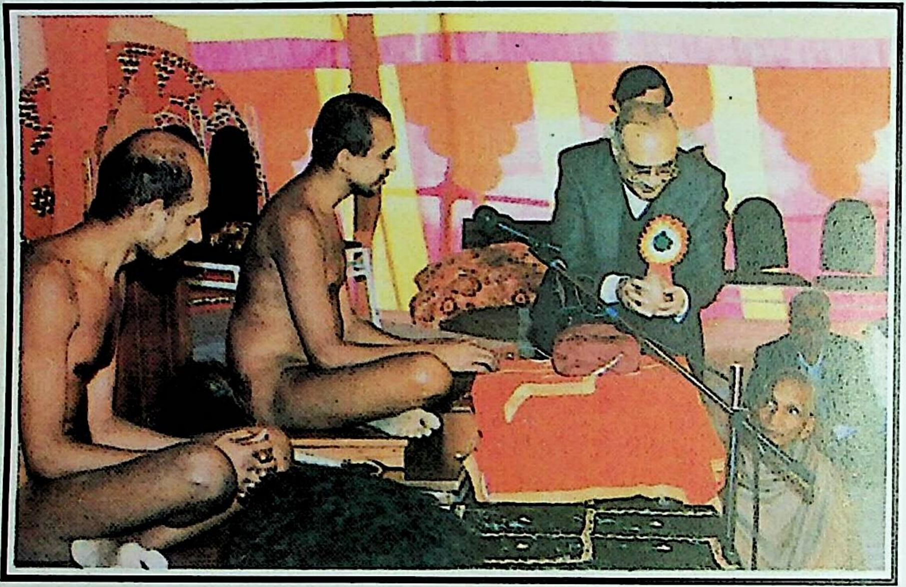

भारतवर्षीय दि० जैन सराक ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री साहू अशोक कुमार जैन उपाध्याय श्री जी के चरणों में श्रीफल अर्पित करते हुए ।

पंचकल्याणक के मध्य समोवशरण का दृश्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

L प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन फिरोजाबाद और R श्री मंगल किरण जैन

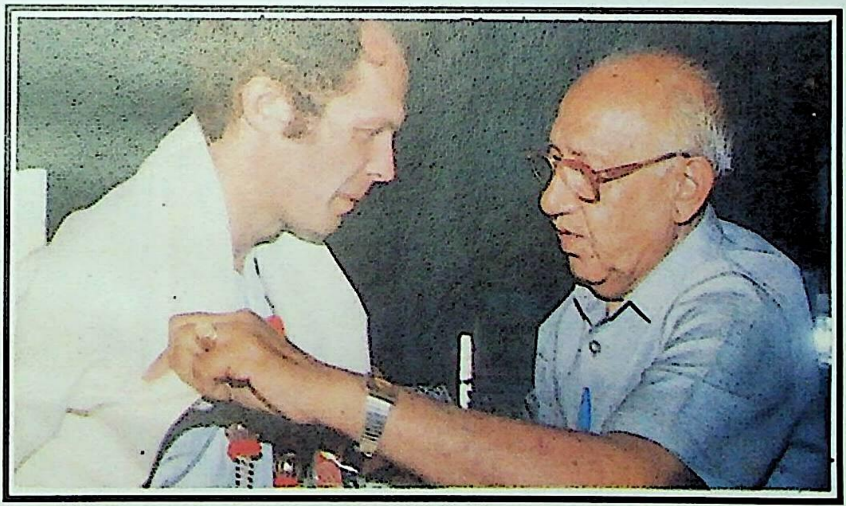

L श्री क्रीवोव सरगुई (रूस) का सम्मान करते हुए R श्री विरेश्वर प्रसाद जैन

R डॉ० पारसमल अग्रवाल (उज्जैन) का सम्मान करते हुए L श्री धर्मदास जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

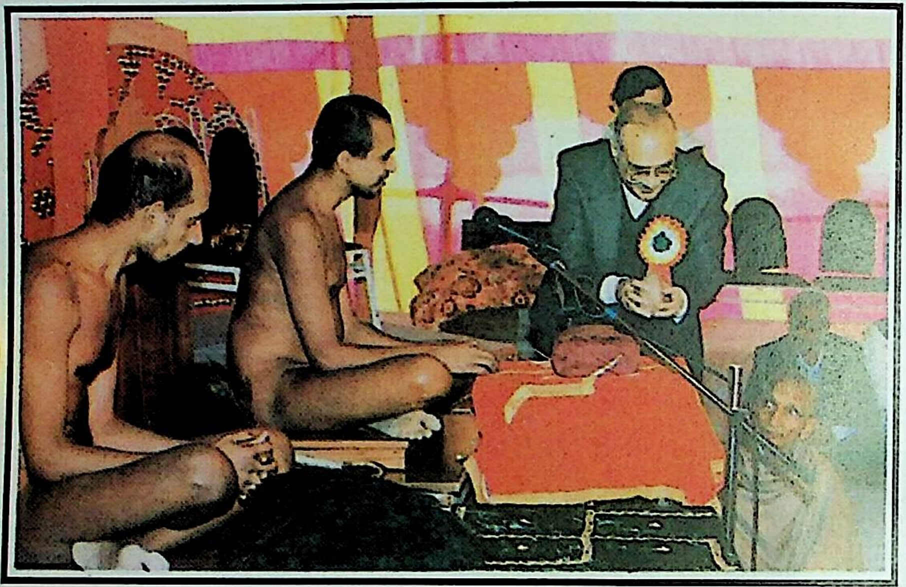

भारतवर्षीय दि० जैन सराक ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री साहू अशोक कुमार जैन उपाध्याय श्री जी के चरणों में श्रीफल अर्पित करते हुए।

पंचकल्याणक के मध्य समोवशरण का दृश्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

L प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन फिरोजाबाद और R श्री मंगल किरण जैन

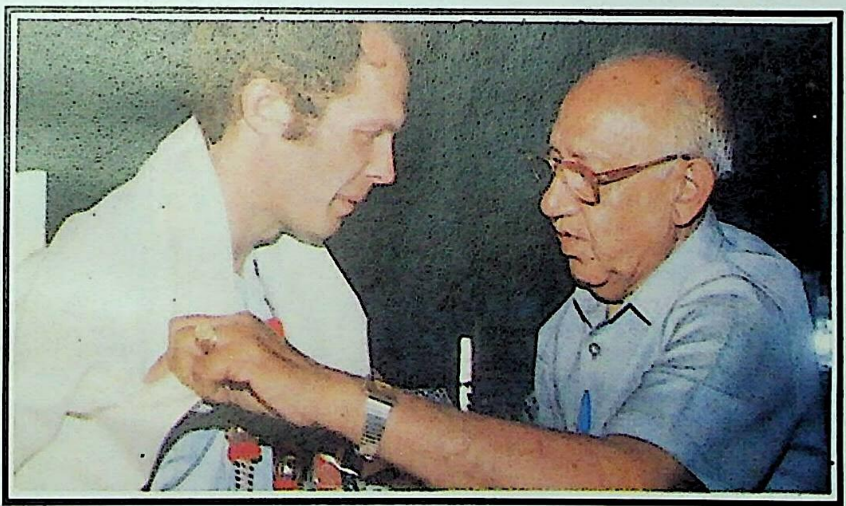

L श्री क्रीवोव सरगुई (रूस) का सम्मान करते हुए R श्री विरेश्वर प्रसाद जैन

R डॉ० पारसमल अग्रवाल (उज्जैन) का सम्मान करते हुए L श्री धर्मदास जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

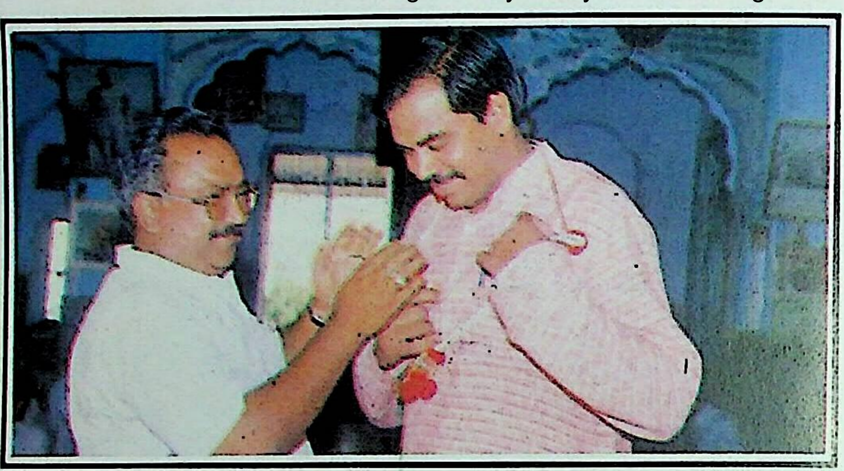

R [illegible] [illegible] माहन भारती का सम्मान करते हुए L श्री अनिल कुमार जैन

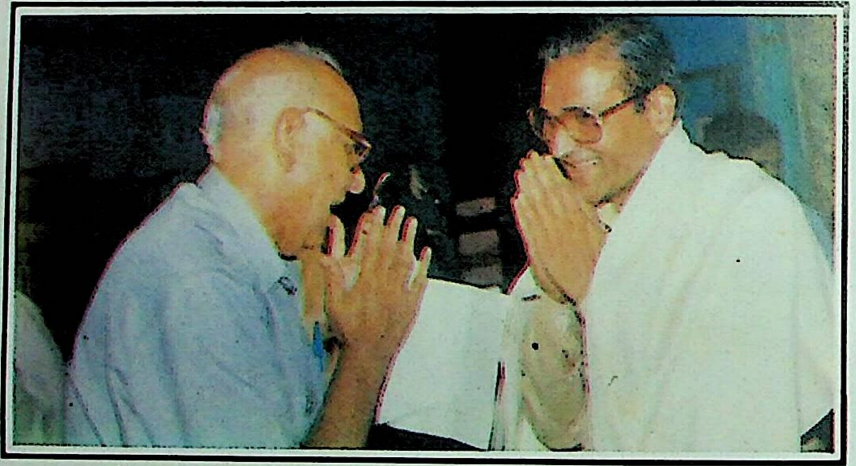

R पा श्री निहाल चन्द जैन का सम्मान करते हुए L श्री विरेश्वर प्रसाद जैन

शोधा [illegible] का वाचन करते हुए डॉ० अभय प्रकाश जैन (ग्वालियर)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

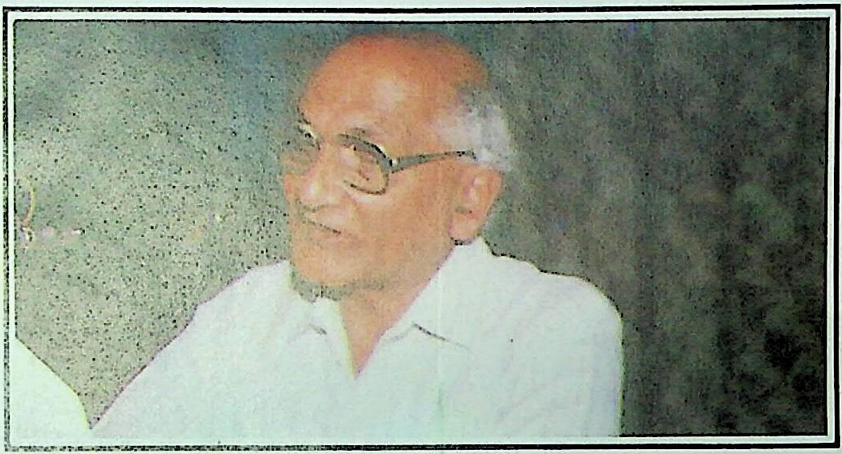

डॉ० नन्द लाल जैन (रीवाँ)

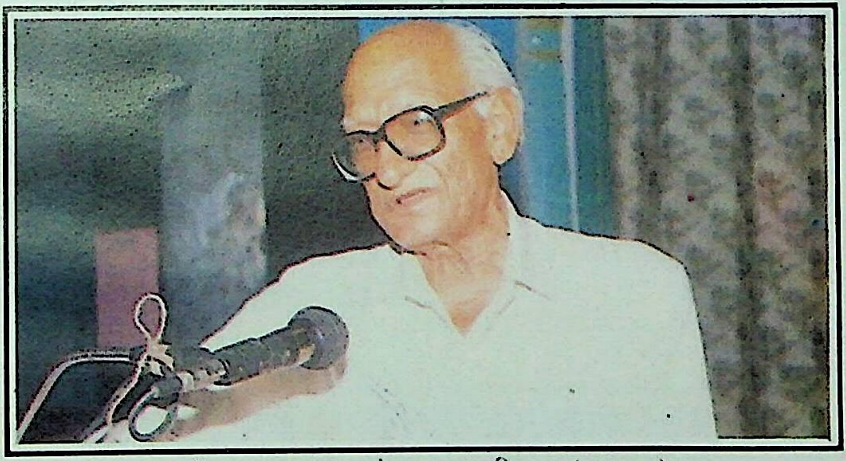

डॉ० कस्तूरचन्द जैन, कासलीवाल (जयपुर)

डॉ० जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डॉ० नलिन के० शास्त्री (बोधगया)

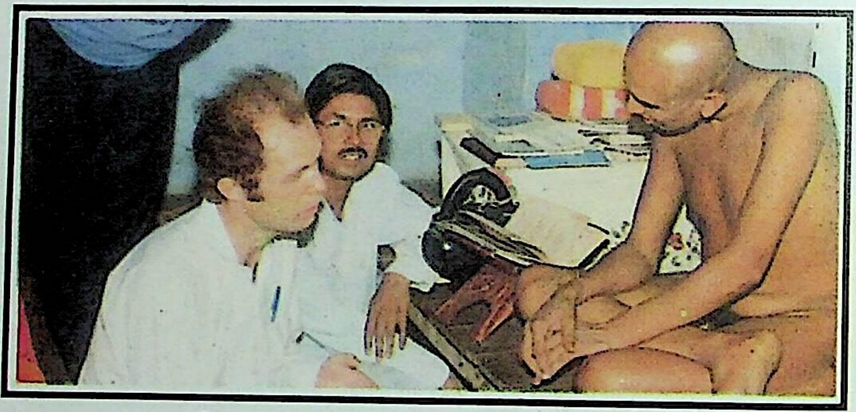

पूज्य उ० श्री ज्ञानसागर जी से चर्चा करते हुए जैन गणित के शौधार्थी क्रीवोव सरगुई (रूस) साथ में है डॉ अनुपम जैन

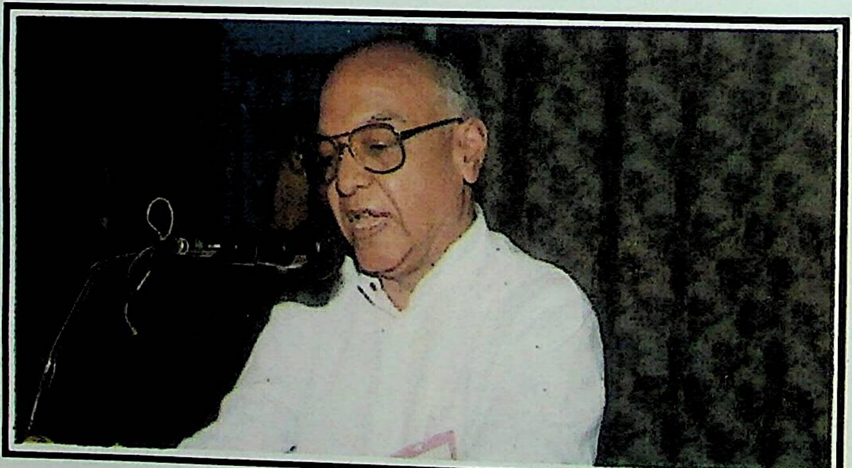

पं० निर्मल जैन (सतना)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डॉ० अजित कुमार जैन (विदिशा)

डॉ० श्रीमती नीलम जैन (सहारनपुर)

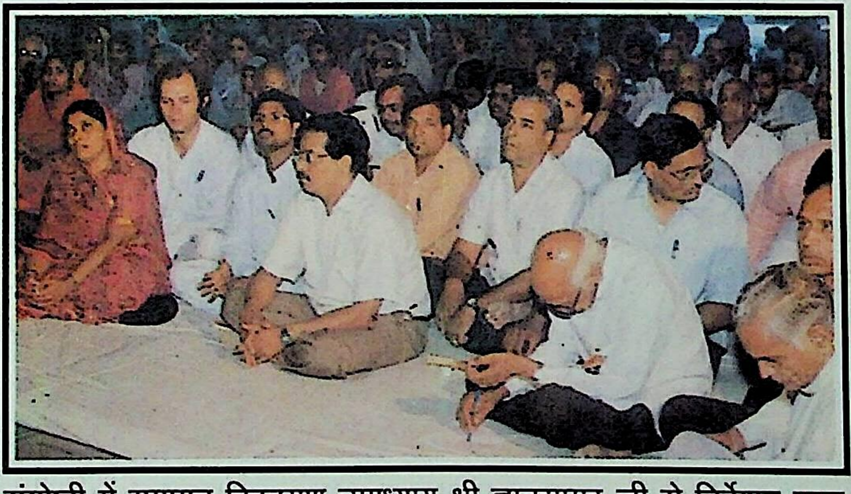

संगोष्ठी में समागत विद्वद्गण उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी से निर्देशन प्राप्त करते हुए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव समिति

मंगल किरण जैन
(अध्यक्ष)

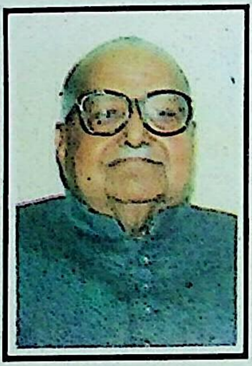

विशाल चन्द जैन
(उपाध्यक्ष)

वीरेश्वर प्रसाद जैन
(महामंत्री)

नरेश चन्द जैन (एडवोकेट)
(मंत्री)

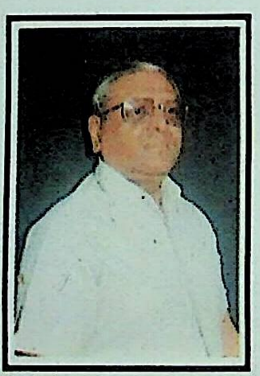

विजय कुमार जैन
(कोषाध्यक्ष)

अनिल कुमार जैन
(मंत्री)

जितेन्द्र कुमार जैन
(मेला मंत्री)

विशाल चन्द जैन
(उपमंत्री)

दीपक गर्ग
(उपमंत्री)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री चन्द जैन
(चौधरी)

धर्मदास जैन
(चौधरी)

नरेश चन्द गर्ग
चौधरी

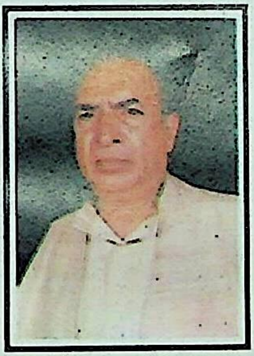

मृगेन्द्र कुमार जैन
(चौधरी)

कुलभूषण जैन
(उपाध्यक्ष)

सुरेश चन्द जैन
(चौधरी)

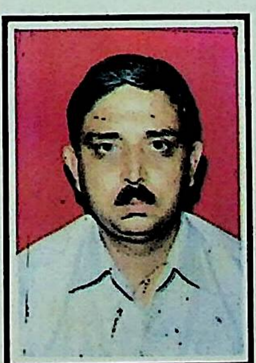

पवन कुमार जैन
(उपाध्यक्ष)

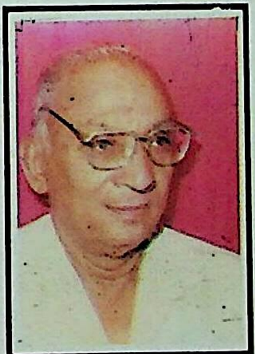

इन्द्र सैन जैन
चौधरी

सुभाष चन्द जैन
(उपाध्यक्ष)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शान्ति कुमार जैन
(मंत्री)

शैलेन्द्र कुमार जैन
(सहमंत्री)

मुकेश जैन
(उपमंत्री)

सुधीर कुमार जैन
(उपमंत्री)

अरविन्द कुमार जैन
(उपमंत्री)

अशोक जैन
(उपमंत्री)

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव समिति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमपूज्य उपाध्याय १०८ श्री ज्ञान सागर जी महाराज का मंगल आशीष

हमारा धर्म कितना व्यवहारिक, वैज्ञानिक और मानव कल्याणकारी है, इस पर आज ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है। विश्व के इस प्राचीनतम धर्म के गूढ़ सूत्रों, असंख्य ग्रन्थों और कठिन सिद्धान्तों से घबराकर जो लोग इसे अनुपयोगी, अनावश्यक, पुरातन वस्तु समझ बैठे हैं और आधुनिक सभ्यता के भुलावे में आकर, उससे दूर भागने की चेष्टा कर रहे हैं उनसे मुझे यही कहना है कि जीवन जीने की वास्तविक कला, कर्म करने की उचित पद्धति और प्राणी मात्र की सुरक्षा के सही उपाय सिखलाने वाला यदि सर्वश्रेष्ठ गुरु पृथ्वी पर आज भी जीवित है तो वह हमारा प्राचीनतम यही वैज्ञानिक जैनधर्म ही है।

हमें आज धर्म को वैज्ञानिक ढंग से समझना होगा और इस बात से सहमत होना पड़ेगा कि धर्म के अभाव में जीवन बिना खेवक की नैया है, बिना चालक की गाड़ी है, इस युग के महान वैज्ञानिक ने भी अन्ततः यह स्वीकार कर लिया है कि "विज्ञान के बिना धर्म लंगड़ा है और धर्म के बिना विज्ञान अन्धा है।" जीवन के अभ्युदय, विकास, रक्षा और सार्थकता के लिए ही धर्म का आविर्भाव हुआ, धर्म ने जीवन के लिए सुदृढ़ रक्षा-कवच तैयार किया, सुकर्मों के लिए विधान बनाया और दुष्कर्मों के लिए प्रतिबन्ध लगाये। मनुष्य के जीवन को हर प्रकार उन्नतिशील, सक्रिय, स्वस्थ और सुव्यवस्थित बनाये रखने के लिए हमारे तत्ववेता आचार्यों ने वैज्ञानिक सिद्धान्तों को इसलिए धर्म कहा जिससे मानव अपने स्वभावानुरूप आचरण कर सकें।

जैन धर्म अनादि निधन है, त्रैकालिक है, विश्व का समस्त प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष ज्ञान द्वादशांग वाणी में समाहित है। वर्तमान युग को विज्ञान का युग समझकर हम आदि धर्म को गौण समझें तो यह युक्तिसंगत नहीं है। जैनाचार्यों ने अपनी सूक्ष्म सर्वज्ञ दृष्टि से इस यान्त्रिक युग को भी अवश्य ही देखा था इसीलिए जैनागम की समस्त प्रस्तुति यान्त्रिक शोध बोध के इस युग में भी अपराजेय है। यह अवश्य है जैनागम ज्ञान विज्ञान के प्रवाह में ही घिरकर कर्तव्य की इतिश्री समझने का खण्डन करता है, चूँकि जैनशासन में कहा गया है-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(जिससे तत्व का परिज्ञान होता है, जिससे अति चंचल चित्त का निरोध होता है, जिससे मलिन आत्मा विशुद्ध हो जाती है, उसको जिनशासन में ज्ञान कहते हैं) (मूलाचार)

ज्ञान में आत्मकल्याण करना ही अभीष्ट माना है।

वर्तमान का विज्ञान जैनागम का एक अंश है, विज्ञान में खण्डन मण्डन बराबर चल रहा है,

जैनागम स्वयं में परिपूर्ण है, कोई भी ऐसी विज्ञान गणित की शाखा नहीं है जिसकी प्रचुरता जैनागम में नहीं है। आवश्यक यह भी हो जाता है विज्ञान के इस ज्ञान का जैन विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुतीकरण हो इससे युवा पीढ़ी की आस्था धर्म पर दृढ़ होती है वह अपने ग्रन्थों को वैज्ञानिक शोध कोष मानकर श्रद्धा करेगा तथा ज्ञान से धर्म के सही राजपथ पर सरलता से चलेगा। इसी उदात्त उद्देश्य से जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी '९५ में पठित विभिन्न विषयों के अधिकारी विद्वानों के शोधालेख का स्मारिका में एकत्रीकरण का प्रयास प्रशंसनीय है। इससे स्वाध्याय प्रेमियों, अनुसंधानित्सुओं को पर्याप्त लाभ होगा तथा जैन धर्म के आधुनिक विज्ञान सम्बन्धी दृष्टिकोण का भी सभी को परिचय प्राप्त होगा। शोध लेख प्रस्तोताओं, द्रव्यदातारों, सम्पादकों एवं विद्धज्जनों को आशीर्वाद।

—उपाध्याय ज्ञानसागर

✣✤✣

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पादकीय

सही रूप निखरेगा उस दिन, मानव के उत्थान का।
जिस दिन होगा मिलन विश्व में, धर्म और विज्ञान का।।

- मूर्त की खोज- विज्ञान है। अमूर्त का अनुभव धर्म है।
- जो दृश्य है- वह भौतिक है, वह संयोगी है- वियोग उसके साथ जुड़ा है। संयोग/वियोग का सुख-दुःख, वस्तु के साथ है अतः इन्हें पुद्गल की पर्याय कहा है।
- जो अभौतिक है- वह शाश्वत् है। वह अदृश्य- चेतना है। चेतना- ज्ञान और दर्शन की शक्ति से युक्त, आत्मा का अविनाशी गुण-धर्म है।
- जो अणु और परमाणु की शक्ति का चितेरा है- वह विज्ञान है। जो चेतना की शक्ति से आन्दोलित है- वह धर्म है। बाहर की खोज- विज्ञान है। भीतर की खोज- धर्म है। दोनों खोजें- कार्य-कारण सिद्धान्त पर खड़ी हैं।
- विज्ञान कहता है- भगवान से क्या लेना-देना। हम तो प्रकृति का नियम खोजते हैं। धर्म (विशेषतः जैन धर्म/दर्शन) भी यही कहता है- हम नियन्ता को विदा करते हैं। आत्मपुरुषार्थ ही हमारा नियन्ता है। जो हम कर रहे हैं, वही भोग रहे हैं।
- अच्छा/बुरा- न भाग्य का लिखा होता है, न ही नियन्ता का दिया, बल्कि यह हमारे कार्य का फल है। कार्य और उसके फल में सीधा सम्बन्ध है जो उसी क्षण से मिलना प्रारम्भ हो जाता है।
- धर्म/विज्ञान- दोनों जीवन के सापेक्ष हैं।
- विज्ञान शक्ति है- ऊर्जा है तो धर्म- जीवन को, उस शक्ति को दिशा देता है। धर्म- विवेक की आंख है। विज्ञान के साथ विवेक की आंख जुड़ी हो तो यह विज्ञान- श्रेयस बन जाता है। जीवन का आलोक।
- धर्म के साथ ही विज्ञान पूर्णता को पा सकता है, क्योंकि धर्म एक सम्पूर्ण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विज्ञान है। धर्म से रहित विज्ञान दिशाहीन गति के समान भटकन है।

- जीवन के लिए- धर्म और विज्ञान की मित्रता चाहिए, समन्विति चाहिए।
- अकेला विज्ञान - भोग संस्कृति का पोषक है। वह आराम दे सकता है। वह आराम दे सकता है- आनन्द नहीं।
- अकेला विज्ञान - स्वयं से अपरिचय रखकर विश्व से परिचय करा सकता है।
- जीवन में जहां विज्ञान की इति है, वहां से धर्म की शुरूआत है। वैज्ञानिक धर्म युग की मांग है। अर्थात् ऐसा धर्म- जो अंधविश्वासों की चुनौती स्वीकारता हुआ प्रयोग, परीक्षण और तथ्यों पर आधारित होता है।
- जैन धर्म एक वैज्ञानिक धर्म है। यह केवल वाणी नहीं वरन तप का प्रयोग, आत्म-परीक्षण और कर्म-सिद्धान्त के सत्य/तथ्य पर आधारित सुसम्बन्ध धर्म है। यहां मात्र क्रिया काण्ड को प्रश्रय नहीं है, अपितु जीवन के शिव, सत्य और सुन्दरता के लिए समर्पित सम्यक् श्रद्धा ज्ञान और चरित्र की समवेत क्रियाशीलता है।
- जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी '९५ सहारनपुर (उ.प्र.) जैन धर्म की वैज्ञानिकता को व्याख्यायित करने का एक सफल-संयोजन था, जो तपोनिष्ठ, वात्सल्य के आगार, प्रशममूर्ति प्रज्ञा श्रमण पूज्य उपाध्याय १०८ श्री ज्ञानसागर जी महाराज व मौन साधक १०८ मुनि श्री वैराग्य सागर जी महाराज के पावन आशीर्वाद व सान्निध्य में, जैनबाग (वीरनगर) सहारनपुर के विशाल प्रांगण में परम भव्यता के साथ सम्पन्न हुई।
- नवम्बर ९४ में साडम (बोकारो) विहार में पूज्य उपाध्याय श्री के सान्निध्य में एक विद्वत् संगोष्ठी हुई थी। उसमें मैंने भावना व्यक्त की थी कि आपकी छत्रछाया में जैन वैज्ञानिकों व जैन मनीषी-विद्वानों को एक ही मंच पर स्थापित कर जैनधर्म के सिद्धान्त व आचार पक्ष की वैज्ञानिकता को दोनों समर्थ वर्ग की समवेत स्वर-शक्ति से उठाना चाहता हूं। उसी समय पूज्य गुरूवर उपाध्याय श्री का आशीर्वाद प्राप्त हुआ और सहारनपुर नगरी को इसके समायोजन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। धर्म प्राण सहारनपुर नगर श्रद्धेय (स्व.) पं. रतनचंद मुख्तार सा. के शक्तित्व एवं कृतित्व से अनुप्राणित हैं, जैन-जगत में विश्रुत है। यहां की उदारमना समाज ने पूज्य उपाध्याय श्री की भावना को साकार करने हेतु उक्त संगोष्ठी को सम्पन्न करने का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संकल्प लिया और एक कीर्तिमान स्थापित कर, इसका शानदार आयोजन किया।

– जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी '९५ में देश के पांच प्रदेशों (म.प्र., उ.प्र., दिल्ली, बिहार व राजस्थान) के इक्कीस जैन वैज्ञानिकों/विद्वानों ने सहभागिता कर अपने शोध-पूर्ण आलेखों का वचान प्रस्तुत किया, जो जैनधर्म/दर्शन, पर्यावरण, जैन-गणित व जैन वनस्पति-विज्ञान पर केन्द्रित रहे।

– संगोष्ठी का वैशिष्ट्य-प्रत्येक सत्र (कुल ७ सत्र) का समापन पूज्य उपाध्याय श्री के मंगल उद्‌बोधन/प्रवचन से हुआ करता था। जिसे सहारनपुर की धर्म-श्रद्धालु जैन समाज ने पूरे प्राणों से सुना और हजारों की संख्या में अपनी उपस्थिति दर्ज कर इस संगोष्ठी की उपयोगिता की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

– उपाध्याय श्री की चिन्तनपरक मंगल वाणी, शोध निबन्धों की समीक्षा रूप हुआ करती थी, जिसने संगोष्ठी की गरिमा को नए प्रतिमान दिये। पूज्य उपाध्याय श्री ने बिहार प्रान्त की सराक जाति के उद्धार व विकास के लिए जो अपनी श्रमण-साधना का अर्घ्य दिया, वह जैन-संस्कृति के उन्नयन के लिए शुभ-संकेत है, तथा सर्वहारा मनुष्य की संवेदना को छूने वाली जीवन की एक यादगार- संस्तुति भी है। उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने जैन विज्ञान के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए सामाजिक कुरीतियों, विकृतियों से बचने के लिए प्रेरित किया। आपने अपने संदेश में शराब, रात्रि भोजन, मांसाहार, धूम्रपान एवं गुटखा की धीमी नशीली लत को पूर्ण अवैज्ञानिक कहकर इसे छोड़ने के लिए जन-मानस को उद्वेलित किया। ये कुटेवे न तो धर्म सम्मत हैं और न ही विज्ञान सम्मत।

– संगोष्ठी की सफल-आयोजना में, मई '९५ के प्रथम सप्ताह में सम्पन्न श्री पंचकल्याण महोत्सव के पदाधिकारियों का विशेष योगदान रहा, जिन्होंने प्रत्येक आगत विद्वानों के स्वागत व सम्मान में कोई कोर-कसर नहीं रखी। संगोष्ठी समारोह के अध्यक्ष बाबू मंगल किरण जैन एवं महामंत्री श्री विरेश्वर प्रसाद जी जैन ने अपने सभी उत्साही कार्यकर्ताओं के प्राणपण सहयोग से इस त्रिदिवसीय संगोष्ठी के लिए जो श्रम और समय दिया, उसका प्रतिफल ही संगोष्ठी को जीवन्त रूप दिला सका। स्थानीय संयोजिका जानी-मानी लेखिका, जैन महिलादर्श की सम्पादिका विदुषी डॉ. नीलम जैन के कुशल निर्देशन ने संगोष्ठी की गुणवत्ता को प्रांजल बना दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

– इस अकिंचन को, पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज का पुण्य-आशीर्वाद ही सम्बल रहा। सहारनपुर के समस्त पदाधिकारियों ने मुझे पूर्व स्वतंत्र रखकर मेरी अभिलाषा व भावना को आदेश मानकर, संगोष्ठी के स्वरूप को बनाये रखने के लिए चौबीस घण्टे तत्पर रहे। यह कहना अतिश्योक्ति न होगी कि गर्मी की तपन व लू को इन्होंने ठण्डी सुरभित बयार में बदल दिया। इतना ही नहीं लगभग ५० हजार रु. के आर्थिक सौजन्य प्रदान कर संगोष्ठी की इस ऐतिहासिकता को कलमबद्ध करने के लिए स्मारिका का सुन्दर प्रकाशन का उत्तरदायित्व भी सहर्ष स्वीकार किया। इस सभी के प्रति मेरा हृदय कृतज्ञता से भर जाता है। पूज्य उपाध्याय गुरुवर के पावन चरणों में त्रैकालिक नमोऽस्तु सहित पुनः सभी पदाधिकारियों के इस अद्वितीय-आयोजन के लिए आभार व्यक्त करता हूं तथा इसके निर्दोष मुद्रण में श्री रमेश कथूरिया जी ने अपना सहयोग देकर स्मारिका को, सुधी पाठकों के हाथ समर्पित किया, इसके लिए उक्त मुद्रण (प्रेस) का भी आभारी हूं।

—प्राचार्य निहाल चन्द जैन
संयोजक- जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी '९५
सम्पादक- स्मारिका- जैन विज्ञान संगोष्ठी
शास. उच्च. माध्य.वि.क्र. ३ के सामने
बीना (म.प्र.) ४७०११३ फोन-३१०४४

दि. २३.१०.९५
दीपावली का आलोकमय
पावन दिवस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पारस पुरुष : उपाध्याय ज्ञानसागर जी

–डॉ. नलिन शास्त्री
मगध विश्वविद्यालय
बोध गया (बिहार)

उपाध्याय मुनिश्री का व्यक्तित्व दुर्लभ पारसमणी के समान है। उनका अपनत्व गम्भीर और मांगलिक है। वात्सल्यमयी भाव अनूठा है। वे ऐसी जीवन्त सत्ता है, जहां सबको समान रूप से आशीर्वाद मिलता है। अहंकार और प्रमाद से दूर उनका व्यक्तित्व समता और ममता है। जहां केवल लोक-कल्याण का पवित्र अनुष्ठान है। चिंतन आचार-विचार और व्यवहार सम्यक् हैं। धर्म उनमें साक्षात् है। सबका उदय और मंगल ही उनकी साधना है। गुरु श्री अनुशासन, संयम और विनय के साक्षात् दर्पण है। संयम जीवन-शैली के प्रवर्तक है। उनकी दृष्टि आध्यात्मिक है, आधार भी वही है।

उपाध्याय श्री शाकाहार के जीवट पर्याय हैं। गुरू श्री ने अपने निस्पृह उत्प्रेरक उद्‌बोधनों/ उपदेशों से अनेक जैनेतरजनों से मांस-मद्यादि दुर्व्यसनों का प्राणप्रण से पूर्णरूपेण स्वेच्छा त्याग कराया और उन्हें भारत की अहिंसक संस्कृति की मुख्य धारा में सम्मिलित किया। मात्र रचनात्मक कार्य करना ही गुरू श्री का ध्येय नहीं है, वरन्, जन-जन में धार्मिक अहिंसा भाव, अपरिग्रह का बोध, संयम का आवरण ओढ़ाना, ब्रह्मचर्य से जीवन बिताना, जीव दया की भावना जागृत करना, सामाजिक कुरीतियों के प्रति जागृत कराना आदि संस्कारों का समावेश भी कराते रहना है।

युग चिंतक एवम् धर्म सारथी, उपाध्याय गुरू श्री ज्ञानसागर जी ने जीवन के बहुविध का परिदृश्य सहेजा हुआ है। गुरू श्री की अपनी एक जीवन दृष्टि है। त्याग और सेवा को समर्पित उनके जीवन का प्रथम अभिप्रेत जगत के प्रत्येक मानव के अंतर्मन में छुपी हुई अथवा सोयी हुई चेतना को जागृत किया जाए। इस महत् उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए वे प्रायः बातचीत करते हैं। समूह के बीच प्रवचन देते हैं और इस तरह वे अपने निकट आए व्यक्ति के अंतर्मन को छूने का यत्न करते हैं।

पूज्य उपाध्याय ज्ञान सागर जी का व्यक्तित्व निराला है। मंद हास्ययुक्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुख, मधुर वचन, वात्सल्य व्यवहार एवम् सबसे अधिक निर्मल अंतःकरण, यह सब उनकी विशेषताओं को व्यक्त करते हैं। विभिन्न धर्म ग्रन्थों का सूक्ष्म तलस्पर्शी अध्ययन, विषय को प्रभावक ढंग से उपस्थित करने का चातुर्य, मिष्ट एवम् स्पष्ट, सरल व मधुर भाषा का प्रयोग, श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करने की क्षमता, समन्वय दृष्टिकोण से ही सर्वप्रिय बनें।

उपाध्याय की ओर यदि जैन आकृष्ट होते हैं तो इतना आश्चर्य नहीं होता किन्तु जैनेतर जनसाधारण उनके चुम्बकीय आकर्षण से बिंधकर उनकी बात सुनता है तो आश्चर्य होता है। उनके वाणी में अनुपम बल है। सैंकड़ों- हजारों श्रोता मंत्रमुग्ध व मौन-मूक बैठे रहते हैं।

आप जैन दर्शन की चिंतन-प्रक्रिया पर सरलतम शब्दों में विस्तृत प्रकाश डालते हैं जो चित्त में समत्व का रसोद्रेक करती है और हमें एक अच्छा नागरिक, संतुलित साधक बनाने के लए भी प्रेरित करती है। श्रमण संस्कृति की विशेषताएं उनमें सन्निहित है। वे जहां एक ओर कान्ति के परम आराध्य हैं, वहीं दूसरी ओर एक ऐसी सांस्कृतिक विभूति भी है, जिन्होंने जैन धर्म की निर्मलताओं और श्रेष्ठताओं को अत्यन्त निर्भीकता से प्रतिपादित किया है।

उपाध्याय श्री किसी समाज विशेष के संत नहीं, वरन् वे जन-जन के पथ प्रदर्शक हैं। पग-पग चलते सूर्य हैं। बिहार क्षेत्र उनकी विशिष्ट कर्मस्थली है।

बिहार प्रवास

जैन युवा संगठन एवं दिगम्बर जैन समाज मधुबन की प्रबल भावना थी कि उपाध्याय श्री वर्षायोग शिखर जी में हो। परन्तु वह शुभ संयोग गया को प्राप्त हुआ। चार माह रहकर वहां जो धर्म की पावन वर्षा हुई वास्तव में स्तुत्य है। धर्म की ध्वजा आकाश के वक्षस्थल पर फहरने लगी। युवा वर्ग में नयी उमंग, नया उत्साह एवं नयी जागृति उमड़ने लगी।

वर्षा योग के पावन अवसर का उद्घाटन २४ सितम्बर १९९१ को उपाध्याय श्री के सान्निध्य में पर्यूषण एवं क्षमावाणी के पावन प्रसंग में विश्व विद्यालय के कुलपति श्री रामप्रत मेहतो ने किया। माननीय कुलपति महोदय ने उद्गार करते हुए विश्व मैत्री दिवस के सन्देशों को व्यवहार में पालन करने पर जो दिया। विभिन्न धर्म एवं सम्प्रदाय के प्रतिनिधियों ने भी अपने अपने उद्गार व्यक्त किये। चातुर्मास के पावन अवसर पर दिनांक ९ नवम्बर १४ नवम्बर ९१ तक गया दिगम्बर समाज की ओर से अखिल भारतीय स्तर पर अनेक ऐतिहासिक सफल आयोजन हुए। इन आयोजनों में सम्पूर्ण भारत के जैन समाज की ओर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से अखिल भारतीय स्तर पर अनेक ऐतिहासिक सफल आयोजन हुए। इन आयोजनों में सम्पूर्ण भारत के जैन समाज के अनेक अग्रणी गणमान्य नेता, समाजसेवी, श्रेष्ठी, सम्पादक, लेखक तथा अनेक श्रावकों के आतिथ्य का सौभाग्य गया समाज प्राप्त हुआ। वहीं पुरानी एवं नयी पीढ़ी के शताधिक विद्वानों का अपूर्व समागम अपने आप में अद्वितीय रहा। अनेक कार्यक्रमों के अध्यक्ष पद सुशोभित करने वाले श्रीमान् रायबहादुर हरकचन्द्र जी पांड्या रांची दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार सेठी लखनऊ, श्री मानमल झांझरी कोडरमा तथा महासभा, शास्त्री परिषद, विद्वत् परिषद के अनेक पदाधिकारियों, समाज के समागत कर्णधारों, कमिश्नर साहब, जन सन्देश दिल्ली के सम्पादक श्री मालव जी आदि उपस्थित थे।

सर्वप्रथम ६ नवम्बर १९९१ को जैन सिद्धान्त वाचना एवं विद्वत् संगोष्ठी, द्रव्य संग्रह ग्रन्थ पर, जैन जगत के मूर्धन्य एवं वयोवृद्ध विद्वान डॉ. दरबारी लाल कोठिया के कुलपतित्व से सम्पन्न हुई। वाचना का शुभारम्भ करते हुए श्रद्धेय डॉ. कोठि याजी के गागर में सागर की तरह महान सैद्धान्तिक ग्रन्थ संग्रह के आधार पर अत्यन्त सरल एवं मार्मिक प्रतिपादन द्वारा जन समुदाय को जैन सिद्धान्तों की महिमा एवं उसकी उपयोगिता से अवगत कराया। जैन विद्वत् संगोष्ठी में जैन जगत के सम्पूर्ण देश में ५० से भी अधिक ख्याति प्राप्त विद्वान एकत्रित हुए। विशिष्ट अतिथि पद से बोलते हुए मगध प्रमण्डल के आयुक्त श्री पंजियार ने जैन धर्म में निहित अहिंसा की चर्चा करते हुए उसके व्यवहारिक प्रयोग द्वारा विश्व की जटिल समस्याओं के समाधान की आवश्यकता पर बल दिया।

१०.११.९१ को परम पूज्य उपाध्याय श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज प्रशान्त मूर्ति बाल ब्रह्मचारी आचार्य श्री शान्तिसागर छाणी के त्यागमय जीवन पर प्रकाश डालते हुए यह बतलाया कि उत्तर भारत में श्रमण परम्परा का पुनरुद्धार छाणीजी महाराज के द्वारा हुआ तथा दक्षिण में आचार्य शानित सागर जी महाराज के नाम के दूसरे महाराज ने श्रमण परम्परा को वृद्धिगत किया। तत्कालीन दोनों आचार्यों के बीच बहुत ही प्रभाव तालमेल था।

इस अवसर पर अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद का खुला अधिवेशन भी हुआ।

युवाओं में धर्म के प्रति जागृति लाने के लिये बिहार प्रान्तीय दिगम्बर जैन युवा सम्मेलन का प्रथम आयोजन हुआ। इस आयोजन में पूरे बिहार प्रान्त के करीब २०० युवा प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन का उद्घाटन दिनांक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०.११.६१ को भव्य प्रभावना के साथ सम्पन्न हुआ। जैन संस्कृति एवं धर्म की सुरक्षा के लिये आयोजित इस प्रथम सम्मेलन के लिये उपाध्याय श्री ने गया जैन समाज को आशीर्वाद प्रदान करते हुए युवकों को अकलंक एवं निकलंक की भांति जैन धर्म का प्रचार-प्रसार करने के लिये आगे आकर अपनी युवकोचित ऊर्जा के सम्यक् उपयोग करने हेतु सन्नद्ध रहने की प्रेरणा दी। उन्होंने कहा शास्त्रों के अनुसार इस विषम काल में युवा ही धर्मरूपी रथ को आगे बढ़ाकर ले जायेंगे।

इन सभी आयोजनों से पूरा समाज धार्मिक वातावरण से ओत-प्रोत हो गया था। सभी प्रकार की व्यवस्था में लोगों ने उत्साह एवं उमंग के साथ भाग लिया। २०.११.६१ को गया नगरी में पूज्य उपाध्याय श्री के इस ऐतिहासिक चातुर्मास का विधिवत् समापन समारोह सम्पन्न हुआ। २४.११.६१ को स्थानीय जैन भवन गया में पिच्छिका परिवर्तन समारोह का भव्य आयोजन हुआ। चिच्छिका परिवर्तन के लिए पूज्य उपाध्याय श्री ने संयम ग्रहण करने की अनिवार्यता की बात रखी। पूज्य महाराज श्री के मांगलिक उद्बोधन से कई लोगों ने संयम ग्रहण किया। जिसके अन्तर्गत अनेकों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया।

इस प्रकार गया नगरी में जैन धर्म का बिगुल बजाकर राजपथों पर भगवान महावीर का शुभ सन्देश 'जियो और जीने दो' का शंखनाद करते हुए उपाध्याय श्री रफीगंज पहुंचे। धर्म की प्रभावना करते हुए पुनः गया नगरी आये वहां क्षुल्लक श्री वर्द्धमानसागर जो अत्यधिक अस्वस्थ थे। उनको मुनिपद अंगीकार कराकर समाधि दी। वह दृश्य देखकर सभी के अश्रु निकल रहे थे। हजारों की संख्या में भीड़ उमड़ पड़ी। शवयात्रा में हजारों की संख्या में धर्मावलम्बी चल रहे थे। तदुपरान्त गुरुवर डाल्टनगंज पहुंचे। वहां जैन धर्म का घर-घर डंका बजाकर हजारीबाग में आप पधारे। वहां प्रथम सराक सम्मेलन हुआ जिसमें काफी संख्या में सराक बन्धु आये। वहां से विहार कर जुलाई ६२ में रांची में प्रवेश किया। पूरा रांची शहर उपाध्याय श्री के आगमन में उमड़ पड़ा। डाल्टन गंज, कोड़रमा, हजारीबाग आदि नगर के साधर्मी बन्धुओं की प्रबल भावना थी कि उपाध्याय श्री के चातुर्मास से उनकी नगरी पवित्र हो, परन्तु यह शुभ अवसर रांची निवासियों को प्राप्त हुआ। रांची नगर में उपाध्याय श्री के सान्निध्य में अनेकों आयोजन हुए। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, सभी धर्म के लोग उपाध्याय श्री की दिव्य देशना, उद्बोधन सुनने प्रतिदिन आते थे। प्रबुद्ध वर्ग से, जिलाधिकारी, एडवोकेट, डॉ. आदि भी उपाध्याय श्री से प्रभावित होकर प्रतिदिन चरण रज प्राप्त कर अपने को सौभाग्यशाली समझते थे। सम्पादक पत्रकार प्रतिदिन उपाध्याय श्री के चरण कमलों में समर्पित रहते। ऐसा दृश्य प्रथम बार ही देखने को मिला था। जो भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखता, आश्चर्य में पड़ जाता, वास्तव में धर्म का मूल्यांकन अद्वितीय है।

२०.८.९२ को विराट शाकाहार सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। शाकाहारमर्मज्ञ डॉ. डी.सी. जैन दिल्ली, भी इस शुभ अवसर पर पधारे। डाल्टन गंज के विधायक इंदर सिंह नामधारी ने अपनी बुलन्द आवाज में कहा कि शाकाहार को एक आंदोलन का रूप देना होगा तथा इसे भारत की धरती से शुरू कर विश्व भर में इसका प्रचार-प्रसार करने का संकल्प लेना होगा, तभी शाकाहार सम्मेलन की अध्यक्षता एच.ई.सी. के.एम.डी., ए.के. मिश्र ने की। इस सम्मेलन में जैन मतावलम्बियों के अतिरिक्त मुस्लिम एवं सिक्ख धर्मावलम्बियों ने भी लगा लिया।

शाकाहार के उपलक्ष्य में एक विशाल शाकाहार रैली श्री दिगम्बर जैन मन्दिर से निकाली गयी। रैली बहुत लम्बी एवं अभूतपूर्व थी। रैली का नेतृत्व विशाल जानवर हाथी कर रहा था।

इस रैली में सम्मिलित होने वाले प्रमुख लोगों में रांची के भाजपा विधायक गुलसन अजमानी, राय बहादुर श्री हरकचन्द्र पांड्या, श्री रतनलाल जी पाटनी, एडीशनल कलक्टर एम.पी. एजमेरा आदि शामिल थे। इस प्रकार रांची में राष्ट्रव्यापी शाकाहार का बिगुल फूंकते हुए उपाध्याय श्री धर्मामृत की वर्षा कर बुण्डू पहुंचे। जहां पर ६.२.९३ से १७.२.९३ तक विराट सराक सम्मेलन सम्पन्न हुआ। अनेक ग्रामों से सराक जैन युवक महाराज श्री के सम्पर्क में आये। पांगुरा में २६.२.९३ से ११.३.९३ तक प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। ५.४.९३ को नोढ़ी में महावीर जयन्ती के उपलक्ष्य में पुनः विशाल सराक सम्मेलन का आयोजन किया गया, उसमें ४-५ हजार सराक बन्धु उपस्थित थे। यहां के सराक बन्धुओं ने जन समुदाय को देखकर उपाध्याय श्री अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा सम्पूर्ण बंधुओं ने अपने गांव में भी धार्मिक शिविर लगाने हेतु एवं उपाध्याय श्री को ले जाने की अनुनय विनय की। उपाध्याय श्री अनेकों गांव में सर्वेक्षण करते हुए सिद्ध क्षेत्र खण्डगिरि, उदयगिरि (उड़ीसा) की यात्रा कर दक्षिणी छोटा नागपुर रांची, टाटा रोड पर राजमार्ग से हटाटकर दो कि.मी. कच्चे रास्ते पर पहाड़ियों की तलहटी में बसे तड़ाई क्षेत्र में पहुंचे। मात्र ५०-६० घरों की एक बस्ती, गांव में कोई पक्का मकान नहीं, वहीं पर स्थित था बीचो-बीच, भगवान महावीर का जिनालय। ऐसे सुदूर क्षेत्र में उपाध्याय श्री के चातुर्मास की चर्चा से पूरे बिहार प्रान्त में खलबली मच गयी। परन्तु उपाध्याय श्री ने अपने चातुर्मास के लिए एवं सराक बन्धुओं के उत्थान के लिए अपना निर्णय अविचल रखा और उसी स्थान पर चातुर्मास किया। तड़ाई ग्रमवासियों ने जब सुना कि दिगम्बर साधु आ रहे हैं, भीड़ की भीड़ महाराज श्री के आगवानी के लिये दौड़ पड़ी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तड़ाई क्षेत्र में उपाध्याय श्री के चरण-कमल पड़ते ही वहां के ग्रामवासी अपनी खोयी हुई संस्कृति को पुनः याद करने लगे। प्रथम तो वह यह नहीं जानते थे कि आहारचर्या क्या होती है। कैसे साधु आहार लेते हैं। कारण, कभी कोई दिगम्बर साधु वहां पहुंचा ही नहीं। जब महाराज श्री का आहार हुआ, सराक बन्धुओं ने भी नवधा भक्ति के साथ आहार दिया। शनैः शनैः धर्म के प्रति भावना बढ़ने लगी। णमोकार मन्त्र, तुमसे लागी लगन आदि पढ़ते और पूजन पाठ करने लगे। गायें चराने वालाल, ग्वाला भी जब गायें चराने जाता तो वह 'णमोकार मंत्र', 'अरिहन्त जय-जय', 'तुमसे लागी लगन' गाता जाता। वातावरण धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत हो गया था। वह आदिवासी छोटी-छोटी झोपड़ी में रहे थे, स्वागत-सत्कार कैसे होता है जानते भी नहीं थे। जिनके पास भोजन के लिए सामग्री नहीं वहां आकर मात्र चावल मूरी खाकर वह हमारे जैन बन्धु जीवन यापन करते हैं। सुबह का भोजन, सायं को मिलेगा भी या नहीं, ऐसा जीवन व्यतीत रकने वालों के प्रति उत्थान की भावना, उनकी करूणा की भावना उपाध्याय श्री के अन्तस को छू गयी। वहां सराक बन्धु के घर पर आहार होता तो एक तरफ गाय बंधी है दूसरी ओर छोटी सी झोपड़ी, वहीं थोड़ी सी जगह में महाराज श्री बड़े आनन्द से उनके हाथों से आहार ग्रहण कर रहे थे। प्रसन्नमुद्रा, अनुपम छवि को देखकर कौन ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जो मुग्ध न हो गया हो। फिर क्या था, शिक्षण शिविर चलने लगे। नन्हे-मुन्ने बच्चों को बहिन अनीता जी, बहिन मन्जुला जी, जैन धर्म के सिद्धान्तों का पठन-पाठन कराती और बच्चे उत्साह से पढ़ते। ब्रह्मचारी, अतुल, मनीष जी नाना प्रकार की कहानियां सुनाकर बच्चों को धार्मिक शिक्षा देते। ८-८ घण्टे लगातार क्लास लेना एवं धर्म की भावना जागृत करना ही मात्र इनका ध्येय हो गया था। धीरे-धीरे काली छटा छंटने लगी। पास के गांव के अनेकों सराक बन्धु चातुर्मास काल में भाग लेने आते और धर्म उपदेश सुनकर मंत्रमुग्ध होते। आहारचर्या में छोटे-छोटे बच्चे उत्साहपूर्वक लाभ लेते थे। चारों ओर उत्साह ही उत्साह था। ऐसे भयानक जंगलों के बीच में उपाध्याय श्री के सान्निध्य में एवं साहू अशोक कुमार ज़ी अध्यक्ष भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी की अध्यक्षता में विराट सराक सम्मेलन सम्पन्न हुआ। सम्मेलन में बंगाल बिहार के ग्रामों से लगभग २ हजार सराक भाई सम्मिलित हुए। बिहार प्रान्त के सभी नगरों के दिगम्बर जैन समुदाय के प्रमुख व्यक्ति एवं बंगाल, बिहार, आसाम, दिल्ली एवं अन्य प्रान्तों से पधारे गणमान्य व्यक्ति भी उपस्थित थे। आगन्तुक अतिथियों एवं सराक बन्धुओं का रायबहादुर श्री हरक चन्द्र जी जैन पांड्या, श्री भागचन्द्र पहाड़ियां, मंत्री श्री पूनम चन्द्र जी गंगवाल, श्री राजकुमार सेठी आदि उपस्थित थे। सम्मेलन में सराक बन्धुओं ने अपने विचार रखे तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
उपाध्याय श्री ने सम्बोधित करते हुए निम्नांकित भाइयों के सर्वांगीण उत्थान एवं विकास हेतु आवश्यक योजनाबद्ध कार्य करने पर जोर दिया। साथ ही यह भी कहा कि साधुओं, पण्डितों एवं साधर्मी बन्धुओं का सान्निध्य नहीं होने पर भी सराकों ने अपनी संस्कृति एवं संस्कार अक्षुण्ण बनाये रखे हैं।

साहू जी ने अपने उद्बोधन में कहा कि अल्पावधि में मैंने पाया कि हम लोगों से अच्छे संस्कार सराक भाइयों के हैं। मैं तन, मन, धन से इनके इनके लिये अपने को अर्पित करता हूं। उपाध्याय श्री ने दीप प्रज्जवलित किया है, उसे जलाये रखेन का हम सभी परम कर्तव्य है। सराक क्षेत्र में सर्वांगीण विकास हेतु भारतवर्षीय दिगम्बर जैन सराक ट्रस्ट बनाने की घोषणा की गयी। सम्मेलन में सराक बन्धु श्री विशेश्वर मांझी, श्री भृगुराम मण्डल, श्री रमेशचन्द्र मांझी तथा श्री विश्वनाथ् चौधरी ने भी अपने विचार प्रकट किये।

पिच्छिका परिवर्तन के उपरान्त उपाध्याय श्री का विहार ससंघ जसपुर कुनकुरी बगीचा होते हुए अम्बिकापुर की ओर हुआ। वेदी प्रतिष्ठा के स्वर्णिम अवसर पर अनेकों सम्मेलन हुए। उन्होंने बंगाल की ओर पुरूलिया जिले में प्रस्थान किया। सन् १९६२ के बाद प्रथम यदि कोई दिगम्बर साधु पहुंचे थे तो वह थे पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज। पहले तो जैन समाज को भय प्रतीत हुआ कि महाराज श्री कैसे जायेंगे। धर्म की जड़ सदैव गहरी होती है यह विचार करते हुए पुरूलिया में गुरूवर ने प्रवेश किया। उपाध्याय श्री के चरण कमल पड़ते ही वातावरण में परिवर्तन हुआ और वहां के सराक बन्धुओं में धार्मिक भावनायें वास करने लगीं। तदुपरान्त अनेक स्थानों पर विहार करते हुए जैन धर्म की पताका फहराते हुए सन् १९९४ में पेटरवार में (जिला बोकारो) चातुर्मास हेतु प्रवेश किया। पेटरवास में चार माह रहकर धर्म की वर्षा की। तदुपरान्त पिच्छिका परिवर्तन के पश्चात् बिहार कर साड़म (बोकारो) पहुंचे। उपाध्याय श्री के सान्निध्य में विद्धत गोष्ठी, विराट सराक सम्मेलन, बिहार प्रान्तीय महासभा अधिवेशन, बिहार प्रान्तीय युवा सम्मेलन सम्पन्न हुए। इतने कार्यक्रम मात्र २० घरों के मध्य देखकर सभी आश्चर्यचकित रह जाते। विशाल बने पाण्डाल में सभी आयोजनों के साथ अष्टाहिनका पर्व में श्री सिद्ध चक्र महामण्डल विधान का आयोजन भी किया गया। अनेकों मुस्लिम वर्ग के लोग महाराज श्री के चरण कमलों में रात्रि में भक्ति-गीत का कार्यक्रम करते। उनके अन्तरंग में धांर्मिक भावना प्रवेश कर गयी थी और अहिंसा उनके हृदय में समाहित हो गयी थी।

तदनन्तर साड़म (बोकारो) से बिहार करते हुए जैनामोड़, गोमियां बोकारो (बिहार), पुरूलिया, झापुढ़ा, रघुनाथपुर, मिहिजाम, गिरीडीह होते हुए पुनः चार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्षों के पश्चात् पुनः उसी पावन तीर्थराज पर पहुंचे। १७ दिसम्बर १९९४ को उपाध्याय श्री के जयकारों से पूरा मधुबन गुंजायमान होने लगा था। अनेकों मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक-क्षुल्लिकाजी उपाध्याय श्री को लेने पहुंचे। बैण्ड बाजों की ध्वनि के साथ-साथ जय-जयकार के नारों से आकाश गुंजायमान हो रहा था। दिगम्बर जैन समाज, मधुबन के इतिहास में प्रथम बार इस प्रकार का भव्य स्वागत हुआ। साथ ही दोनों क्षेत्रों के क्षेत्रीय मंत्री, मैनेजर, आश्रम गुरूजन आदि ने भी पाद प्रक्षालन तथा आरती की। परम पूज्य आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज तथा परम पूज्य उपाध्याय श्री भरत सागर जी महाराज ने वात्सल्य का परिचय देते हुए परिसर से बाहर निकल कर उपाध्याय श्री को गले लगा लिया। उपाध्याय श्री भरत सागर जी आचार्य श्री विमल सागर जी ने अपने उद्‌बोधन में सराकों के बीच आयी हुई जागृति की तथा बिहार प्रान्त के अन्दर धर्म की बहार आने का श्रेय पूज्य उपाध्याय श्री को दिया।

अनेक लोग महाराज श्री को पहुंचाने गये। २.२.९५ को एटा में प्रवेश हुआ। पूरा एटा शहर महाराज की आगवानी में उमड़ पड़ा उसी दिन बिहार कराकर धर्म की ध्वजा फहराते हुए मेरठ ले जा रहे थे। आगे आगे जैन धर्म की ध्वजा तथा पीछे-पीछे महाराज के साथ केशरिया कपड़े पहने एवं पीली टोपी लगाये युवा वर्ग। ३.२.९५ को किकन्दराराऊ में आहार लेने के उपरान्त रोहिना सिंहपुर (अलीगढ़) में विश्राम किया। ४.२.९५ को उपाध्याय श्री का अलीगढ़ में प्रवेश हुआ। डॉ. महेन्द्रसागर जी प्रचण्डिया एवं अन्य धर्मानुरागी बन्धु भी महाराज श्री के पास दर्शन के लिये आये। रात्रि नगला पाला में विश्राम किया। ५.२.९५ हरनियां (बुलन्दशहर) में आहार लेने के पश्चात खुर्जा में प्रवेश किया। रात्रि विश्राम कर ६.२.९४ को बुलन्दशहर में आहार लेने के पश्चात गुलवटी में विश्राम किया। पंचकल्याणक प्राण प्रतिष्ठा महोत्सव मेरठ में प्रतिदिन प्रतीक्षा होती थी। कि कब महाराज श्री पधारेंगे। समय सन्निकट आ गया। खुशी से पूरा मेरठ शहर उछलने लगा। हजारों की संख्या में लोग लेने महाराज श्री के पास पहुंचे। ७.२.९५ को हापुड़ में प्रवेश किंया। आहरचर्या के बाद वह नगरी जो कुछ दिनों के बाद अयोध्या नगरी में परिवर्तित होने वाली थी। मेरठ शास्त्री नगर में प्रवेश कर पूज्य उपाध्याय श्री ने जन-जन की आकांक्षाओं को पूरा कर हर्षोल्लास के वातावरण का सृजन कर दिया। मेरठ के पंचकल्याणक के पश्चात् सहारनपुर के पंचकल्याणक एवं ऐतिहासिक जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी '९५, चातुर्मास स्थल बड़ागांव में त्रिदिवसीय शाकाहार विज्ञान प्रशिक्षण शिविर, संस्कार प्रशिक्षण शिविर, पत्रकार एवं सराक सम्मेलन ऐसे विस्मरणीय कार्य हैं, जिन्हें समाज सदैव स्मरण करेगा। पूज्य श्री ज्ञान की गंगा के सच्चे भगीरथ हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूज्यप्रवर उपाध्याय ज्ञान सागर जी महाराज का मंगल प्रवास

सहारनपुर नगर में तीस ऐतिहासिक दिन

—डॉ. रूबी जैन

पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी के विराट व्यक्तित्व की भांति उनके कृतित्व का कैनवस भी विस्तीर्ण और व्यापक है। इसको सहज ही नाप लेना असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। उनका साधनामय तपः पूत जीवन किस प्रकार, प्राणीमात्र के प्रति वात्सल्य मय होकर दिगम्बर सन्त के रूप में पूरी एक दशाब्दी से समर्पित हो रहा है, यह स्वयं में इतिहास का एक वृहद् अध्याय बन गया है। इस विश्वमानव की गौरव गाथा यद्यपि मसि बिन्दुओं में निबद्ध नहीं हो सकती यह 'हरि अनन्त, हरिकथा अनन्ता' की भांति विपुल, अगाध तथा अनुपमेय है। सागर के समान गम्भीर और हिमवान के समान उत्तुंग व्यक्तित्व का प्रत्येक अणु-अणु का इतनी सतर्कता तन्मयता श्रद्धा निष्ठा तथा विवेक से प्राकृतिक निर्माण है कि यावच्चन्द्रदिवाकरौ चर्चित मूल्यांकित एवं श्रद्धास्पद होता रहेगा। इसकी कोई सीमा परिधि निश्चित नहीं हो सकती।

ऐसे महान तपस्वी, यशस्वी, मनस्वी, ज्ञान के लिए समर्पित सरलता, शुचिता, समता और साधना के प्रतीक पूज्य प्रवर उपाध्याय श्री के चरणों का पावन संस्पर्शन सहारनपुर नगरी को एक ही माह तक प्राप्त हुआ। प्रथम बार किसी साधु के प्रति पूरे नगर की स्वस्फूर्त श्रद्धा, प्रथम बार ऐतिहासिक धार्मिक, सामाजिक प्रासांगिक आयोजनों का आयोजन, प्रथम बार दो भव्य जिनालयों के एक साथ पंचकल्याणक, प्रथम बार ही जैन धर्म के वैज्ञानिक पक्ष पर सार्थक बहुचर्चित संगोष्ठी, प्रथम बार ही सामाजिक संस्थाओं, प्रबुद्ध वर्ग, पत्रकारों, अधिवक्ताओं, चिकित्सकों, विभिन्न धर्मावलम्बियों का गुरु श्री के चरणों में बैठकर समाज को सुव्यवस्थित नैतिक उत्थान के लिए चिन्तन, युवाओं, महिलाओं, बच्चों की श्रद्धा सभी कुछ तो प्रथम बार इस प्रकार इस जनपद में विस्फरित श्रद्धापूरित नयनों से देखा और अपने भाग्य को सराहा।

मेरठ में ऐतिहासिक पंचकल्याणक महोत्सव सम्पन्न कराने के उपरान्त मेरठ से सहारनपुर के मध्य उमड़ती श्रद्धालुओं की भीड़ ने अपने ग्राम, कस्बों, नगरों को आध्यात्म सलिला साथ लेकर चल रहे भागीरथ दिगम्बर श्रमण के तपः पूत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरणों को श्रद्धापूर्वक रोक-रोककर अपने भाग्य की अपूर्व सराहना करते हुए पुण्योपार्जित किया। इधर सहारनपुर का जन-जन पलक पांवड़े बिछाये प्रतीक्षारत था कि पूज्यवर केवल पाषाणओं को ही संस्कारित कर पूज्य नहीं बनायेंगे, हम साक्षात् सजीव पाषाणों को भी संस्कारित कर सच्चा पथ दिखलायेंगे। अन्ततः वह शुभ दिन भी आया जब २८.४.९५ को प्रातः ७.३० बजे विशाल जनसमूह गगनभेदी जयकारों के मध्य स्थान-स्थान पर मंगलद्वार सजाकर आरती उतारते हुए आराध्य श्रीवर को श्री चन्द्रनगर मन्दिर सिविल लाइन्स, कोर्ट रोड, घण्टाघर, शहीद गंज, चौक फव्वारा, सर्राफा, बड़तला यादगार आदि स्थानों को पवित्र कराते हुए जैन बाग वीरनगर लाये जहां आस-पास के भी सभी जैन श्रद्धालुओं सहित हजारों धर्मप्रेमियों की जनमेदिनी धर्मसभा में परिवर्तित हो गई।

पूज्य श्री के वात्सल्यमयी अमृतवचनों ने जैसे ही फुहार की 'बन्धुओं आपकी ऐतिहासिक नगरी सहारनपुर में पंचकल्याणक होने जा रहा है यह निश्चित नगरवासियों के पुण्य का ही सुफल है जिस धरा पर तीर्थंकरों की बाल लीलाएं जीवनचर्या की पुनरावृत्ति होती है वह धरा ही स्वयं अराध्या बन जाती है किन्तु यह दायित्व अब आपका है कि आप अपने सदाचरण से इस धरा को पवित्र रखें। यह विचार मन में रखें कि पाषाणों का पूज्या बनाने के साथ-साथ स्वयं को भी उन पूज्य प्रतिमाओं का सच्चा पुजारी बनाना होगा यह सार्वजनीन सत्य है कि आने वाले कल रूपी वृक्ष के बीज हमारे आज ही में सन्निहित हैं। हमारा आज ही हमारे कल को प्रभावित करते हैं, अतः आपको भी आज से ही भगवान और भक्त बनने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर देनी चाहिए।'

श्रद्धेय गुरूवर के सीधे सरल अन्तस्पर्शी वचनों का आकर्षण ऐसा था कि विशालतम पाण्डाल भी प्रतिदिन छोटा सा दीख पड़ता था। चलते हुए पथिक भी प्रवचन सुनकर ही आगे बढ़ते थे। जैन ही नहीं, जैनेतरों की एक विशाल संख्या पर अद्‌भुत प्रभाव रहा अनेक अजैनों ने श्री चरणों में जीवन संयम का सही मार्ग ज्ञात किया। प्रतिदिन श्रोताओं की संख्या बढ़ती रही।

संयम साधना दिवसः वैशाख शुक्ला द्वितीया संयम साधना दिवस बना। यह दिन हमारे प्रातः स्मरणीय गुरूदेव का संसार में अवतरित होने का दिवस है। पूज्यवर इस आयोजन से अनभिज्ञ भी थे और ज्ञात होने पर स्पष्ट शब्दों में कहा भी 'जन्म जयन्तियां जो साधु चाहे उनकी मनायी जायें, जो न चाहें उनकी न मनाई जायें अभी साधु भी पुरूषार्थ के ही मार्ग में है- ये लौकैषणा हमें पसन्द नहीं है।' किन्तु भक्तों की अपूर्व श्रद्धा थी सभी ने कुछ न कछ नियमव्रत लेकर अपने जीवन को सार्थक बनाने का प्रयाम किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूज्य श्रीवर के प्रभावक तेजस्वी एवं मनस्वी सान्निध्य से पंचकल्याणक एवं विभिन्न सम्मेलन २ मई से ७ मई तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के मध्य जहां प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन, प्रो. एम.एल. जैन उज्जैन, डॉ. जय कुमार जैन, डॉ. कपूर चन्द जैन सदृश विद्वानों के प्रवचनामृत से धर्ममय वातावरण रहा वहीं प्रातः पूज्यवर के मंगल उद्‌बोधन के साथ ही साथ ५ मई को सराक सम्मेलन एवं महासमिति अधिवेशन भी सम्पन्न हुआ। सराकों के बीच प्रवास का वर्णन प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी से सुनकर महिला पुरुष सभी द्रवित थे इसीलिए सराकोत्थान हेतु महिलाओं ने भी आगे बढ़कर प्रतिभागिता की। सुदूर जनपदों से आई महिलाओं ने अपने-अपने जनपद के माध्यम से सराकोत्थान का प्रण किया। यह सम्मेलन मुख्य आकर्षण रहा, सभी ने अपने बिछुड़े भाईयों के प्रति अपनत्व प्रकट किया। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव समिति की ओर से सभी को प्रतीक चिन्ह प्रदान करके स्नेह प्रदर्शन किया गया। सराक बन्धु भी सहारनपुर मंगल महोत्सव को देख-देखकर हर्ष विभोर थे। जनसामान्य को भी प्रथम बार ही ज्ञात हुआ कि पं. बंगाल, बिहार, उड़ीसा के ५०० से अधिक ग्रामों में लाखों की संख्या में रहने वाले ये सराक हमारे वे संस्कारशील धर्मबन्धु हैं, जिन्होंने सर्वस्व त्यागा पर अपना धर्म, संस्कार व परम्परा नहीं त्यागी। '७०-'७५ की संख्या में विभिन्न प्रान्तों के बन्धुओं के परिचय एवं सराकोत्थान उपसमिति के मंत्री श्री कमलकुमार पाटौदी साढ़म द्वारा प्रगति विवरण सुनकर सभी उत्साहित थे।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा तो २ मई मे '७ मई तक सोत्साह सम्पन्न हुई। प्रथम वार दो जिनालयों के एक साथ पंचकल्याणक का शान्तिपूर्वक प्रतिष्ठापन पूज्य श्री के ही मंगल आर्शीर्वाद का प्रतिफल था। चूंकि चन्द्रनगर स्थित जैन मन्दिर का निर्माण कार्य विगत २२ वर्षों से पूरा ही नहीं हो पा रहा था और भगवती कालोनी की पूर्व घोषित तिथि एक बार निरस्त हो चुकी थी। सभी टकटकी लगाये प्रतीक्षारत थे कैसे शीघ्रता से शान्तिपूर्वक सम्पन्न हों ये दोनों पंचकल्याणक।

सहारनपुर १७ मन्दिरों से सुसज्जित हजारों जैन धर्मावलम्बियों की वह पवित्र भूमि है जिस पर पं. रतनलाल मुख्यात्यार सदृश सरस्वती पुत्रों ने जन्म लिया। पूज्य श्री के प्रति ही इस धर्मनगरी के प्रत्येक जन-जन में यही एक प्रतिस्पर्धा सी रही कि हम अपनी कालोनी को पवित्र करें हमें पवित्र करें, आवास विकास कालोनी को प्रथम अवसर मिला। जय-जयकारों, बैण्ड बाजों, रंग बिरंगे तोरणद्वार सजाकर पूज्यवर के साथ आवास विकास कालोनी के बाल गोपाल सहित समूची कालोनी ही चल रही थी। एक सप्ताह आवास विकास में जो ज्ञान गंगा प्रवाहित हुई उसे अभी तक कोई विस्मृत नहीं कर पायें, यहीं स्थित जैन डिग्री कालेज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में श्री पूज्यवर का मंगल प्रवचन हुआ। विशाल भव्य पाण्डाल प्रतिदिन श्रोताओं से भरा रहता, सभी पूज्य श्री के प्रवचनों को सुनकर जीवन धन्य कर रहे थे। प्रबुद्ध वर्ग ने भी चिकित्सकों ने भी एक दिन सम्मिलित होकर पूज्य श्री के सान्निध्य में मार्गदर्शन प्राप्त किया। पूज्य श्री ने सबको स्पष्ट शब्दों में कहा शिक्षा का सीधा सा रास्ता यदि नैतिकता से होकर नहीं जाता, आध्यात्मिक उत्थान में साधक नहीं बनता तो समझना चाहिए हमारी शिक्षा में अवश्य ही दोष है। चिकित्सकों से भी पूज्यवर ने कहा आज वढ़ते मांसाहार को, बढ़ती बीमारियों को चिकित्सक ही रोक सते हैं। धर्म और विज्ञान परस्पर संपूरक हैं धर्म के तथ्य विज्ञान की प्रयोगशाला में सिद्ध करके ही अत्याधिक प्रभावी होते हैं।

सर्वत्र आश्चर्य था कि स्वयं को नास्तिक कहकर धर्म विमुख कुमार्गरत भी अन्तर्निहित प्रवलतम शक्ति साधन के शक्तिपुंज के सम्मुख नम्रीभूत हो शीश झुका रहे थे।

सहारनपुर तो क्या, आस-पास दूर-दराज के श्रीमन्त, विद्वताजन ही नहीं गांव-गांव कस्बे-कस्बे से अपने क्षेत्र को पवित्र कराने की प्रार्थना लेकर प्रतिदिन सैंकड़ों व्यक्ति श्री चरणों में उपस्थित होते ये लेकिन अभी तो सहारनपुर वाले ही तृप्त नहीं थे। एक सप्ताह के वाद १६.५.९५ को चन्द्रनगर सिविल लाइन्स के श्रद्धालु अपने पूज्य गुरुदेव को महती अभ्यर्थना अर्चना के उपरान्त विहार करा ही लाये। प्रत्येक घर पर मंगल आरती, मंगल वाद्यों की अनुगूंज देखते ही वनती थी। सहारनपुर जनपद की प्रख्यात संस्था आशा मॉर्डन स्कूल की प्राचार्या सुश्री आशा लता जी के स्कूल में ससंघ आगमन हुआ। ४ दिन तक अमृतवर्षण का प्रथम अवसर था इस क्षेत्र में विद्यालय की जैन जैनेतर अध्यापिकाओं बच्चों की सक्रियता देखते ही वन रही थी अधिवक्ताओं की संगोष्ठी, लायन्स क्लब की बैठक पूज्यवर के सान्निध्य में चन्द्रनगर में सम्पन्न हुई। अश्रुपूरित नयनों ने विदाई दी चन्द्रनगरवासियों ने १६.५.९५ की सायं को जब पूज्यश्री ने बड़तला यादगार की ओर भव्य जुलूस के साथ विहार किया। वड़तला यादगार में भी अपार जन समूह चातुर्मास के लिए प्रार्थना करता रहता सभी की भावना रहती है कि अब सहारनपुर से कभी न जायें- पूज्यवर का चुम्बकीय व्यक्तित्व कठोर साधना, अहर्निश तपस्या सभी को आकर्षित करती ही है। सारा सहारनपुर ज्ञानमय हो गया था। अधिक से अधिक गुरु चरणों के सान्निध्य का लाभ ले लेने को सब जन लालायित थे, होते भी क्यों न? पहली बार ऐसे सन्त का दर्शन प्राप्त हुआ था जिसके अन्तरंग में कर्म की प्रवल प्रेरणा, विश्वव्यापी प्रसिद्ध, सम्मान व प्रतिपत्ति के [illegible] उसका अनासक्त अन्तर पुरुष एक शान्त प्रशान्त में अन्तस्थ रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक व्यसनमुक्त संस्कारशील, शाकाहारी धर्मपरायण समाज देखने की लालसा प्रतिपल गुरुदेव के हृदय में रहती सभी प्रशान्त दृढ़ता के साथ मेघगंभीर स्वर में मांसाहार की ओर बढ़ते समाज की मृदुभर्त्सना करते उस समय उनका मन बहिर्जगत को भूल जाता और केवल एक अगाध विश्वास मधुर भक्ति का कोमल स्पर्श उनके उन्मुख तथा आग्रहपूर्ण हृदयों को स्तम्भित किये रखता।

अब २७ ता. को आ गया वह ऐतिहासिक क्षण जब देश-विदेश के वैज्ञानिक विद्वानों ने पूज्य श्री के चरणों में आशीष के संकल्प क्षण को जीवन्त किया। जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी '९५ का त्रिदिवसीय आयोजन जैन बाग वीरनगर के विशाल सुसज्जित भव्य पाण्डाल में सम्पन्न हुआ। इस गोष्ठी में [illegible] आलेखों का वाचन हुआ तथा सभी आलेख जो प्रस्तुत स्मारिका में आबद्ध हैं, यहीं पूज्य श्री के चरणों में पढ़े गए। सम्पूर्ण जैन- अजैन समाज द्वारा इस गोष्ठी की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी और उन्हीं अनुशंसाओं की ही परिणति है, यह आख्या, यह संगोष्ठी पूर्ण सफल रही तथा सभी विद्वानों द्वारा एक स्वर में अभूतपूर्व, अविस्मरणीय एवं ऐतिहासिक बतलाई गई। इस गोष्ठी के संयोजक थे प्रो. निहाल चन्द जैन बीना एवं डॉ. नीलम जैन सहारनपुर स्थानीय संयोजिका थी। सभी स्थानीय राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में यह संगोष्ठी बहुचर्चित रही और २९.५.९५ की सायं की समाप्ति के साथ ही साथ वह अप्रत्याशित क्षण भी आ गया जब पूरे जनसमूह के मध्य से पूज्य श्री ने द्वार की ओर कदम बढा दिए। हतप्रभ भौचक्के से सब देखते रह गए लेकिन साधु तो है बहता पानी कौन रोक सकता है। एक माह का यह अविस्मरणीय प्रवास आज भी कल जैसा लग रहा है। सब प्रतीक्षारत हैं कब आयेंगे हमारे पूज्य आराध्यवर.....

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहारनपुर के जैन मन्दिर

–उपश्रेणिक जैन
चन्द्रनगर, सहारनपुर

जैन मन्दिरों के निर्माण की परम्परा का प्रारम्भ हमें भगवान ऋषभ देव के काल से ही प्राप्त हो जाता है। अन्तिम कुलकर श्री नाभिराय की राजमहिषी माता मरूदेवी के गर्भ में अवतरित होने के छः माह पूर्व इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने अयोध्या नगरी को निर्माण किया एवं नगर की चारों दिशाओं तथा नगर के मध्य में पांच देवालयों का निर्माण किया और उनमें मूर्तियों की स्थापना की।

ऋषभ देव ने अपने काल में जन साधारण को जीविकोपार्जन के छः उपाय बताये (१) असि (२) मसि (३) कृषि (४) विद्या (५) वाणिज्य (६) कला (शिल्प, आदि विभिन्न कलाएं)। भगवान ऋषभ देव ने कठोर तप कर केवलज्ञान प्राप्त किया। मनुष्यों को समवशरण के माध्यम से पूर्ण समाज के लिए हितकारी, सुखकारी एवं कल्याणकारी धर्मदिशना दी जिससे मनुष्यों को असीम शान्ति प्राप्त हुई। इस कारण मानव समाज के मन में ऋषभ देव के प्रति श्रद्धा और भक्ति की अविरल धारा प्रवाहित होने लगी। उनके मोक्ष जाने के बाद मन में समवशरण की प्रतिकृति बनाकर उसमें ऋषभ देव की तदाकार मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करने की भावना जागृत हुई और देवालयों का निर्माण कराकर उसमें ऋषभ देव की प्रतिमाएं स्थापित करने लगे।

संरचना के अनुसार मन्दिरों को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है प्रथम जिनपर शिखर होता है अर्थात् जिन मन्दिरों में मुख्य वेदी के ऊपर ऊंचा गोल अथवा चौकार गुम्बद होता है, जो बहुत दूर से दिखाई पड़ता है, ऐसे मन्दिर शिखरबन्द मन्दिर कहलाते हैं। जिस प्रकार जिस व्यक्ति के सिर पर मुकुट रख दिया जाता है वह दूसरे व्यक्तियों में श्रेष्ठ माना जाता है। इसी प्रकार जिस भवन के ऊपर शिखर बना दिया जाता है वह अन्य भवनों से श्रेष्ठ बन जाता है। इसके साथ ही शिखर का अपना एक विशेष महत्व है। शिखर की रचना मनीषियों के द्वारा वैज्ञानिक सिद्धान्त पर की गई है। विज्ञान के अनुसार शिखर एक पिरामिड सदृश रचना हैं जो व्यक्ति उसके नीचे बैठता है उसके मन की चंचलता धीरे-धीरे एकाग्रता की ओर बढ़ती है और मन में शान्ति प्राप्त होती है। इसीलिए इसको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्यान करने का उत्तम स्थान माना गया है। इसी वैज्ञानिक कारण को ध्यान में रखते हुए बहुत से ध्यान केन्द्रों की छतों की रचना पिरामिड्स के आकार में की जा रही हैं। जिससे श्रद्धालु उनके नीचे बैठ कर अधिक से अधिक आध्यात्मिक लाभ प्राप्त कर सकें।

द्वितीय वे मन्दिर हैं जिनमें एक कमरे में वेदी बनाकर प्रतिमाएं स्थापित कर दी जाती हैं। ऐसे मन्दिर जिन चैत्यालय कहलाते हैं। इन पर शिखर नहीं होता। अधिकतर ऐसे चैत्यालय अस्थायी होते हैं और कुछ समय बाद शिखर बन्द मन्दिर में स्थानान्तरित हो जाते हैं। यहां पर चन्द्रनगर मन्दिर जिसके अभी पंचकल्याणक हुए हैं इससे पूर्व चैत्यालय रूप में ही था।

सहारनपुर में मन्दिरों में अरिहन्त व सिद्ध दोनों ही प्रकार की मूर्तियां विराजमान हैं। प्रायः मूर्तियां चौबीस तीर्थंकरों की व अरहंत अवस्था में होती है। जिनकी पहचान उन पर अंकित चिन्ह द्वारा की जाती है। इनके अतिरिक्त कुछ मन्दिरों में भगवान बाहुबलि, भरत एवं चिन्ह रहित अरहंत भगवान की मूर्तियां मिलती हैं। भगवान बाहुबलि ने इतना कठोर तप किया था कि शरीर पर कई प्रकार की बेलें उग आयीं जो उनके हाथ व पैरों पर चढ़ गई थीं एवं इनकी मूर्ति सदैव खड़गासन ही मिलती है क्योंकि उन्होंने खड़गासन ही तप कर केवल ज्ञान प्राप्त किया था।

संगोष्ठी स्थल जैनबाग

सहारनपुर में कुल १८ मन्दिर है। इनमें क्षेत्र की दृष्टि से जैनबाग, वीरनगर स्थित "श्री दिगम्बर जैन पंचायती मन्दिर" जैन (संगोष्ठी स्थल), सहारनपुर का संबसे बड़ा मन्दिर है। इसमें भगवान महावीर की लगभग ५.५ फुट ऊंची पद्मासन अवस्था में मूर्ति विराजमान है। इसके दोनों तरफ भगवान पार्श्वनाथ की काले पाषाण की ऊंची पद्मासन अवस्था में विराजमान है। इस मन्दिर जी में प्रमुख वेदियों के सामने एक विशाल द्वार एवं प्रांगण है। जिसमें कई हजार व्यक्ति पूजा अर्चना कर सकते हैं। मन्दिर जी के द्वार के सामने लगभग ३० फुट ऊंचा मानस्तम्भ बना हुआ है। इसे लाला महेन्द्र लाल जैनी ने सन् १९६२ ई. में बनवाया था। मन्दिर के मुख्य भवन के पास ही एक पांडुकशिला बनी हुई है जिस पर वार्षिक रथोत्सव एवं सहारनपुर में पंचकल्याण के जन्मोत्सव पर भगवान का अभिषेक होता है। यह पांडुकलशिला सन् १९२८ ई. में लाला आत्माराज जी रईस द्वारा बनवाई गई थी। तीर्थंकर के जन्म के समय स्वर्गलोक से इन्द्र अपनी पत्नी शचि के साथ भगवान को लेकर अपने ऐरावत हाथी पर लेकर लेकर सुमेरू पर्वत पर स्थित पांडुक शिला पर १००८ कलशों में क्षीर सागर के नीर से भगवान का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभिषेक कर वस्त्राभूषण पहनाकर अलंकृत करते हैं।

इसके अहाने में एक बहुत बड़ी जैन धर्मशाला, जैन मंच, जैन पुस्तकालय तथा जैन धर्मार्थ होम्योपैथिक चिकित्सालय बना हुआ है। जैन बाग का मुख्य भवन लगभग १०० वर्ष पुराना है। इसमें स्थायी रूप से मूर्तियों की स्थापना १९५६ ई. में हुई थी। इससे पहले यहां पर प्रतिवर्ष रथोत्सव पर कार्तिक बदी ४ से कार्तिक बदी ९ तक छः दिन भगवान स्थापित होते थे। शहर के सभी वार्षिक कार्यक्रम जैसे महावीर जयन्ती, महावीर निर्वाणोत्सव, श्रुत पंचमी,, पार्श्वनाथ निर्वाणोत्सव, ऋषभ जयन्ती आदि महोत्सव भी सामूहिक रूप से इसी मन्दिर जी में मनाये जाते हैं। जैन बाग के सामने एक अतिथि भवन का निर्माण हुआ है जिसमें साधुओं के रहने की व्यवस्था की गई है। इसके नीचे नरेश चन्द पैथोलोजिक प्रयोगशाला है जिसमें आधुनिक यन्त्रों के द्वारा बाजार से काफी कम मूल्य पर जाँच की जाती है। जिससे जैन समाज ही नहीं वरन् पूरा सहारनपुर जनपद लाभान्वित हो रहा है।

चमत्कारिक घटना

१८ अगस्त १९८४ की रात्रि में कुछ चोर मन्दिर जी मे आ गये तथा यहां के कर्मचारियों को डराकर चाकू की नोंक गले में लगाकर मन्दिर जी की चाबियां हासिल कर ली। मन्दिर जी के अन्दर पहुंचकर उन्होंने सारा सामान बांध लिया और यहीं नहीं बल्कि एक चोर मूर्ति पर पैर रखकर ऊपर चढ़ गया और वहीं पर लगी बुर्जियां तोड़ ली। लेकिन जैसे ही सारा सामान लेकर श्री मन्दिर जी की पिछली दीवार फांदकर सड़क पर पहुंचे तो गठड़ी से एक कटोरा निकलकर सड़क पर गिर पड़ा, उसी समय पुलिस गश्त पर थी, उसने कटोरा उठाकर प्रकाश में जैन मन्दिर का नाम देखा। उसको देखकर उन्होंने चोरों को ललकारा और वहीं मुठभेड़ में एक चोर मारा गया और शेष सामान वहीं छोड़कर भाग गये। बाद में पता चला कि वह चोर ही गिरोह का सरदार था और इसने ही मूर्ति पर पांव रखे थे। इन मूर्तियों के अतिशय की अन्य कई किवदन्तियां प्रचलित हैं।

सन् १९४७ में श्री गणेश प्रसाद वर्णी जी का सहारनपुर शहर में शुभागमन हुआ। उन्हीं की प्रेरणा से जैन बाग में श्री दि. जैन गुरुकुल की स्थापना हुई। जिसमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों के आवास व भोजन की निःशुल्क व्यवस्था थी तथा लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी दी जाती थी। सन् १९५४ में यह गुरुकुल यहां से हस्तिनापुर (जिला मेरठ) में स्थानान्तरित हो गया जहां पर आज भी वह सुचारू रूप से वृद्धि की ओर अग्रसर है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्दिर मौहल्ला चौधरियान

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर रचना की दृष्टि से अद्वितीय है। यह बहुत ही प्राचीन मन्दिर है एवं प्रथम मंजिल पर स्थित है। अलग-अलग समय में तीन अलग-अलग मन्दिरों का निर्माण एक ही भवन में किया गया। सबसे पहले एक जिन चैत्यालय बनाया गया जिसमें मूलनायक प्रतिमा श्री चन्द्रप्रभु भगवान की ही थी। इसी वर्ष इसके नीचे स्थित आरा मशीन में आग लग गई थी, जिससे की चन्द्र प्रभु मन्दिर का फर्श नीचे गिर गया परन्तु वेदी एवं बाहर निकलने के लिए बीच में डेढ़-दो फुट का फर्श शेष रहा जिससे उस अग्नि में से श्रावक प्रतिमा जी को लाए। किसी जिन बिम्ब को कोई क्षति नहीं। इतनी चमत्कारिक है यह प्रतिमा। इस समय यहां का निर्माण कार्य पूरा होकर जिनबिम्ब विराजमान कर दिये हैं।

इसके पश्चात् बीच की वेदी का निर्माण हुआ जिसमें मूलनायक भगवान नेमिनाथ की प्रतिमा है। इसके ऊपर बहुत ही ऊंचा शिखर बनाया गया। सन् १९२८ में ला. मुकुन्द लाल ने नन्दीश्वर द्वीप की रचना करायी।

बड़तला यादगार

बड़तला यादगर में दो जैन मन्दिर हैं। एक मन्दिर सड़क के किनारे बना हुआ है तथा बाहर वाला मन्दिर कहलाता है। इसे लाला बुल्लामल करोड़ी मल ने बनवाया था। इस मन्दिर जी में भगवान पुष्पदंत की एक बहुत ही प्राचीन प्रतिमा है। जिसको बताया जाता है कि यह मूर्ति दक्षिण भारत के किसी मन्दिर जी से लाकर यहां स्थापित की गई थी। दूसरा मन्दिर अहाते में है। जिसे लाला भगवान दास ने १९०६ ई. में बनवाया था। इससे पहले यह मन्दिर जी पास के ही एक अन्य भवन में 'जिन चैत्यालय' के रूप में था। मुख्य भवन में मन्दिर जी स्थानान्तरित हो जाने के बाद पुराने भवन में १९१० ई. में श्री जयचन्द प्रसाद भक्त ने श्री दि. जैन बालबोधिनी सभा की स्थापना की तथा अति प्राचीन एवं दुर्लभ ग्रन्थों का संकल कर इस भवन को 'सरस्वती भवन' के रूप में परिवर्तित कर दिया इस समय सरस्वती भवन में २५० से भी अधिक विभिन्न हस्तलिखित ग्रन्थ मौजूद हैं इस भवन की दीवारों पर कांच का बहुत ही सुन्दर कार्य कराया गया था जो रख-रखाव के अभाव में नष्ट होता जा रहा है। इसी भवन की निचली मंजिल में जैन होम्पयोपैथिक चिकित्सालय चल रहा है जिसकी स्थापना भगवान महावीर के २५०० वे निर्वाण महोत्सव के समय १९७४ में की गयी थी। श्री दि. जैन बालबोधिनी सभा इस समय शहर सहारनपुर की एक प्रमुख सामाजिक एवं धार्मिक संस्था है। इसके अन्तर्गत श्री दि. जैन (होम्यो.) धर्मार्थ चिकित्सालय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छत्ता जम्बूदास एवं वीर नगर जैन बाग, श्री दयासिन्धु जीव रक्षा केन्द्र (पशु एवं पक्षी चिकित्सालय, चिलकाना रोड, लार्ड महावीरा एकेडमी, चिलकाना रोड, श्री नरेश चन्द जैन धर्मार्थ (एलोपैथिक) चिकित्सालय वीर नगर आदि अनेक महत्वपूर्ण संस्थाएं सुव्यवस्थित रूप से कार्यरत हैं।

कुछ मन्दिरों का निर्माण का सम्पूर्ण व्यय एक ही व्यक्ति के द्वारा वहन किया जाता है। ऐसे मन्दिर व्यक्तिगत कहलाते हैं एवं जिन मन्दिारें को एक से अधिक व्यक्तियों के द्वारा निर्माण कराया जाता है वे पंचायती मन्दिर कहलाते हैं। अन्य व्यक्तिगत मन्दिरों में ला. बारूमल द्वारा निर्मित श्री चन्द्रप्रभु जिनालय, छत्ता बारूमल, ला. मित्र सैन द्वारा निर्मित श्री पार्श्वनाथ जिनालय छत्ता जम्बूदास, श्री धूमसिंह खजांची द्वारा निर्मित श्री दि. जैन मन्दिर जी हलवाई हट्टा, ला. पारस दास द्वारा निर्मित श्री पार्श्वनाथ जिनालय पट का कुंआ, श्री कृपाबाई द्वारा निर्मित श्री दि. जैन मन्दिर जी, मौ. जाटवान एवं श्री दि. जैन मन्दिर जी प्रताप नगर, श्री दि. जैन मन्दिर, कबाड़ी बाजार, श्री दि. जैन मन्दिर संगियान, श्री दि. जैन मन्दिर शोरमियान, श्री दिगम्बर जैन मन्दिर आवास विकास, श्री दि. जैन मन्दिर चन्द्रनगर एवं श्री दि. जैन मन्दिर भगवती कालोनी बेहट रोड।

श्री दि. जैन मन्दिर चन्द्रनगर एवं भगवती कालोनी के पंचकल्याणक २ मई से ७ मई १९९५ तक अति वैभव एवं हर्षोल्लास के साथ परम पूज्य उपाध्याय १०८ श्री ज्ञान सागर जी महाराज और मुनि १०८ श्री वैराग्य सागर जी महाराज के सान्निध्य में सम्पन्न हुए। उन्हीं के सान्निध्य में २५ मई से २७ मई तक जैन विज्ञान संगोष्ठी हुई जिसकी जैन- जैनतर बन्धुओं ने भूरि-भूरि प्रशंसा की एवं विद्वानों द्वारा पढ़े गये शोध लेखों की प्रतियों की मांग होने के कारण ही जैन समाज द्वारा इन्हें स्मारिका रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया एवं प्रतिफल प्रस्तुत है।

सहारनपुर के जैन मन्दिों की विशेषता यह है कि ये सभी मन्दिर तन, मन, धन समर्पण के सच्चे प्रतिबिम्ब लगते हैं। सभी प्रकार से समृद्ध, विशाल, शास्त्र भण्डार, कलात्मक पच्चीकारी एवं सुन्दर भव्य वेदिकाओं सहित हैं। निश्चित ही यहां के जैन समाज की संस्कारशीलता एवं धर्मपरायता के सच्चे प्रतिबिम्ब हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संगोष्ठी आमन्त्रण प्रारूप

सान्निध्य- परम पूज्य १०८ उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज

"स्नेहामन्त्रण"

विद्वत्प्रवर

जैन धर्म एक वैज्ञानिक धर्म है। इसके दार्शनिक एवं आचार पक्ष की वैज्ञानिकता पर एक विहंगम-दृष्टि डालने के उद्देश्य से जैन वैज्ञानिकों/ विद्वानों की एक त्रिदिवसीय (जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी) का आयोजन परम पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज के पुनीत सान्निध्य में २५ से २७ मई '९५ तक सम्पन्न होने जा रहा है।

आप जैन धर्म/ दर्शन/ आगम एक विशिष्ट अध्येता एवं विज्ञानवेत्ता हैं। आपकी भागीदारी से संगोष्ठी की गरिमा बढ़ेगी। आपको सादर आमंत्रित करते हुए संगोष्ठी समिति प्रसन्नता का अनुभव करती है। अस्तु अनुरोध है कि १० अप्रैल '९५ तक अपने शोध-निबन्ध/ आलेख संयोजक को भेजन का कष्ट करें।

१. शोध-आलेख का विषय जैन धर्म के विविध पक्षों में से किसी एक पक्ष को आधुनिक विज्ञान से पुष्ट करते हुए उसकी शाश्वतता को दिखाना।

२. शोध-निबन्ध के साथ लगभग दो पृष्ठ में उसका सारांश सुवाच्य अक्षरों में पृथक से १० अप्रैल '९४ के पूर्व अनिवार्यतः भेजने का आग्रहै।

३. शोध-आलेख प्राप्त होने के पश्चात् ही आपका अंति रूप से उस स्थान की सूचना अप्रैल '९५ के अन्तिम सप्ताह में संप्रेषित कर दी जावेगी जहां उक्त संगोष्ठी सम्पन्न होगी। आपको पूर्व में पत्र द्वारा सूचित कर दिया गया था ओर शोध-आलेख के लिये पर्याप्त समय भी दिया गया है अस्तु शोध-निबन्ध की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए संगोष्ठी समिति आश्वस्त है।

४. आपके आवास व भोजनादि की समुचित व्यवस्था रहेगी। संगोष्ठी समिति मार्गव्यय के रूप में एक ओर के द्वितीय श्रेणी के रेल/ बस किराये के (आरक्षण सहित) की तीन गुनी राशि आपकी सेवा में सविनय भेंट करेगी। आलेख के लिये यथोचित मानदेय १०००/- रु. का प्रावधान पृथक से किया गया है। संगोष्ठी में आपकी तीनों दिवस उपस्थिति प्रार्थनीय रहेगी, ताकि शोध-आलेखों के वाचन व विचार मंथन में आपकी सक्रिय भागीदारी रहे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रातः यह अनुभव किया गया है कि कतिपय विद्वान अंति दिन आकर संगोष्ठी में उपस्थित होने की खानापूर्ति कर देते हैं।

५. विनम्र प्रार्थना के साथ यह अपेक्षा की जा रही है कि आप अपना शोध आलेख हेतु चिन्हित कर भेजा जा रहा है। कृपया तत्काल लौटती डाक से अपने शोध-आलेख के शीर्षक भेजने का कष्ट करें।

—निहाल चंद जैन, प्राचार्य
संयोजक- जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी
शासकीय उ.मा. विद्यालय के सामने, बीना (म.प्र.) ४७०११३

शोध-आलेखों के लिये सन्दर्भित विषय

१. "तत्वार्थ-सूत्र" ग्रंथ का पांचवा अध्याय : आधुनिक विज्ञान के आलोक में।

२. जैन गणित, ज्योतिष और कम्प्यूटर-विज्ञान

३. श्रमणों के २८ मूलगुणों की वैज्ञानिकता

४. श्रावकाचार की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि

५. णमोकार मंत्र, ध्यान, जैन-शिल्प, जैन-मन्दिर और जैन-प्रतिमा विज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

६. जैन आहार विज्ञान एवं शाकाहार की वैज्ञानिकता।

७. जैन रसायन/ वनस्पति-कंदमूल एवं अभक्ष्य शाक-सब्जियों के ग्रहण न करने की वैज्ञानिकता

८. जैन धर्म की पर्यावरण दृष्टि।

९. जैन फार्मोकोलॉजी।

१०. जैन फाइकोएकास्टिक्स/ कॉस्मोलॉजी

११. अन्य कोई विषय जो उपर्युक्त सूची में सम्मिलित नहीं है विज्ञान के गवाक्ष से।

नोट : कृपया चिन्हित शीर्षक का शोध-आलेख भेजने का कष्ट करें यदि आपका स्वतंत्र शोध-लेख नहीं है तो उसकी जानकारी संयोजक को देकर स्वीकृति प्राप्त करने का विनम्र आग्रह है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वागत भाषण

–विरेश्वर प्रसाद जैन
मंत्री श्री १००८ जिनविम्व प्रतिष्ठा महोत्सव समिति

परमपूज्य उपाध्याय १०८ श्री ज्ञानसागर जी महाराज एवं मुनि १०८ श्री वैराग्य सागर जी महाराज के श्री चरणों में सादर नमोऽस्तु। देश विदेश से पधारे जैन विद्या के मनीषीगण एवं उपस्थित समस्त धर्म प्रेमी बन्धुवर।

सहारनपुर नगर का परम पुण्योदय है कि पूज्य उपाध्याय महाराज श्री की अनुकम्पा से सिविल लाइन्स चन्द्रनगर एवं भगवती कालोनी के जिन मन्दिरों के पंचकल्याणक सानन्द सोत्साह प्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुए और आज विद्वत्प्रवर पं. रतन लाल मुख्त्यार जी की इस नगरी में ज्ञान का महाकुम्भ होने जा रहा है। आज देश विदेश के इन सरस्वती पुत्रों एवं जिनवाणी सेवकों के दर्शन कर हम कृतार्थ हुए हैं। आपके शोधपूर्ण आलेखों को सुनकर हमें नवीन जानकारियां प्राप्त होंगी। जैन धर्म का वैज्ञानिक विवेचन निश्चयतः आज की परम आवश्यकता है। हमारे यहां प्रथम बार इस प्रकार की संगोष्ठी का आयोजन हो रहा है। हम समुचित रूप से आपके स्तरानुरूप अतिथ्य भी कर पायेंगे या नहीं इसमें हमें संदेह है। हमारा आपसे करबद्ध निवेदन है कि हमें अल्पज्ञ जानकर हमारी त्रुटियों को क्षमा करेंगे।

इस भीषण तपती गर्मी में सुदूर प्रान्तों से रूस तक से जैन विज्ञान एवं गणित आदि के विद्वानों के दर्शन से हमें अपूर्व सुख की अनुभूति हो रही है। संगोष्ठी के इस विशाल आयोजन में सहयोग के लिए मैं पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव समिति की ओर से श्री दि. जैन पंचान समिति, साधु सेवा समिति, नगर की सभी समाज सेवी संस्थाओं, दान-दातारों एवं प्रशासन के साथ-साथ समिति के समस्त कार्यकर्ताओं का आभारी हूं जिन्होंने पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव को सफल वनाया तथा अव इस त्रिदिवसीय संगोष्ठी को सफल वनाने हेतु कृत संकल्प हैं।

अन्त में पुनः मैं मान्य विद्वानों से प्रार्थना करता हूं कि हमारी त्रुटियों पर ध्यान न देते हुए हमें समुचित मार्गदर्शन देने का कष्ट करें।

पूज्य मुनिद्वय के चरणों में नमोऽस्तु।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संक्षिप्त आख्या

दिनांक २५ से २७ मई १९९५

प्रतिवेदन

प्रथम सत्र (प्रातः ७.३० बजे से १० बजे)

परम पूज्य उपाध्याय श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज की पावन प्रेरणा से आयोजित जैन विज्ञान संगोष्ठी '९५ का प्रथम सत्र परमपूज्य उपाध्याय श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज एवं परम पूज्य मुनि श्री १०८ वैराग्य सागर जी महाराज के पुनीत सान्निध्य में श्रीमान् पं. नरेन्द्र प्रकाश जैन (प्राचार्य) अध्यक्ष अ.भा.दि. जैन शास्त्री परिषद द्वारा दीप प्रज्वलन के साथ शुभारम्भ हुआ। सर्वप्रथम आगन्तुक विद्वानों/ वैज्ञानिकों का आयोजन समिति के पदाधिकारियों/ सदस्यों द्वारा संगोष्ठी फाइल, मंगलकलश, पुष्पहार, भेंट कर बैज लगाकर स्वागत किया गया। संगोष्ठी के संयोजक प्राचार्य निहालचन्द जैन द्वारा रूपरेखा प्रस्तुत करने के बाद डॉ. अशोक कुमार जैन, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म. प्र.) द्वारा 'कन्दमूल एवं अन्य अभक्ष्यों के सूक्ष्म जैविक पर्यावरण के सन्दर्भ में जैन धर्म के वैज्ञानिक तथ्य विषय पर आलेख पाठ किया गया।' इस उद्घाटन सत्र के अध्यक्ष प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में कहा कि जैन धर्म पूर्ण वैज्ञानिक धर्म है। आज तक कोई विद्वान तीर्थंकरों की वाणी को काट नहीं पाया है। उन्होंने जैन मन्दिरों में जैन शोध प्रयोगशालायें खोलने का आह्वान किया। परमपूज्य उपाध्याय श्री ने अपने आशीर्वचन में कहा कि जन-जन की आत्मा प्रकाशमय बन सकती है। यह वसुन्धरा पवित्र है क्योंकि यहां राम, सीता, महावीर कुन्द-कुन्द जैसे महामानवों ने जन्म लिया है। शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिए हमें मर्यादित पदार्थों का उपयोग करना चाहिए।

ब्र. बहिन अनीता जी एवं ब्र. बहिन शशी जी के मंगलाचरण से प्रारम्भ इस सत्र में श्री पं. निर्मल जैन (सतना) ने चन्द पंक्तियां पू. मुनिद्वय के प्रति विनयांजलि स्वरूप पढ़ी। डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल ने (जयपुर) द्वारा पू. मुनिद्वय को अपनी कृति राजुल के आंसू भेंट की। सत्र का संचालन प्राचार्य निहालचन्द जैन (बीना) एवं डॉ. नीलम जैन सहारनपुर ने किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिनांक २५ मई १९९५ द्वितीय सत्र (दोपहर २ से ५ बजे)

परमपूज्य उपाध्याय श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज एवं परमपूज्य मुनि श्री १०८ वैराग्यसागर जी महाराज के पावन सान्निध्य में श्री इन्द्रप्रसाद जैन (सहारनपुर) के मंगलाचरण से प्रारम्भ इस द्वितीय सत्र में डॉ. नन्दलाल जैन (रीवा) ने जैन भौतिकी एवं नीवन भौतिकी, डॉ. जयकुमार जैन (मु.नगर) ने मंगलमंत्र णमोकारः एक विश्लेषण, डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती' (बुरहानपुर) ने 'पर्यावरण संरक्षण और जैन धर्म' डॉ. अभयप्रकाश जैन (ग्वालियर) ने 'मानव शरीर चुम्बकीय गुणों का स्वचालित यंत्र' विषय पर अपने शोध आलेख प्रस्तुत किये। आगन्तुक विद्वानों का स्वागत किया गया। पू. उपाध्याय श्री ने अपने मंगल आशीर्वाद में कहा कि 'सागर में गागर भर देना,' यह मनीषियों की विशेषता है। विज्ञान में परिवर्तन सम्भव है किन्तु सिद्धान्त में परिवर्तन सम्भव है किन्तु सिद्धान्त में परिवर्तन सम्भव नहीं है। हमें प्राप्त सुविधाओं का उपयोग आवश्यकतानुसार करना चाहिए।

इस सत्र का संचालन डॉ. नीलम जैन एवं अध्यक्षता डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल (जयपुर) ने की। संयोजन- प्रा. निहालचन्द जैन ने किया।

तृतीय सत्र (रात्रि ७.३० बजे से १० बजे तक)

श्री विनोद कुमार जैन (सहारनपुर) के मंगलाचरण से डॉ. नंद लाल जैन (रीवा) की अध्यक्षता में आयोजित इस तृतीय सत्र में डॉ. सुपार्श्वकुमार जैन (बड़ौत) में 'जैन आहार एक वैज्ञानिक विवेचन' एवं पं. निर्मल जैन (सतना) ने 'जैन आहार विज्ञान एवं शाकाहार' की वैज्ञानिकता विषय पर अपने शोध-आलेखों का वचान किया। व्याख्यान की श्रृंखला में प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन (फिरोजाबाद) का व्याख्यान हुआ। इस सत्र का संचालन डॉ. जयकुमार जैन (मु.नगर) एवं संयोजन प्रा. निहालचन्द जैन (बीना) ने किया। जिनवाणी स्तुति के उपरान्त सत्र समाप्त हुआ।

चतुर्थ सत्र दिनांक २६.५.९५ (समय प्रातः ७.३० बजे से १० बजे)

परमपूज्य उपाध्याय श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज एवं परमपूज्य मुनि १०८ वैराग्य सागर जी महाराज के पुनीत सान्निध्य में श्री विनोद कुमार जैन (सहारनपुर) के मंगलाचरण किया एवं डॉ. पारसमल अग्रवाल ने जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में प्रकृति व्यवस्था, डॉ. अजित कुमार जैन (विदिशा) के 'पौद्गालिक स्कन्धों का वैज्ञानिक' विश्लेषण सन्दर्भ-तत्वार्थ सूत्र अध्याय ५ के सूत्र २७-२८ एवं ३३ से ३७ तक' तथा डॉ. नलिन शास्त्री (बोधगया) ने 'जैनदर्शन एवं पर्यावरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संरक्षण' जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर शोधलेख के वाचन से सुरक्षित हुआ। पू. उपाध्याय श्री अपने समीक्षात्मक आशीर्वचन में कहा कि यह प्राणी स्वयं ही अपना कर्त्ता-धर्त्ता एवं संरक्षक है। विना समता के सुख की प्राप्ति संभव नहीं है। आत्मवैभव से परिचय कर लेने वाला सिद्धालयों में विराजमान हो जाता है। एड्स जैसी वीमारियों का इलाज संयम में है। संयम और त्याग के विना जीवन में शांति नहीं मिल सकती। सेठ सुदर्शन की प्रतिष्ठा का कारक स्वदार सन्तोषव्रत था। हमें अपने जीवन को सफल वनाने के लिए अहिंसा विज्ञान को हृदयंगम करना चाहिए।

पंचम सत्र दिनांक २६.५.९५ (दोपहर २ से ५.३० बजे)

परमपूज्य उपाध्याय श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज एवं परमपूज्य मुनि श्री वैराग्यसागर जी महाराज के पुनीत सान्निध्य में डॉ. पारसमल अग्रवाल (उज्जैन) की अध्यक्षता में श्री विनोद कुमार जैन के मंगलाचरण से प्रारम्भ इस पंचम सत्र में डॉ. आर.सी. जैन (उज्जैन) ने 'जैन आगमों में उपलब्ध गणितीय सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन' डॉ. नीलम जैन (सहारनपुर) ने 'अनुसंधान में पशुबलि क्या कोई विकल्प है?' डॉ. रमेशचन्द जैन (विजनौर) ने 'उपवास एवं उसकी वैज्ञानिकता' तथा डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर) ने 'आचार्य श्रीधर और उनका गणितीय अवदान' विषय पर शोधपूर्ण आलेख प्रस्तुत किया।

इस अवसर पर पू. उपाध्याय श्री ने अपने मंगलमयी उद्‌वोधन में कहा कि जैन दर्शन की जड़ें वहुत गहरी हैं, जो विपरीतमतियों के अपलापों से नहीं उखड़ सकती पू. वर्णी जी, पं. महेन्द्र कुमार जी न्यायाचार्य, पं. रतनचन्द मुख्त्यार आदि मनीषियों के अवदान को कभी भुला नहीं सकती। मैं स्वयं विद्वत अनुरागी हूं अतः विद्वानों के श्रम को समझता हूं। पूर्वाचार्यों ने विना कलम-स्याही के भोजपत्रों पर कांटों से लिखकर जैनागाम की सेवा की, हम और हमारी पीढ़ियां उनके उपकार को भुला नहीं सकती।

इस सत्र का सफल संचालन डॉ. अशोक कुमार जैन (लाडनूं) ने किया।

षष्ट्म सत्र दिनारंक २६.५.९५ (समय रात्रि ८ से १०.३०)

संगोष्ठी का यह षष्ट्म सत्र श्री डॉ. जयकुमार जैन (मु.नगर) के मंगलाचरण से प्रारम्भ हुआ। इसमें प्राचार्य निहालचन्द (बीना) ने 'अनेकान्त एक वैज्ञानिक विवेचन' एवं डॉ. एम.एम. बजाज (दिल्ली) ने 'मांसाहार और मद्यपान से मस्कुलर डिस्ट्राफी का जन्म' विषय पर शोधलेखों का वाचन कया। डॉ. बजाज ने प्रोजेक्टर के माध्यम से विषय से सम्बन्धित फिल्म भी दिखाई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस सत्र की अध्यक्षता पं. निर्मल जैन (सतना) एवं संचालन डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती' ने किया।

सप्तम सत्र दिनांक २७.५.९५ (समय ७.४५ बजे से)

परमपूज्य उपाध्याय श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज एवं परमपूज्य मुनि श्री १०८ वैराग्य सागर जी महाराज के परम पुनीत सान्निध्य में डॉ. रमेश चन्द जैन (बिजनौर) की अध्यक्षता में सम्पन्न इस सत्र में ब्र. बहिन सविता जैन के मंगलाचरण पाठ के उपरान्त डॉ. लक्ष्मीचन्द जैन (जबलपुर) के 'जैनाचार्यों का गणितीय दर्शन' विषयक शोध आलेख का वाचन उनके प्रतिनिधि श्री क्रिवोव सरकुई (रूस) ने किया। तदुपरान्त डॉ. एस.सी. अग्रवाल (मेरठ) ने जैन गणितीय क्षेत्र में हो रहे कार्यों पर प्रकाश डाला। इसी सत्र में डॉ. अशोक कुमार जैन (लाडनूं) ने 'अष्ट मूलगण का शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक विवेचन विषय पर अपने शोधलेख का वाचन किया। सत्र के अध्यक्ष डॉ. रमेश चन्द जैन (बिजनौर) ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में जैनाचार्यों द्वारा विविध विषयों में की गई रचनाओं का उल्लेख करते हुए सर्वज्ञत्व को निकटता का सूचक बताया। आचार्य वीरसेन एवं आचार्य जिनसेन के कृतित्व को देखकर इसमें शंका नहीं रह जाती कि सर्वज्ञ नहीं होते होंगे। अष्ट मूलगुण हमारे समाज की आधार भित्ति है। इनके बिना जैनत्व नहीं रह सकता। अध्यक्ष जी ने सहारनपुर समाज का आह्वान किया कि वह रात्रि भोजन के त्याग का संकल्प लें।

परमपूज्य उपाध्याय श्री ने अपने मंगलमयी प्रवचन में कहा कि संगोष्ठी की सार्थकता तभी है जब हम सामाजिक कुरीतियों विकृतियों से बचें। नशीले गुटखा, शराब रात्रिभोजन मांसाहार आदि के सेवन को न तो धर्म सही मानता है और न ही विज्ञान। अतः हमें इनसे बचना चाहिए।

संगोष्ठी के इस सत्र का संचालन डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर) ने किया। आगन्तुक सभी विद्वानों/वैज्ञानिकों का आयोजन समिति की ओर से 'श्रुतश्री' की उपाधि प्रशस्ति पत्र शाल आदि के द्वारा अभिनन्दन किया गया।

सम्पूर्ण संगोष्ठी की सफलता का श्रेय परमपूज्य उपाध्याय श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज की पावन प्रेरणा एवं पावन सान्निध्य को जाता है। पू. मुनि श्री वैराग्यसागर जी महाराज मोनी बाबा के सान्निध्य को तो हम अपना अहोभाग्य मानते हैं। उक्त मुनिद्वय के प्रति कृतज्ञता के साथ त्रिकाल नमोऽस्तु निवेदित करता हूं। देश के विभिन्न अंचलों से पधारे सभी विद्वान/वैज्ञानिकों के प्रति में हार्दिक आभार व्यक्त करता हूं जिनकी चिन्तनात्मक भागीदारी एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शोधपत्रों से यह संगोष्ठी आयोजकों की भावना को सार्थक कर रही है। अंत में मैं सर्वाधिक आभार संगोष्ठी की आयोजन सकल दि. जैन सकल, सहारनपुर के प्रतिवेदना चाहता हूं जिनके मधुर आतिथ्य एवं संगोष्ठी की भागीदारी श्लायनीय है।

शेष सभी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहभागियों को मेरा हार्दिक धन्यवाद।

सांख्यिकी दृष्टि में यह संगोष्ठी

१. संगोष्ठी में देश के पांच प्रदेशों मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, दिल्ली के २१ विद्वान/ वैज्ञानिकों ने पधार कर अपने शोध खोजपूर्ण आलेख प्रस्तुत किये। यदि उक्त पांच राज्य को जनसंख्या की दृष्टि से देखें तो यह संगोष्ठी अखिल भारतीय स्वरूप को धारण करती है।

२. प्रथम बार देश में एक साथ जैन धर्म, जैन विज्ञान, जैन पर्यावरण एवं जैन गणित इन चारों विषयों के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा हुई।

३. परमपूज्य उपाध्याय श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज एवं परमपूज्य मुनि श्री वैराग्यसागर जी महाराज का पावन सान्निध्य प्रेरणा, सद्विचार एवं उज्ज्वल चरित्र के दर्शन का सौभाग्य इस संगोष्ठी के बीच मिला।

४. संगोष्ठी में सहारनपुर की प्रबुद्ध समाज की अपार भागीदीर प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय रही।

५. समय की दृष्टि से यह संगोष्ठी कुल मिलाकर २१ घण्टे चली। लगभग ढाई दिन में २१ घण्टे ज्ञान-विज्ञान एवं धर्म को समर्पित करना हमारी शुभास्रव की स्थिति का परिचायक है।

६. विज्ञान और धर्म के बीच समन्वय पथ प्रशस्त होने के कारण, यह संगोष्ठी ऐतिहासिक एवं विस्मरणीय रहेगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन विज्ञान राष्ट्रीय संगोष्ठी में आमंत्रित वैज्ञानिकों/विद्वानों की सूची

१. प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन	:	१०४, नई बस्ती, फिरोजाबाद (उ.प्र.) २८३२०३
२. अशोक कुमार जैन	:	रीडर स्कूल ऑफ स्टडीज, वनस्पति विज्ञान जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)
३. डॉ. एम.एम. बजाज	:	भौतिकी एवं ऑस्टोफिजिकल, देहली विश्वविद्यालय, देहली
४. डॉ. अभय कुमार जैन	:	एन-४, चेतकपुरी, ग्वालियर पिन-४७४००९ (म.प्र.)
५. डॉ. अशोक कुमार जैन	:	जैन दिव्य विभाग, जैन विश्वभारती, लाडनूं पिन ३४१३६०
६. डॉ. अनुपम जैन	:	प्राध्यापक एवं सम्पादक 'अर्हत्वचन्' ३०६ समवशरण एपार्टमैण्ट, तुकोगंज, इन्दौर (म.प्र.)
७. श्री सुरेश जैन आई.ए.एस.	:	आयुक्त गैस राहत, ३० निशान्त कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)
८. डॉ. अजित कुमार जैन	:	प्राध्यापक एस.एस.एल. जैन महाविद्यालय विदिशा (म.प्र.)
९. डॉ. अजय कुमार जैन	:	प्रवक्ता संस्कृत विभाग. एस.डी. कालेज, मु.नगर (उ.प्र.) २५१००१
१०. डॉ. श्रीमती नीलम जैन	:	द्वारा: श्री यू.के. जैन सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, कोर्ट रोड, सहारनपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११. श्री निर्मल जैन	:	सुषमा प्रेस- शान्ति सदन, सतना (म.प्र.) पिन ४५०००१
१२. डॉ. आर.सी. जैन	:	५, एफ टाइफ क्वार्टर्स विश्वविद्यालय परिक्षेत्र, उज्जैन -४५६०१०
१३. डॉ. पारसमल अग्रवाल	:	स्कूल ऑफ स्टडीज भौतिकी, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
१४. डॉ. सुरेन्द्र कुमार आर्य	:	२२, भक्त नगर, दशहरा मैदान, उज्जैन- ४५६०१०
१५. डॉ. अरूण कुमार शास्त्री	:	सेठ जी की नशिया व्यावर (राज.) पिन- ३०५६०१
१६. डॉ. नलिन शास्त्री	:	प्राचार्य वैश्य महाविश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
१७. डॉ. राजाराम जैन	:	महाजनी टोला नं. २, आरा (बिहार)
१८. डॉ. सुरेन्द्र कुमार 'भारती'	:	सी-४४, इन्दिरा नगर कालोनी, बुरहानपुर (म.प्र.)
१९. डॉ. श्रेयांस कुमार जैन	:	१२/५४४, गांधी रोड, बडौत (उ.प्र.) पिन-२५०६१०
२०. डॉ. सुपार्श्व कुमार जैन	:	१६, जैन कालेज क्वार्टर्स, नेहरु रोड, बड़ौत (उ.प्र.) पिन-२५०६११
२१. डॉ. नंदलाल जैन	:	जैन केन्द्र, रीवा (म.प्र.) पिन-४८६००१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन धर्म के वैज्ञानिक तथ्य-कंदमूल एवं अन्य अभक्ष्यों के सूक्ष्म जैविक पर्यावरण के विशेष संदर्भ में

–डॉ. अशोक जैन
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

सूक्ष्म जैविकों का पर्यावरण से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। सूक्ष्मदर्शी की सहायता के बगैर इनका अध्ययन अत्यन्त कठिन एवं असम्भव ही है। विभिन्न प्रकार के वातावरण में हजारों, लाखों प्रकार के सूक्ष्म जीव निवास करते हैं। कंदमूल इत्यादि वनस्पतियां जो कि सीधे मिट्टी में रहती हैं, वास्तव में इन सूक्ष्म जीवों से ही घिरी रहती हैं। इन जीवों में प्रोटोजोआ, आर्थीपोडा, मौलस्का, शैवाल, फफूंद, बैक्टिरिया इत्यादि प्रमुख है।

जैन दर्शन में इन कंदमूलों को अभक्ष्य बताया गया है जो कि वास्तव में सत्य है। इनके भक्षण से इनके आस-पास की मिट्टी खोदना पड़ता है जिसमें कि हजारों सूक्ष्म जीव निवास करते हैं।

वैज्ञानिकों ने खोजों के आधार पर सिद्ध किया है कि पृथ्वी पर लगभग ५० लाख से एक करोड़ के बीच पौधों एवं जन्तुओं की प्रजातियां मनुष्य द्वारा गलत तरीके से प्रकृति दोहन के परिणामस्वरूप नष्ट हो रही हैं। अध्ययन के अनुसार भारतवर्ष में ही लगभग ४५००० प्रकार की वनस्पतियों की प्रजातियां हैं इनमें लगभग ५००० प्रजातियां ऐसी हैं जो भारत के अलावा अन्यत्र नहीं पाई जाती हैं।

कंद-मूल इत्यादि वस्तुतः तना अथवा जड़ों के रूपान्तरण हैं जिसमें पौधों का खाद्य पदार्थ संचित हो जाता है। इन कंद-मूलों के पौधों का जीवन चक्र पूर्ण होने के पूर्व ही उपयोग में लाना कहां तक उचित है? जैन आहार विधि में जितने भी खाद्य पदार्थ हैं यह परिपक्व अवस्था में उपयोग में लाये जा सकते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी यह उचित है। कई ऐसी चयापचयी क्रियायें होती हैं जो अपरिक्व अवस्था में स्वास्थ्य को भी प्रभावित करती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आधुनिक युग में खेती हेतु उपयोग में लाये जाने वो कीटाणुनाशक दवाओं का सीधा एवं अधिक प्रभाव इन कंद-मूलों पर ही होता है एवं हानिकारक हो जाते हैं।

भूमि के अन्दर नमी एवं अंधेरे होने से इन सूक्ष्म जीवों की अत्यन्त वृद्धि होती है। इनके भक्षण में न केवल इन जीवों का नाश होता है अपितु पर्यावरणीय असंतुलन भी उत्पन्न होता है। इसी प्रकार उदुम्बर फलों में भी असंख्य कीटों का वास होता है एवं उनके खाने से हिंसा होती है। वैसे जैन आहार में जितनी भी भक्ष्य वनस्पतियां वर्णित हैं वह वनस्पतियों के अनुसार एक ही पुष्प से विकसित होती हैं। बहुपुष्पीय फलों के भक्षण का निरोध है जो कि वस्तुतः सत्य है। इन फलों में प्रमुख रूप से कटहल, शहतूत, उदुम्बर फल इत्यादि प्रमुख हैं।

जैन धर्म में आध्यात्मिक शुचिता के साथ-साथ शारीरिक एवं वातावरण की शुचिता को भी विशेष महत्व दिया गया है।

आधुनिक विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि हमारे पर्यावरण के प्रत्येक अवयव अर्थात् भूमि, जल, वायु, वनस्पतियों, जन्तुओं एवं मानव के अन्दर एवं बाहर अनेकों प्रकार के सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं। यह सूक्ष्म जीव, जीवाणु (बैक्टिरिया), विषाणु (बाइरस), कवक इत्यादि वर्गों के होते हैं। इन्हें वैज्ञानिकों ने पादप (पौधे) वर्ग में रखा है यह जीव केवल सूक्ष्मदर्शी यंत्रों की सहायता से ही देखे जा सकते हैं, अर्थात् साधारण आंख से देखना सम्भव नहीं है। इन्हीं सूक्ष्म जीवों का विस्तृत अध्ययन 'सूक्ष्म जीव विज्ञान' (माइक्रोबायलॉजी) कहलाता है। इनकार आकार एक मि.मि. के दस हजारवें भाग से भी कम हो सकता है। उचित वातावरण मिलने पर यह जीव कुछ ही क्षणों में विभाजित होकर असंख्य हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जैन धर्म में बताये गये 'निगोदिया' जीव शायद यही हैं।

यह सूक्ष्म जीव लाभदायक एवं हानिकारक दोनों प्रकार के होते हैं। कुछ लाभदायक जीव एक निश्चित अवधि के बाद हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करने लगते हैं।

जैन धर्म में अधिकांश खाद्य पदार्थों की एक निश्चित मर्यादा बतायी गयी है अर्थात् उस अवधि के बाद वह पदार्थ अभक्ष्य हो जाता है। वास्तव में इन सूक्ष्म जीवों के आक्रमण से ही वह पदार्थ दूषित हो जाते हैं। जैन धर्म के इन दिशानिर्देशों को जानकर वास्तव में आश्चर्य होता है। अत्यन्त प्राचीनकाल में जबकि आधुनिक उपकरणों का अभाव था तब किस प्रकार जैन विद्वानों एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संतों ने इस सूक्ष्म जीव विज्ञान के नियम प्रतिपादित किये होंगे। वास्तव में यह उनके तीव्र विज्ञान चक्षुओं के अनुसंधान का ही प्रतिफल है।

जैन आहार (खान-पान) में जो मर्यादाएं बतलाई गई हैं उनमें कुछ प्रमुख निम्न हैं:-

१. आटा की मर्यादा बरसात में ३ दिन, ग्रीष्म में ५ दिन, शरद में ७ दिन हैं।

आधुनिक सूक्ष्म जीव विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि चूंकि बरसात में नमी अधिक होती है एवं सामान्य तापक्रम भी २५ डिग्री से ३५ डिग्री से.ग्रे. के लगभग होता है। अतः ऐसी स्थिति में एस्परजिलस, म्यूकर, राइजोपसं, सेकेरोमाइसिस इत्यादि कवकों के जीवाणु आक्रमण कर आटे को दूषित कर देते हैं। ग्रीष्म ऋतु में अधिक ताप होने से एवं शीत ऋतु में कम ताप होने से इनकी वृद्धि क्रमशः ५ एवं ७ दिन बाद हो पाती है।

२. दूध एवं उससे बनने वाले पदार्थों में तो जीवाणुओं (वैक्टिरिया) का अत्यन्त प्रभाव होता है। दूध, दही, मक्खन, पनीर, खोया आदि में निम्न चार वर्ग के जीवाणु पाये जाते हैं।

अ. साइक्रोफिकलिक ब. मीजोफिलिक स. थर्मोफिलिक द. थर्मोडयूरिक

दूध से दही बनने की क्रिया में दूध में उपस्थित लैक्टोज और ग्लूकोज शर्कराओं के अणु ग्लाइकोलिसिस द्वारा पाइरूविक अम्ल बनाते हैं जो सीधे ही हाइड्रोजन परमाणुओं द्वारा अपचयित होकर लेक्टिक एसिड बनाता है। इसी कारण दूध में खट्टापन आ जाता है जिससे दूध के प्रोटीन (केसिन) व वसा (फैट) अवेक्षिपित होकर दही के रूप में जम जाते हैं।

दही की मर्यादा (यदि गर्म दूध में जामन डाला गया है) २४ घण्टे की है। वास्तव में इस अवधि के बाद दही में अन्य कई प्रका के बैक्टिरिया क्रियाशील हो जाते हैं अर्थात जैसे खट्टापन बढ़ता जाता है वैसे ही वोसिलस, वलोस्टिडियम, स्यूडोमोनास, प्रोटियस आदि जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ जाती है और अल्कोहल का निर्माण शुरू हो जाता है।

३. जिस दही में शक्कर, बूरा या किशमिश, छुआरा आदि पड़ा हो उसकी मर्यादा ४८ मिनट की ही होती है। इन मीठे तत्वों की उपस्थिति में इन जीवाणु में शीघ्र ही सक्रियता आ जाती है।

४. प्रासुक जल की मर्यादा १२ से लेकर २४ मिनट तक होती है जवकि बिना प्रासुक जल ४८ मिनट ही है। जल में इश्चिरिचिया कोलाई एवं वलोस्ट्रिडयम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नामक जीवाणु अधिसंख्य मात्रा में होते हैं जो उक्त अवधि के बाद पुनः सक्रिय हो जाते हैं।

५. मक्खन इत्यादि की मर्यादा वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार (आदि उचित तरीके में रखा जावे) कुछ दिनों ही होती है। मक्खन में शर्करा एवं प्रोटीन अणु कम होते हैं एवं लवण ज्यादा होता है। ऐसी स्थिति में सूक्ष्म जीव शोध सक्रिय नहीं हो पाते हैं।

उपरोक्त तथ्यों से प्रतीत होता है इन सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रिया विधियों का जैन आचार्यों एवं विद्वानों को समुचित ज्ञान था। फरमेन्टेशन जैसी क्रिया, जिसमें अल्कोहल का निर्माण होता है, होने के पूर्व ही भोज्य पदार्थों का उपयोग बताया गया है।

ओला घोरवड़ा, निशि भोजन, बहुबीजा, बैंगन, संधान।
बड़, पीपल, उमर, कठ-उमर पाकर फल जो होय अजान।।
कंदमूल, माटी, विषं, आमिष, मधु, माखन अरू मदिरापान।
फल अति तुच्छ, तुषार चलित रस ये जिनमत बाईस बखान।।

संधान- आचार, घोरबड़ा- दही वड़ा, तुषार- ओष, चलित रस- जिनका स्वाद बिगड़ गया हो।

उपरोक्त वस्तुओं में भी सूक्ष्म जीव कीटों एवं अन्य कई प्रकार के जीवों की उत्पत्ति होती है। अतः जैन धर्म में इनका निषेध किया गया है इन तथ्यों से स्पष्ट है कि जैन धर्म की आहार संहिता न केवल वैज्ञानिक अपितु अनेक रोगों से स्वतः ही छुटकारा दिलाने वाली है।

संदर्भ ग्रन्थ

१. जनरल माइक्रोवायलाजी (भाग-२) पवार एवं डागिनावाला। हिमालय पब्लिशिंग हाउस-१९९१
२. जैन आहार विज्ञान और कला, डॉ. नेमीचन्द जैन हीरा भैया प्रकाशन इन्दौर-१९९३
३. फंडामेन्टलस ऑफ फूड माइक्रोवायलाजी- एम.एम. फील्डस। फूड ट्रे ड प्रेस-१९९३
४. माइक्रोबायलाजी आव फूड फरमेन्टेशन सी.एस. पीडरसन। ए.बी.आई. यू.एस.ए. १९७१
५. फूड वोर्न इनेफेक्शन एण्ड इनटोविसकेशेस एच. रीमैन एकेडेमिक प्रेस यू.एस.ए. १९६९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पौद्गलिक स्कन्धों का वैज्ञानिक विश्लेषण

–अजित कुमार जैन
एम.एस.एल. जैन महाविद्यालय
विदिशा (म.प्र.)

प्रस्तुत आलेख में निम्नांकित सूत्रों का वैज्ञानिक विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

१. भेद-संघातेभ्य उत्पद्यन्ते (अध्याय -५, सूत्र नं. २७)
२. भेद-संघाताभ्यां चाक्षुषः (अध्याय- ५, सूत्र नं. २८)
३. स्निग्ध रूक्षत्वाद् बन्धः (अध्याय- ५, सूत्र नं. ३३)
४. न जघन्यगुणानाम् (अध्याय- ५, सूत्र नं. ३४)
५. गुण- साम्ये सदृशानाम् (अध्याय- ५, सूत्र नं. ३५)
६. द्वयधिकादि गुणानां तु (अध्याय- ५, सूत्र नं. ३६)
७. वन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च (अध्याय- ५, सूत्र नं. ३७)

उपर्युक्त सूत्रों का विश्लेषण निम्नांकित बिन्दुओं पर आधारित है:

१. विज्ञान मान्य परमाणु जैन दर्शनकारों की दृष्टि से स्कन्ध माना जाएगा क्योंकि परमाणु के नाभिक में तीन प्रकार के मौलिक कण उपस्थित रहते हैं।

२. जैन दर्शन में अणु एवं परमाणु समानार्थक हैं, जबकि विज्ञान में अणु को परमाणु से भिन्न माना गया है। विज्ञान मान्य अणु की उत्पत्ति दो या दो से अधिक समान परमाणुओं अथवा असमान परमाणुओं के योग से मानी गई है।

३. आचार्य उमास्वामी ने स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्ध नामक सूत्र में जो स्निग्ध एवं रूक्ष परमाणुओं का उल्लेख किया है, वास्तव में उनका स्निग्ध परमाणुओं से तात्पर्य धात्विक परमाणुओं एवं रूक्ष परमाणुओं से तात्पर्य अधात्विक परमाणुओं से रहा होगा। (तत्वार्थ राजवार्तिक, पेज नं. ७००)

४. धातु तत्व जैसे सोना, चांदी, लोहा, जस्ता आदि स्निग्ध तत्व हैं। इन तत्वों की वैद्युत ऋणात्मकता (परमाणुओं का एक विशिष्ट गुण) अधातु तत्वों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमाणुओं की तुलना में कम होती है एवं यह तत्व क्षारकीय गुण वाले होते हैं।

५. अधातु तत्व जैसे सिलीकान, वोरोन, हीरा (कार्बन) क्लोरीन, ब्रोमीन, फ्लोरीन आदि रूक्ष तत्व हैं। इन तत्वों की वैद्युत ऋणात्मकता धातु तत्वों की तुलना में अधिक तथा स्वभाव से अम्लीय होते हैं।

६. इन बिन्दुओं को आधार मानकर स्कन्ध निर्माण की तीनों प्रक्रियाओं को रासायनिक समीकरणों के माध्यम से समझाने का प्रयास किया गया है।

पौद्गलिक स्कन्धों एवं उनके परमाणुओं का आधुनिक रसायन विज्ञान में जो विशद् विवेचन- विश्लेषण हमें प्राप्त होता है उसी प्रकार का सूक्ष्म एवं प्रमाणिक विवेचन हजारों वर्ष पूर्व अनेक जैन दर्शनकारों ने किया है। इन दर्शनकारों में आचार्य उमास्वामी का स्थान प्रमुख है। तत्वार्थ सूत्र नामक उनके ग्रंथ में पौद्गलिक स्कन्धों का जैसा सांगोपांग विवेचन हुआ है और उनके निष्कर्ष जिस तरह आधुनिक रसायन विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरे हैं उन्हें देखकर आश्चर्य होता है। आचार्य उमास्वामी ने पौद्गलिक स्कन्ध की विवेचना में पुद्गल, पुद्गल के गुण, पुद्गल के भेद, पुद्गल की पर्यायें, पुद्गल परमाणु, पौद्गलिक स्कंध (Molecule) और उनके निर्माण की प्रक्रिया आदि विषयों पर जो अवधारणायें प्रस्तुत की हैं उनको देखकर स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि जैन दर्शनकारों की भेदविज्ञान दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म एवं विशद थी।

प्रस्तुत आलेख का मूल प्रतिपाद्य विषय उमास्वामी द्वारा निरूपित पौद्गलिक स्कन्ध और उनके निर्माण की प्रक्रिया को आधुनिक रसायन विज्ञान के आलोक में समझना है किन्तु विषय की प्रस्तावना के रूप में जैन दर्शनकारों एवं आधुनिक रसायन विज्ञानियों की अणु, परमाणु संबंधी अवधारणाओं के अन्तर को समझना आवश्यक है, क्योंकि इन शब्दों का व्यवहार दोनों में भिन्न प्रकार से किया गया है। यह अन्तर समझ लेने पर ही भ्रम उत्पत्ति से बचा जा सकता है।

परमाणु- जैन दर्शन की दृष्टि में:-

जैन दर्शन में परमाणु से तात्पर्य पुद्गल के उस लघु से लघु अंश से है जिसे और विभाजित न किया जा सके अर्थात् जो एक प्रदेशी है। आचार्य अकलंक देव ने परमाणु की विशेषता वतलाते हुए कहा है कि सभी पुद्गल स्कन्ध परमाणुओं से निर्मित हैं और परमाणु पुद्गल के सूक्ष्मतम अंश हैं। परमाणु नित्य, अविनाशी और सूक्ष्म है। वह दृष्टि द्वारा लक्षित नहीं हो सकते। परमाणु में कोई एक रस,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक गंध, एक वर्ण और दो स्पर्श (स्निग्ध अथवा रूक्ष, शीत अथवा उष्ण) होते हैं। परमाणु के अस्तित्व का अनुमान उससे निर्मित पुद्‌गल रूप कार्य से लगाया जा सकता है। जैन दर्शनकारों ने अणु एवं परमाणु को समानार्थक माना है।

परमाणु- विज्ञान की दृष्टि में:-

डाल्टन नामक वैज्ञानिक का विचार था कि परमाणु द्रव्य का सूक्ष्मतम एवं अविभाज्य कण है। यह धारणा उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक सही मानी गई किन्तु बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में थामसन, रदरफोर्ड एवं चेडविक आदि वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि परमाणु द्रव्य का अंतिम कण नहीं है इसकी भी अपनी एक विशेष प्रकार की संरचना है एवं यह तीन प्रकार के मौलिक कणों इलेक्ट्रान, प्रोटान व न्यूट्रॉन से मिलकर बना है। रदरफोर्ड की अपनी भाषा में:-

Atom has a definite structure. It consists of a massive and positively charged central part which is called Nucleus of the Atom. The Nucleus is surrounded by negatively charged moving small particles called Electrons. The Atom is about ten thousand times larger than its Nucleus. The Nucleus of an Atom is composed of Proton, positively charged particles and neutral particles Neutron and about a dozen of smaller particles like Positron, Meson, Pions and Nutrino etc. The sum of the masses of the Protons and Neutrons is called Atomic Mass.

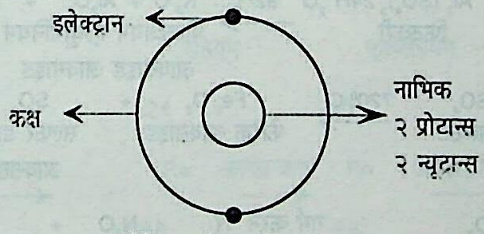

हीलियम की आणविक संरचना

परमाणु में उपस्थित इन सूक्ष्म कणों की संख्या वर्तमान में तीस तक हो गई है परन्तु यह सभी (इलेक्ट्रान, प्रोटान एवं न्यूट्रान को छोड़कर) अल्पकालिक है। इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषानुसार विज्ञान मान्य परमाणु बहुप्रदेशी सिद्ध होता है जो कि जैन दर्शन के अनुसार परमाणु न होकर स्कन्ध की श्रेणी में आता है।

अणु:- जैन दर्शन के अनुसार अणु और परमाणु दोनों पर्यायवाची हैं और अंतिम रूप से अविभाज्य हैं। परमाणु की उत्पत्ति भेद द्वारा अर्थात् विघटन द्वारा होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रसायन विज्ञान में अणु को परमाणु से भिन्न माना गया है और इसे परिभाषित करते हुए कहा गया है कि पदार्थ का वह सूक्ष्मतम अंश जो दो या दो से अधिक समान परमाणुओं अथवा असमान परमाणुओं के योग से निर्मित होता है तथा जो स्वतन्त्र अवस्था में रह सकता है और जिसमें पदार्थ (पुद्गल) के समस्त गुण विद्यमान हों, अणु कहलाता है। इस परिभाषानुसार विज्ञान मान्य अणु एवं जैन दर्शन मान्य स्कंध एक ही है पृथक नहीं, क्योंकि एक से अधिक अणु या परमाणुओं के समूह को स्कन्ध कहते हैं।

स्कन्धोत्पत्ति की प्रक्रियायें- विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में:-

स्कन्धोत्पत्ति की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए आचार्य उमास्वामी ने कहा है कि "भेद संधातेभ्य उत्पद्यन्ते" अर्थात भेद, संघात एवं भेद संघात इन तीन प्रक्रियाओं द्वारा स्कन्धोत्पत्ति होती है। यहां भेद का अर्थ विघटन से है तथा संघात का तात्पर्य है संयोजन से और भेदसंघात का अर्थ है भेद और संघात का साथ-साथ होना। कुछ स्कन्ध भेद अर्थात परस्पर विघटित होकर निर्मित होते हैं तो कुछ स्कन्ध संघात अर्थात् परस्पर संयोजन के फलस्वरूप बनते हैं तथा कुछ स्कन्ध ऐसे भी हैं जो विघटन और संयोजन दोनों प्रक्रियाओं के एक साथ होने पर निर्मित होते हैं।

रसायन विज्ञान के अनुशीलन से भी इन तीनों प्रक्रियाओं का पता चलता है। कुछ ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें भेद द्वारा स्कन्धोत्पत्ति होती है।

1. $K_2SO_4\ Al_2(SO_4)_3\ 24H_2O \xrightarrow{92^0 C} K_2O + Al_2O_3 + SO_3 + 24H_2O$
   फिटकरी → पोटाशियम आक्साइड, एल्यूमिनियम आक्साइड, सल्फर ट्राय आक्साइड, जल
2. $2\ Fe_2SO_4 \xrightarrow{720^0 C} Fe_2O_3 + SO_2 + SO_3$
   फेरस सल्फेट → फेरिक आक्साइड, सल्फर डाय आक्साइड, सल्फर ट्राय आक्साइड
3. $NH_4NO_3 \xrightarrow{\text{गर्म करने पर}} N_2O + 2H_2O$
   अमोनियम नाइट्रेट → नाइट्रस आक्साइड, जल
4. $2Pb(NO_3)_2 \xrightarrow{\text{गर्म करने पर}} 4NO_2 + 2PbO + O_2$
   लेड नाइट्रेड → नाइट्रोजन पर आक्साइड, लेड आक्साइड, आक्सीजन
5. $4LiNO_3 \xrightarrow{\text{गर्म करने पर}} 2Li_2O + 4NO_2 + O_2$
   लीथियम नाइट्रेट → लीथियम आक्साइड, नाइट्रोजन पर आक्साइड, आक्सीजन
6. $2KMNO_4 \xrightarrow{\text{गर्म करने पर}} K_2MnO_4 + MnO_2 + O_2$
   पोटेशियम परमेंगनेट → पोटेशियम मेंगनेट, मेंगनीज डाय आक्साइड, आक्सीजन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

7. $C_{14}H_{30}$ (टेट्रा डेकेन) $\xrightarrow{\text{उच्च ताप पर}}$ C_6H_{14} (हेक्जेन) + C_8H_{16} (आक्टेन)

8. $NaNO_3$ (सोडियम नाइट्रेट) $\xrightarrow{\text{गर्म करने पर}}$ $2NaNO_2$ (सोडियम नाइट्राइट) + O_2 (आक्सीजन)

9. $2ZnSO_4$ (जिंक सल्फेट) $\xrightarrow{767^0}$ $2ZnO$ (जिंक आक्साइड) + $2SO_2$ (सल्फर डाय आक्साइड) + O_2 (आक्सीजन)

10. $ZnCO_3$ (जिंक कार्बोनेट) $\xrightarrow{\text{गर्म करने पर}}$ ZnO (जिंक आक्साइड) + CO_2 (कार्बन डाय आक्साइड)

रेडियो सक्रिय तत्वों के विघटन में भेद प्रक्रिया द्वारा ही स्कंधोत्पत्तिः-

एक रेडियो सक्रिय तत्व द्वारा अल्फा, बीटा एवं गामा कणों का उत्सर्जन उसका विघटन कहलाता है। रेडियो सक्रिय तत्व जिसे हम जैनाचार्यों की भाषा में स्कन्ध कह सकते हैं, विघटित होकर एक नया तत्व देता है जो आगे चलकर स्वयं विघटित होकर एक और नया तत्व देता है। इस प्रकार विघटन एवं दुहिता तत्व (Daughter Element) की उत्पत्ति का अनवरत क्रम तब तक चलता रहता है जब तक अन्य उत्पाद के रूप में रेडियो सक्रियताहीन तत्व प्राप्त न हो जावे।

$^{232}_{90}Th$ (थोरियम) $\xrightarrow{\text{अल्फा कण}}$ $^{228}_{88}Ra$ (रेडियम) $\xrightarrow{\text{बीटा कण}}$ $^{228}_{89}Ac$ (एक्वीनियम) $\xrightarrow{\text{बीटा कण}}$ $^{228}_{90}Th$ (थोरियम)

$^{228}_{90}Th$ (थोरियम) $\xrightarrow{\text{अल्फा कण}}$ $^{224}_{88}Ra$ (रेडियम) $\xrightarrow{\text{अल्फा कण}}$ $^{220}_{86}Rn$ (रेडान) $\xrightarrow{\text{अल्फा कण}}$ $^{216}_{90}Po$ (पोलोनियम)

$^{216}_{84}Po$ (पोलियम) $\xrightarrow{\text{अल्फा कण}}$ $^{212}_{82}Pb$ (लेड) $\xrightarrow{\text{अल्फा कण}}$ $^{208}_{80}Hg$ (मरकरी) $\xrightarrow{\text{बीटा कण}}$ $^{208}_{81}Th$ (थेलियम) $\xrightarrow{\text{बीटा कण}}$ $^{208}_{82}Pb$ (लेड)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संघात द्वारा स्कन्धोत्पत्तिः-

रसायन विज्ञान में संघात द्वारा स्कन्धोत्पत्ति की प्रक्रिया का भी लक्षण दृष्टिगोचर होता है। स्कन्धोत्पत्ति की इस प्रक्रिया को सहसंयोजी बंध के रूप में समझा जा सकता है।

सह संयोजी बंध में अणु निर्माण में भाग ले रहे परमाणुओं के मध्य इलेक्ट्रान्स की साझेदारी से जो बंध बनता है उसे सहसंयोजी बंध एवं निर्मित यौगिक को सहसंयोजी यौगिक (स्कन्ध) कहा जाता है।

1.

= H_2 अणु
हायड्रोजन

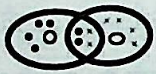
= O_2 अणु
आक्सीजन

= N_2 अणु
नाइट्रोजन

2. Cl_2 + H_2 —सूर्य का प्रकाश→ 2 H Cl
क्लोरीन + हायड्रोजन → हायड्रोजन क्लोराइड

3. N_2 + O_2 —विद्युत विसर्जन→ 2 N O
नाइट्रोजन + आक्सीजन → नाइट्रिक आक्साइड

4. Xe + F_2 —Ni ट्यूब, 400^0 C→ Xe F2
1 : 3
जिनान + फ्लोरीन → जिनान डाय फ्लोराइड

5. Xe + 2 F_2 —निकिल ट्यूब, 400^0 C→ Xe F4
1 : 10
जिनान + फ्लोरीन → जिनान टेट्रा फ्लोराइड

6. 2NO + N_2O_4 —230^0 K→ 2N2 O3
नाइट्रिक आक्साइड + डाय नाइट्रोजन टेट्रा आक्साइड → नाइट्रोजन सेस्क्वा आक्साइड

7. 3NaF + AlF3 → $Na_3 AlF_6$
सोडियम फ्लोराइड + एल्यूमिनियम फ्लोराइड → क्रायोलाइट

8. $FeSO_4$ + (NH4)2 SO_4 + $6H_2O$ → $FeSO_4 (NH_4)_2 SO_4 6H_2O$
फेरस सल्फेट + अमोनियम सल्फेट + जल → मोर्हस लवण

9. KCl + $MgCl_2$ + $6H_2O$ → KCl, Mg Cl_2 $6H_2O$
पोटेशियम क्लोराइड + मेग्नेशियम क्लोराइड + जल → कार्नेलाइट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

10. K_2SO_4 + $Al_2(SO_4)_3$ + $24H_2O \longrightarrow K_2SO_4\,Al_2(SO_4)_3\,24H_2O$
पोटेशियम सल्फेट + एल्यूमिनियम सल्फेट + जल → फिटकरी

भेद-संघात द्वारा स्कंधोत्पत्ति

भेद-संघात से होने वाली स्कन्धोत्पत्ति की इस प्रक्रिया की तुलना हम रसायन विज्ञान में मान्य वैद्युत संयोजी बंध से कर सकते हैं।

स्कन्ध निर्माण की इस प्रक्रिया में विज्ञान में मान्य परमाणुओं में से सर्वप्रथम एक परमाणु एक या एक से अधिक इलेंक्ट्रान्स का त्याग करता है। इलेक्ट्रान त्याग की इस प्रक्रिया को भेद कहेंगे, तदोपरान्त दूसरा परमाणु इन त्यागे हुए इलेक्ट्रान्स को ग्रहण करता है। इलेक्ट्रान्स के त्याग से प्रथम परमाणु धन आवेशित तथा इलेक्ट्रान्स के ग्रहण से दूसरा परमाणु ऋणावेशित हो जाता है। अन्त में विपरीत आवेशित आयन्स एक दूसरे से वैद्युतबल रेखाओं द्वारा जुड़ जाते हैं। जुड़ने की इस प्रक्रिया को संघात कहेंगे। इस प्रकार भेद संघात (वैद्युत संयोजी बंध द्वारा) प्रक्रिया द्वारा स्कन्ध (अणु) निर्माण हो जाता है।

1. सोडियम परमाणु Na —(भेद द्वारा, $-1e^-$)→ सोडियम आयन (Na^+)
क्लोरीन परमाणु —($+1e^-$)→ क्लोराइड आयन (Cl^-)
Na^+ + $Cl^- \longrightarrow$ संघात NaCl
(वैद्युत बल रेखायें) नमक का अणु

2. 4KCN + $Fe(CN)_2$ फैरस सायनाइड
↓ भेद
$4K^+$ पोटेशियम आयन + 4CN सायनाइड आयन + $Fe(CN)_2$ फैरस सायनाइड $\xrightarrow{\text{संघात}}$ $K_4(Fe(CN)_6)$ पोटेशियम फैरो सायनाइड

3. $CoCl_3$ कोबाल्टिक क्लोराइड + $6NH_3$ अमोनिया
↓ भेद
Co^{+++} कोबाल्टिक आयन + 3Cl क्लोराइड आयन + $6NH_3$ अमोनिया $\xrightarrow{\text{संघात}}$ $(Co(NH_3)_6)Cl_3$ हेक्जा अमीन कोबाल्टिक क्लोराइड

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

4. $CuSO_4$ + $4NH_3$

कापर सल्फेट अमोनिया

↓ भेद

संघात

Cu^{++} + SO_4^{--} + $4NH_3$ $\longrightarrow$ $(Cu(NH_3)_4)SO_4$

कापर आयन सल्फेट आयन अमोनिया टेट्रा अमीन क्यूप्रिक सल्फेट

5. $2KI$ + HgI_2

पोटेशियम आयोडाइड मरक्यूरी आयोडाइड

↓ भेद

संघात

$2K^{+}$ + $2I^{-}$ + HgI_2 $\longrightarrow$ $K_2(Hg(I)_4)$

पोटेशियम आयन आयोडाइड आयन मरक्यूरिक आयोडाइड पोटेशियम टेट्रा आयोडो मरक्यूरेट

6. Ca केल्सियम + O आक्सीज़न

भेद ↓ $-2e^{-}$ ↓ $+2e^{--}$

संघात

Ca^{++} + O^{--} $\longrightarrow$ CaO

केल्शियम आयन आक्साइड आयन कली चूना

7. Mg मेग्नीशियम + Cl_2 क्लोरीन अणु

भेद ↓ $-2e^{-}$ ↓ $+2e^{-}$

संघात

Mg^{++} + $2Cl^{-}$ $\longrightarrow$ $MgCl_2$

मैग्नीशियम आयन क्लोराइड आयन मेग्नीशियम क्लोराइड

जैनाचार्यों ने मात्र स्कन्धोत्पत्ति की विभिन्न प्रक्रियाओं को ही नहीं समझाया है, बल्कि उन बिन्दुओं पर भी समुचित प्रकाश डाला है जो स्कन्धोत्पत्ति के लिये आवश्यक है। इसी सन्दर्भ में आचार्य उमास्वामी बतलाते हैं कि 'स्निग्धरुक्षत्वादबन्धः' अर्थात् स्निग्ध- स्निग्ध, रुक्ष-रुक्ष एवं स्निग्ध- रुक्ष गुण वाले परमाणु परस्पर बंध करने में समर्थ होते हैं।

इस कथन के वैज्ञानिक विश्लेषण के पूर्व स्निग्ध एवं रुक्ष गुणों को वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में समझना आवश्यक है। तत्व मूलतः (धातु एवं अधातु) दो प्रकार के होते हैं। वह तत्व जो प्रकृति से वैद्युत धनीय, क्षारीय गुण वाले तथा कम वैद्युत ऋणात्मकता वाले होते हैं उन्हें धातु तत्व कहा जाता है जैसे सोना, चांदी, पारा, तांबा, जस्ता आदि। इन सभी में स्वाभाविक स्निग्धता (चिकनापन) पाई जाती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है तथा वह तत्व जो प्रकृति से वैद्युत ऋणीय, अम्लीय गुण वाले एवं धातु तत्वों की तुलना में अधिक वैद्युत ऋणात्मक वाले होते हैं अधातु तत्व कहलाते हैं। जैसे सिलीकान, बोरोन, हीरा (कार्बन), सल्फर (गन्धक), फ्लोरीन, ब्रोमीन आदि। इन सभी में स्वाभाविक रुक्षता (रुखापन) पाया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य उमास्वामी द्वारा स्निग्ध गुण धात्विक परमाणुओं का तथा रुक्ष गुण अघात्विक परमाणुओं का माना गया है।

वैज्ञानिक विश्लेषण:

वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा धातु-अधातु एवं धातु-अधातु परमाणु परस्पर बंध निर्माण करने में सक्षम होते हैं।

स्निग्ध गुणयुक्त धात्विक परमाणु + स्निग्ध गुणयुक्त धात्विक परमाणु परिणाम

1. तांबा (Cu) + जस्ता (जिंक) (Zn) + निकिल (Ni) → जर्मन सिल्वर
2. लोहा (Fe) + निकिल (Ni) + क्रोमियम (Cr) → स्टेनलैस इस्पात
3. जस्ता (Zn) + एल्यूमिनियम (Al) + कापर (Cu) → सफेद कांसा (गोटाचांदी)
4. तांबा (Cu) + जस्ता (Zn) → पीतल
5. तांबा (Cu) + वंग (Sn) → कांसा
6. तांबा (Cu) + एल्यूमिनियम (Al) → रोल्डगोल्ड
7. सीसा (Pb) + वंग (Sn) → टांका धातु
8. लोहा (Fe) + निकल (Ni) → इन्वार

रुक्ष गुण वाले अघात्विक परमाणु+रुक्ष गुण वाले अघात्विक परमाणु → परिणाम

अधातु + अधातु

1. नाइट्रोजन (N_2) + हायड्रोजन ($3H_2$) $\xrightarrow[\text{200 A.P. (Fe)}]{500^{\circ}C}$ अमोनिया ($2NH_3$)
2. नाइट्रोजन (N_2) + क्लोरीन ($3Cl_2$) → नायट्रोजन ट्राय क्लोराइड ($2NCl_3$)
3. हाइड्रोजन ($2H_2$) + आक्सीजन (O_2) $\xrightarrow[\text{विसर्ग}]{\text{वैद्युत}}$ जल ($2H_2O$)
4. कार्बन (CH_2) + हाइड्रोजन ($2H_2$) $\xrightarrow{1100^{\circ}C}$ मेथेन (CH_4)
5. हाइड्रोजन (H_2) + सल्फर (S) $\xrightarrow{200\text{-}400^{\circ}C}$ हायड्रोजन सल्फाइड (H_2S)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

6. सिलिकन (Si) + आक्सीजन (O_2) ज्वलन पर $\longrightarrow$ रेत (SiO_2)

7. कार्बन (C) + आक्सीजन (O_2) ज्वलन पर $\longrightarrow$ कार्बन डायआक्साइड (CO_2)

8. हाइड्रोजन (H_2) + क्लोरीन (Cl_2) सूर्य का प्रकाश $\longrightarrow$ हायड्रोजन क्लोराइड (2HCl)

स्निग्ध गुण युक्त धातु + रुक्ष गुण युक्त अधातु			परिणाम	
1. सोडियम (2Na)	+ क्लोरीन (Cl_2)	$\longrightarrow$	नमक	(2NaCl)
2. तांबा (Cu)	+ सल्फर (S)	गर्म करने पर $\longrightarrow$	क्यूप्रिक सल्फाइड	(CuS)
3. चांदी (2Ag)	+ क्लोरीन (Cl_2)	गर्म करने पर $\longrightarrow$	सिल्वर क्लोराइड	(2AgCl)
4. सोडियम (2Na)	+ सल्फर (S)	360°C $\longrightarrow$	सोडियम सल्फाइड	(Na_2S)
5. कैल्शियम (2Ca)	+ आक्सीजन (O_2)	ज्वलन पर $\longrightarrow$	कैल्शियम आक्साइड	(2CaO)
6. मरकरी (Hg)	+ आयोडीन (I_2)	रगड़ने पर $\longrightarrow$	मरक्यूरिक आयोडाइड	(HgI2)
7. सोडियम (3Na)	+ फास्फोरस (P)	360°C $\longrightarrow$	सोडियम फोस्फाइड	(NA_3P)
8. कैल्शियम (Ca)	+ क्लोरीन (Cl_2)	गर्म करने पर $\longrightarrow$	कैल्शियम क्लोराइड	($CaCl_2$)

अगले तीन सूत्रों के माध्यम से आचार्य उमास्वामी द्वारा उन बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया प्रतीत होता है जो भेद संघात प्रक्रिया द्वारा स्कन्धोत्पत्ति के लिये आवश्यक है। यह सूत्र एवं इनकी विवेचना निम्नानुसार है।

"गुणसाम्येसदृशनाम्"

अर्थात् गुण साम्य रहने पर सदृशों का बन्ध नहीं होता। इस बात को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जिन परमाणुओं में स्निग्ध एवं रुक्ष गुणों की संख्या समान होती है, उनका परस्पर बन्ध नहीं होता। आधुनिक विज्ञान भी इस कथन से पूर्ण रूप से सहमत है कि ऐसे परमाणु जिनकी वैद्युत ऋणात्मकता समान होती है, परस्पर वैद्युत संयोजी (भेद संघात प्रक्रिया द्वारा) बन्ध द्वारा स्कन्ध निर्माण नहीं करते।

परमाणु	वैद्युतऋणात्मकता	वैद्युत संयोजी बंध द्वारा स्कन्धोत्पत्ति
1. नाइट्रोजन (N)	3.0	नहीं होती
क्लोरीन (Cl)	3.0	
2. फास्फोरस (P)	2.1	नहीं होती
हाइड्रोजन (H)	2.1	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3.	आरसेनिक (As)	2.2	नहीं होती
	आयोडीन (I)	2.2	
4.	वोरोन (B)	2.0	नहीं होती
	हाइड्रोजन (H)	2.1	
5.	आक्सीजन (O)	3.5	नहीं होती
	आक्सीजन (O)	3.5	

'न जघन्यगुणानाम्'

इस सूत्र के माध्यम से आचार्य उमास्वामी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जघन्य गुण वालों का वन्ध नहीं होता। रसायन विज्ञान में भी ऐसे परमाणु परस्पर वैद्युत संयोजी बंध द्वारा स्कन्ध निर्माण नहीं करते जिनकी वैद्युत ऋणात्मकता में मात्र एक का अन्तर होता है।

	परमाणु –	वैद्युतऋणात्मकता–	वै. ऋणा. का अन्तर –	वैद्युत संयोजी बन्ध द्वारा स्कन्धोत्पत्ति
1.	कार्वन (C)	2.5	01	नहीं होता
	आक्सीजन (O)	3.5		
2.	क्लोरीन (Cl)	4.0	01	नहीं होता
	फ्लोरीन (F)	3.0		
3.	फास्फोरस (P)	2.1	0.9	नहीं होता
	क्लोरीन (Cl)	3.0		
4.	नाइट्रोजन (N)	3.0	01	नहीं होता
	फ्लोरीन (F)	4.0		
5.	वोरोन (B)	2.0	01	नहीं होता
	क्लोरीन (Cl)	3.0		
6.	कापर (Cu)	1.8	1.2	नहीं होता
	क्लोरीन (Cl)	3.0		

'द्वयधिकादिगुणानांतु'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य उमास्वामी इस सूत्र के माध्यम से आगे और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि दो अधिक गुण वालों का परस्पर बन्ध होता है अर्थात जिनमें स्निग्ध अथवा रुक्ष गुणों की संख्या में दो का अन्तर होता है वे परस्पर बंध निर्माण करने में सक्षम होते हैं। रसयान विज्ञान में भी वैद्युत संयोजी बंध द्वारा स्कंधोत्पत्ति के लिये आवश्यक है कि बंध निर्माण में भाग ले रहे परमाणुओं की वैद्युत ऋणात्मकताओं में दो का अन्तर हो या दो से अधिक का अन्तर हो।

परमाणु – वैद्युतऋणात्मकता – वै. ऋणा. का अन्तर – वैद्युत संयोजी बंध द्वारा स्कन्धोत्पत्ति

1.	सोडियम (Na)	1.0	2.0	सोडियम क्लोराइड (NaCl)
	क्लोरीन (Cl)	3.0		
2.	पोटेशियम (K)	0.8	2.2	पोटेशियम क्लोराइड (KCl)
	क्लोरीन (Cl)	3.0		
3.	बोरोन (B)	2.0	2.0	बोरोन ट्राय फ्लोराइड (BF_3)
	फ्लोरीन (F)	4.0		
4.	बिस्मथ (Bi)	1.7	2.3	बिस्मथ फ्लोराइड (BiF_3)
	फ्लोरीन (F)	4.0		
5.	एल्यूमीनियम (Al)	1.5	2.5	एल्यूमीनियम फ्लोराइड (AlF_3)
6.	कैल्शियम (Ca)	1.0	2.0	कैल्शियम क्लोराइड ($CaCl_3$)
	फ्लोरीन (F)	3.0		
7.	सीजियम (Cs)	0.7	2.0	सीजियम ब्रोमाइड (CsBr)
	ब्रोमीन (Br)	2.7		
8.	लीथियम (Li)	1.0	2.0	लीथियम नाइट्रेट (LiN)
	नाइट्रोजन (N)	3.0		
9.	बेरियम (Ba)	1.0	2.0	बेरियम क्लोराइड ($BaCl_2$)
	क्लोरीन (Cl)	3.0		
10.	रेडियम (Ra)	1.0	2.0	रेडियम क्लोराइड ($RaCl_2$)
	क्लोरीन (Cl)	3.0		
11.	स्ट्रोन्शियम (Sr)	1.0	2.0	स्ट्रोन्शियम क्लोराइड ($SrCl_2$)
	क्लोरीन (Cl)	3.0		

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्कन्ध निर्माण की विभिन्न प्रक्रियाओं के उपरान्त आचार्य उमास्वामी स्कन्ध की प्रकृति के बारे में बतलाते हुए कहते हैं "वन्धेऽधिकौपारिणामिकौच" अर्थात् बन्ध होने पर अधिक गुण वाला न्यून गुण वाले को अपने रूप परिणमन करा लेता है। रसायन विज्ञान मान्य स्कन्धों (मोलीक्यूल्स) में भी प्रायः यही देखने में आता है। अर्थात् जब स्निग्ध (धातु) गुण युक्त परमाणु एवं रूक्ष (अधातु) गुणयुक्त परमाणु परस्पर बन्ध कर स्कन्ध निर्माण करते हैं तब निर्मित अणु (स्कन्ध) उसी गुण होता है जिसका द्रव्यमान अधिक होता है।

तात्पर्य यह है कि स्कन्ध (अणु) निर्माण में भाग ले रहे परमाणुओं में से यदि स्निग्ध गुणयुक्त (धातु) परमाणुओं का द्रव्यमान अधिक है तब निर्मित स्कन्ध क्षारीय प्रकृति वाला होगा इसके विपरीत रूक्ष गुण युक्त (अधातु) परमाणुओं का द्रव्यमान अधिक होने पर निर्मित स्कन्ध (अणु) अम्लीय प्रकृति का होगा क्योंकि क्षारीय प्रकृति का होना धातुओं का तथा अम्लीय प्रकृति का होना अधातु का विशिष्ट गुण होता है।

	परमाणु	प्रकृति	द्रव्यमान	निर्मित स्कन्ध	स्कन्ध की प्रकृति
1.	मेंगनीज (Mn)	स्निग्ध	54×1	मेंगनस आक्साइड	क्षारीय
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×1	(MnO)	क्षारीय
2.	मेंगनीज (Mn)	स्निग्ध	52×2	मेंगनीज होप्टोक्साइड	
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×7	(Mn2O7)	अम्लीय
3.	क्रोमियम (Cr)	स्निग्ध	52×1	क्रोमए आक्साइड	
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×1	(CrO)	क्षारीय
4.	व्हेनेडियम (V)	स्निग्ध	50×1	हाइपो व्हेनडस आक्साइड	
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×1	(VO2)	क्षारीय
5.	व्हेनेडियम (V)	स्निग्ध	50×1	हाइपोव्हेनेडिक आक्साइड	
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×2	(VO2)	क्षारीय
6.	बोरोन (B)	रूक्ष	10×2	बोरोन ट्राय आक्साइड	
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×3	(CB2O3)	अम्लीय
7.	एल्यूमीनियम (Al)	स्निग्ध	26×2	एल्यूमीनियम आक्साइड	
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×3	(CAl2O3)	उभयगुणी
8.	सल्फर (S)	रूक्ष	32×1	सल्फर डाय आक्साइड	
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×2	(CSO2)	अम्लीय
9.	सिलिकान (Si)	रूक्ष	28×1	सिलीका	
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×2	(CSiO2)	अम्लीय
10.	सोडियम (Na)	स्निग्ध	23×1	सोडियम हाइड्रोक्साइड	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×1	(CrO)	क्षारीय
हायड्रोजन (H)	रूक्ष	01×1		
12. कापर (Cu)	स्निग्ध	63×1	कापर सल्फैट	
सल्फर (S)	रूक्ष	32×1	(CuSO4)	अर्म्लीय
आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×4	(CrO)	क्षारीय
13. आयरन (Fe)	स्निग्ध	56×1	फेरिक क्लोराइड	
क्लोरीन (Cl)	रूक्ष	35×3	(FeCl3)	अर्म्लीय
14. कार्वन (Cu)	रूक्ष	12×1	कार्वन डाय आक्साइड	
आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×2	(CCO2)	अर्म्लीय
15. बिस्मथ (Bi)	स्निग्ध	208×2	बिस्मथ ट्राय आक्साइड	
आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×3	(CBi2O3)	क्षारीय
16. नाइट्रोजन (N)	रूक्ष	14×3	हायड्रोजोइक	
हाइड्रोजन (H)	रूक्ष	01×1	(N3H)	अर्म्लीय
17. हायड्रोजन (H)	रूक्ष	01×1	नाइट्रिक अम्ल	
नाइट्रोजन (N)	रूक्ष	14×1	(HNO3)	अर्म्लीय
आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×3		
18. आयरन (Fe)	स्निग्ध	56×1	फेरस सल्फेट	
सल्फर (S)	रूक्ष	32×1	(FeSO4)	अर्म्लीय
आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×4		

"भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः"[12]

अर्थात भेदसंघात प्रक्रिया द्वारा चाक्षुष स्कन्ध बनता है अथवा इसी प्रक्रिया द्वारा अचाक्षुष स्कन्ध चाक्षुष बनता है।

वैज्ञानिक विश्लेषण:- भेद संघात अर्थात वैद्युतसंयोजी बन्ध द्वारा निर्मित स्कन्ध (अणु) ठोस होते हैं अतः चाक्षुष होते हैं क्योंकि इस प्रक्रिया द्वारा निर्मित अणु ध्रुवीय होते हैं जिस कारण अनन्त अणु एक दूसरे से विपरीत आवेशित आयनों की ओर से वैद्युत बल रेखाओं द्वारा जुड़ते चले जाते हैं तथा चाक्षुष का निर्माण करते हैं।

$^{+}NaCl^{-}$ $^{+}Na\ Cl^{-}$ $^{+}NaCl$ $^{+}NaCl^{-}$

वैद्युत बल रेखायें

उदाहरण:- नमक, चूना, नौसादर, फिटकरी, नीला थोथा, हरा कसीस आदि बंध की भेदसंघात प्रक्रिया द्वारा अचाक्षुष स्कन्ध बन जाते हैं। इस आधार पर वैद्युत संयोजी यौगिकों (स्कन्धों) की विलियन में होने वाली आयनिक क्रियाओं को भी समझा जा सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्कन्धों का अचाक्षुष-जलीय विलियन भेद संघात प्रक्रिया द्वारा बने चाक्षुष स्कन्ध

1. NaCl + $AgNO_3$
नमक + सिल्वर नाइट्रेट
↓ भेद
$Na^+ + Cl^- + Ag^+ + NO_3^- \xrightarrow{\text{संघात}} AgCl + NaNO_3$
सिल्वर क्लोराइड (सफेद) + सोडियम नाइट्रेट

2. PbCl2 + K2CrO4
लेड क्लोराइड + पोटेशियम क्रोमेट
↓ भेद
$Pb^{++} + 2Cl^- + 2K^+ + CrO_4^{--} \xrightarrow{\text{संघात}} PbCrO_4 + 2\,KCl$
लेड क्रोमेट (सुनहरा पीला ठोस) + पोटेशियम क्लोराइड

सन्दर्भ स्थल

1. नाणोः, तत्वार्थ सूत्र, अध्याय- 5, सूत्र-11
2. तत्वार्थराज वार्तिक, आचार्य अकलंक देव, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, अध्याय-5

   कारण मेव वदन्त्यःसूक्ष्मो नित्यो भवेत्परमाणु
   एक रसगन्ध वर्णा द्विस्पर्शः कार्य लिंगश्च।
3. भेदादणुः, तत्वार्थ सूत्र, अध्याय- 5, सूत्र- 27 (5/27)
4. तत्वार्थ सूत्र, 5/28
5. नीचे के समीकरणों में प्रयुक्त अल्फां, बीटा कणों से आशय निम्नवत् हैः-

   अल्फा कण- हीलियम परमाणु का नाभिक $^{4}_{2}He$ द्रव्यमान 4 घनावेशित

   बीटा कण- तीव्रगामी इलेक्ट्रान (e) द्रव्यमान नगण्य अऋणावेशित

   गामा किरणें- उच्च ऊर्जा वाले फोटोन्स (द्रव्यमान नहीं) उदासीन
6. O एवं x ये दोनों चिन्ह अणु के इलेक्ट्रानों को व्यक्त करते हैं।
7. तत्वार्थ सूत्र, 5/33
8. वही, 5/35
9. वही, 5/34
10. वही, 5/36
11. वही, 5/37
12. वी, 5/28

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्रीधर एवं उनका गणितीय अवदान

–डॉ. अनुपम जैन
स. अध्यापक गणित
होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर

गणित के विकास में जिन मनीषियों का योगदान रहा है उनमें अनेक भारतीय हैं। वस्तुतः प्राचीन काल में गणित के अनेक क्षेत्रों में भारतीयों का योगदान अद्वितीय है। इन विद्वानों द्वारा विकसित गणित को ही भारतीय गणित की संज्ञा प्रदान की जाती है। इस सदन के सम्मुख मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता है कि भारतीय गणित का भी एक बड़ा भाग जैनाचार्यों द्वारा विकसित है। आत्म कल्याण के प्रशस्त पथ पर निरन्तर अग्रसर महान जैनाचार्यों ने लोक कल्याण की भावना से एवं चंचल चित्त को स्थिर करने की भावना से स्वयं को गणितीय ग्रन्थों के सृजन में स्थिर किया। क्रमादित्युक्त श्रीधराचार्येरिति भद्र भूयात् उल्लेख के कारण यह स्पष्ट है कि श्रीधराचार्य, महावीराचार्य के पूर्ववर्ती हैं। आचार्य महावीर राष्ट्रकूटवंशीय नृपतुंग अमोघवर्ष-प्रथम (८१४-८७७ ई.) के समकालीन थे फलतः आचार्य श्रीधर, आचार्य महावीर (८५० ई.) के पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। इस प्रकार बालकृष्णदीक्षित (१८३२) बी.बी. दत्त (१८३२) नेमिचन्द्र शास्त्री (१८४७) सबल सिंह (१८४०) एवं आर.सी. गुप्त (१८८७) की मान्यता के अनुरूप आचार्य श्रीधर ७५० ई. के लगभग अथवा ७८८ ई. में जीवित थे जब उन्होंने ज्योतिर्ज्ञान विधि की रचना की।

दुर्भाग्यवश हमें आचार्य श्रीधर की गुरुपरपम्रा, जन्मस्थान, माता-पिता के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है। उनकी धार्मिक मान्यता के सन्दर्भ में पर्याप्त विवाद है किसी भी धार्मिक परम्परा से सम्बन्ध होने से विषय के विकास में प्रदत्त उनके योगदान का अवमूल्यन नहीं होता किन्तु उनके कृतित्व के निर्धारण तथा उनके द्वारा संकलित सामग्री के मूल स्रोतों के टटोलने में सहायक होने के कारण इस पर विचार आवश्यक है।

कतिपयः विद्वान् उन्हें जैन एवं अन्य उन्हें शैव ब्राह्मण स्वीकार करते हैं। पूर्ववर्ती विद्वानों ने इस विषय पर भी काफी उहापोह किया है। यहां उनके धार्मिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्वास को जानने हेतु कतिपय तथ्य संकलित है।

त्रिंशतिका का सम्पादन डॉ. सुधाकर द्विवेदी ने १८९९ ई. में किया था। उनकी सम्पादित प्रति में निम्न मंगलाचरण दिया हुआ है-

नत्वा शिवं स्वविरचित पाट्या गणितस्य सारमुद्धृत्य।
लोकव्यवहाराय प्रवक्ष्यति श्रीधराचार्यः।।

इसके विपरीत भारतीय ज्ञानपीठ, काशी द्वारा प्रकाशित कन्नड प्रांतीय ताड़पत्रीय ग्रंथ सूची के अन्तर्गत जैनमठ, मूडबद्री के ग्रंथ भण्डार में ७८१ नवम्बर पर त्रिशंतिका की एक प्रति का उल्लेख है। श्रीधर की इसी प्रति का उल्लेख नेमिचन्द्र जैन, शास्त्री ने अपने लेख में भी किया था। कन्नड लिपि में लिखी संस्कृत भाषा की इस कृति में ४५ ताड़पत्र हैं एवं प्रत्येक पत्र पर ६ पंक्तियां हैं, जिनमें से प्रत्येक में ४५ अक्षर हैं इस प्रकार प्रत्येक पेज पर २७० अक्षर हैं। बल्लभ कृत तेलगू टीकायुक्त इस पूर्ण, शुद्ध किन्तु जीप्र प्रति का मंगलाचरण निम्न प्रकार हैः-

नत्वा जिनं स्वविरचित पाट्या गणितस्य सारमुद्धृत्य।
लोक व्यवहाराय प्रवक्ष्यति श्रीधराचार्य।।

शास्त्री के अनुसार जिनं पाठ, मूल पाठ है, तथा परवर्ती प्रतिलिपिकारों अथवा सम्पादक महोदय की त्रुटि से पाठ बदल गया है। मुझे मूड़बद्री से जो प्रति प्राप्त हुई वह प्रति ताड़पत्र पर है वह इंगित क्रमांक पर नहीं है इस पर ६ पंक्तियों का मानक भी नहीं लगता है। वह कन्नड़ी लिपि में हैं। अतः में निश्चित तौर पर अभी नहीं कह सकता कि उसमें क्या है? किन्तु प्रारम्भ में स्याही से श्रीधर कर गणितसार लिखा है। जैन गणित एवं ज्योतिष का दक्षिण में व्यापक प्रचार एवं प्रसार था किन्तु उत्तर में कम। फलतः श्रीधर के बहुत कम ग्रन्थों का उत्तर में प्रचार हो पाया जो एक-दो ग्रंथ उत्तर भारत में आये उनमें सम्प्रदाय विशेष के चिन्हभूत स्थलों को परिवर्तित कर दिया गया। संभव है, इनमें प्रतिलिपिकार की संकीर्ण मनोवृतियां कारण रही हों।

शुक्ला का तर्क है कि सामान्यतः उपलब्ध प्रतियों में शिवम् पाठ मिलता है। शास्त्री द्वारा उल्लिखित पांडुलिपि अपवाद है जो शायद किसी जैन व्यक्ति द्वारा प्रतिलिपि कर तैयार की गई है, एवं उसमें काफी परिवर्तन कर दिये हैं, जैन तीर्थंकर से सम्बन्धित एक उदाहरण भी उसी व्यक्ति ने जोड़ दिया है। जो किसी अन्य प्रति में नहीं मिलता। शुक्ला के ही शब्दों में:-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

The manuscript refered by N.C. Jain bears the impress of some Jain scholars, who has made numerous alterations in the original text and has added a large number of rules and examples including one example relating to Jain Gods, which are not found to occur in any other manuscript of Trisatika known to us. The reading Jaina is thus evidently due to hims.[1]

निष्पक्ष दृष्टि से विचार करने पर दोनों संभावनायें बनती हैं, परिवर्तन अवश्य किये गये हैं, किन्तु किसने किये हैं यह निर्णय करने हेतु हमें निम्नलिखित तथ्यों को भी दृष्टिगत रखना चाहिए क्योंकि यह सब समान घटनाओं मे सम्बन्ध हैं।

१. भुवन दीपक[२] (ग्रहभाव प्रकाश) श्वेताम्बर पद्मप्रभ सूरि (१३वीं श. ई.) की ज्योतिष विपयक महत्वपूर्ण कृति है। नागौर की तपागच्छीय पट्टावली (जैन सन्तों की एक परम्परा) से पता चलता है कि ये आचार्य वादिदेव सूरि के शिष्य ने १७० श्लोकों के इस महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना १२३७ ई. की थी। जिस पर सिंह तिलक सूरि (१२७६ ई.) ने भुवन दीपक वृत्ति की रचना की थी। इस ग्रंथ का मंगलाचरण निम्न प्रकार है:-

सारस्वतं नमस्कृत्य महः सर्वतमोपहन्।
ग्रहभाव प्रकाशेन ज्ञानमुन्मील्यते मया।।

मुद्रित प्रति में सारस्वतं का अर्थ सरस्वती से सम्बन्धित करने के साथ ही पार्वतीजी का पुत्र गणेश आदि भी करना टीकाकार (हिन्दी) के बुद्धि कौशल का परिचायक है। एक प्रतिष्ठित जैनाचार्य का यह आशय रहा होगा ऐसा कदापि सम्भव नहीं है। जैन धर्म में सरस्वती की उपासना के सैंकड़ों उल्लेख हैं किन्तु गणेश की उपासना का एक भी उल्लेख एक रूप में नहीं है। अतः सारस्वत के हिन्दी अर्थ में पार्वती पुत्र गणेश को समाविष्ट कर देना पूर्वाग्रह अथवा पृष्ठभूमि की अज्ञानता को व्यक्त करता है।

२. मानसागरी, ज्योतिष का एक अत्यनत महत्वपूर्ण एवं बहुप्रचलित ग्रंथ है। प्राचीनकाल में यह ज्योतिषियों एवं सर्वसाधारण में बिना किसी भेदभाव के प्रचलित था। बाद में किसी संकीर्ण मनोवृत्ति के व्यक्ति ने इसका मंगलाचरण बदल कर इसको जैनेतर ग्रंथ बनाने का प्रयास किया। ग्रंथ की मौलिकता को नष्ट करने का प्रयास आकादमिक दृष्टि से सर्वथा वर्जित है। इस ग्रंथ के जैन ग्रंथ होने की बात इसके उदारचेता सम्पादक महोदय ने भी स्वीकार की है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"एवं मानसागरी- नाम्ना सार्थक ग्रन्थनाम कल्पनया मानसागरी नाम्ना केनापि व्यरचीति वक्तुं शक्यतेयः, कोऽपि कर्ता भवतु जैनमतावलम्बिनाऽशयं भवतिव्यम् बहुत्र श्री आदिनाथ प्रमुख जिनेशाः संच जिन प्रासाद दीर्घायुर्भवतु इत्यादि जिनस्तुति लेख सत्यवात्।।"

इससे स्पष्ट है मानसागरी जैन कृति है।

३. स्थानकवासी जैन समाज के वरिष्ठ संत एवं उत्तर प्रान्तीय प्रवर्तक स्व. श्री शांति स्वरूप जी महाराज जी ने हमें बताया था कि मेघमाला[४] नामक प्राचीन ज्योतिष विषयक ग्रंथ की मुद्रित प्रति में भी इसी प्रकार मंगलाचरण बदल दिया गया है किन्तु परिवर्तन करने वालों की त्रुटि से अथवा असावधानी से प्रशस्ति परिवर्तित होने से रह गयी। फलतः ग्रन्थ के अन्तरंग भाग से स्पष्ट हो जाता है कि यह जैनाचार्य प्रणीत ग्रन्थ है। आचार्य श्री ने इसकी प्राचीन प्रति भी देखी थी जिसमें शुद्ध मंगलाचरण दिया था।

इसके अतिरिक्त भी बहुत से ग्रंथों में मंगलाचरण बदलने की बात विद्वानों ने हमें बतायी हैं। इसमें केरल प्रश्नशास्त्र, जिनेन्द्रमाला एवं अमरकोष के नाम उल्लेखनीय हैं। किन्तु पुष्ट प्रमाणों के अभाव में हम उन्हें उद्घृत नहीं कर रहे हैं। वस्तुतः गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद एवं व्याकरण के ग्रंथों में यह कार्य अत्यन्त सुगम हैं क्योंकि हर सम्प्रदाय के ग्रंथों में इनके विवरणों में पर्याप्त साम्य रहता है।

इस प्रकरण में यह उद्घृत कर देना अनुपयुक्त न होगा कि श्रीधर को जैनेतर सिद्ध करने हेतु एक सबल प्रमाण पाटीगणित का मंगलाचरण है। डॉ. शुक्ल ने कश्मीर के किसी सनातन मन्दिर से इसकी एक अपूर्ण प्रति प्राप्त कर उसको सम्पादिक किया है। हम उस प्रति में से शुक्ल द्वारा प्रस्तुत दोनों प्रमाणों को उद्धृत कर रहे हैं।[५] उनके सम्मुख भी सम्पादन हेतु मात्र एक पांडुलिपि उपलब्ध होने की विवशता थी।

मंगलाचरण

सृष्टि स्थितिलय हेतु जगतायजगमीश्वरं प्रणामाम्यहम्।
लोक व्यवहाराय गणितं संक्षेपतो वक्ष्ये।।
शिव की उपासना से सम्बन्धित उदाहरण-
शिवस्य पंच वक्त्रस्य पूजायां मुख पंचके।
रूप त्रिशत्या पंचैव ब्राह्मणः स्तोत्र पाठिनः नः।।८९।।
निर्मान्त्रता केनचित् ते चैवैकं मुख पूजने।
समाप्ते क्रमशो यातास्तेषां का दक्षिणा वद्।।९०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीधर के विषय में कतिपय अन्य तथ्यों में भी हम निर्णय करने में सहायक होने के कारण उद्धृत कर रहे हैं।

१. श्रीधर कृत ज्योतिर्ज्ञान विधि के प्रतिष्ठा मुहूर्त विषयक श्लोकों को बसुनन्दि (१३३८ ई.) ने अपने प्रतिष्ठा पाठ संग्रह में यथावत् उद्धृत कर दिया है। जैनाचार्यों की प्रायः जैन ग्रंथों से ही उद्धरण देने की परम्परा है। प्रतिष्ठा पाठ सदृश महत्वपूर्ण ग्रंथ में इस परम्परा के उल्लंघन की सम्भावना न्यूनतम है। अतः परोक्ष रूप से ज्योतिर्ज्ञानविधि जैन सिद्ध होता है।

२. कन्नड भाषा में जैनों ने विपुल परिमाण में साहित्य सृजन किया है एवं ज्योतिर्ज्ञान विधि भी कन्नड़ में है। ८वीं शताब्दी या उससे पूर्व का कोई भी जैनेतर कन्नड़ ग्रंथ अद्यावधि हमें प्राप्त नहीं हुआ है।

३. ज्योतिर्ज्ञानविधि का अंकस्थान क्रम (संख्या क्रम) आर्यभट्ट १ के संख्या क्रम में भिन्न है एवं यह दक्षिण की जैन परम्परा के क्रम के समतुल्य है।

४. महान जैनाचार्य (श्वे.) अभयदेव सूरि ने सर्वप्रथम श्रीधर को बिना नामोल्लेख के उद्धृत किया है।

अ. सदृशाद्विराशिघात : (पाटीगणित- ४, त्रिशतिका-११)
ब. समत्रिराशिहतिः (पाटीगणित- २०, त्रिशतिका-१२)

श्रीधर के कार्य का उल्लेख अभयदेव सूरि, सिंहतिलक सूरि, अमरसिंह यति, बल्लभ आदि जैन विद्वानों ने किया है। बल्लभ ने तो तेलुगू में टीका भी लिखी है।

५. गणितसार नाम जैनाचार्यों द्वारा आगमों में निहित गणित का सार प्रस्तुत करने की दृष्टि से दिया गया है। प्राचीन भण्डारों में गणितसार नाम की अनेक प्रतियां विद्यमान हैं। उनके अध्ययन से बहुत से तथ्य प्रकट हो जाते हैं। सार नाम रखने की परम्परा भी जैनों की है। उदाहरणार्थ समयसार, प्रवचनसार, सार समुच्चय, गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार, क्षपणासार आदि।

६. श्रीधर ने π का जैन परम्परानुमोदित मान $\sqrt{10}$ स्वीकार किया है यद्यपि आर्यभट्ट आदि ३०० वर्ष पूर्व के विद्वानों को श्रेष्ठतर मान ज्ञात थे। जैनेतर विद्वानों ने तो जैन मान $\sqrt{10}$ का प्रयोग सम्मानपूर्वक किया है किन्तु जैन विद्वानों ने इस मान को ही प्रमुखता नहीं दी है।

७. जैन मठ मूडबद्री की ताड़पत्रीय प्रतियां अनेक अवसरों पर अत्यन्त विश्वसनीय सिद्ध हुई हैं। पाठ-भेद लेते समय अनुवादिकों ने ताड़पत्रीय प्रतियों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के पाठों को अधिक तर्कसंगत, शुद्ध एवं सार्थक पाया है। तिलोयपण्णति के नवीन संस्करण में आ. विशुद्धमति ने भी मूडबद्री प्रति से अनेक विसंगतियों को दूर किया। ताड़पत्रीय प्रतियां उत्तर भारत की प्रतियों की अपेक्षा अधिक प्राचीन भी हैं।

८. रायल एशियाटिक सोसायटी ने भण्डार में उपलब्ध गणितसार संग्रह (८५० ई.) की पाण्डुलिपि संख्या - २३० में निम्न पाठ उपलब्ध है:-

क्रमादित्युक्तं श्रीधराचार्येरिति भद्रं भूयात।

उपरोक्त विवेचन से प्रतीत होता है कि पाटी गणित एवं पाटी गणितसार के कर्ता श्रीधर दक्षिण के दिगम्बर जैनाचार्यों की परम्परा में दीक्षित थे। इसी परम्परा के धवलाकार, आ. वीरसेन एवं गणितसार संग्रह के कर्ता, महावीराचार्य हैं। इस परम्परा के ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन द्वारा लब्धिसार पर भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की परियोजना के अन्तर्गत किया जा चुका है।

श्रीधर के कृतित्व पर और अधिक प्रकाश एवं विरोधाभाषों का निराकरण कृतियों के भाषा वैज्ञानिक अध्ययन एवं दक्षिण में प्राचीन की खोज में संभव हो सकेगा। वर्तमान में कोई निर्णय अन्तिम रूप से देना जल्दबाजी ही होगी फिर भी हमं प्रमुख कृतियों को सूचीबद्ध कर रहे हैं।

१. त्रिंशातिका (त्रिंशति या गणितसार) यह श्रीधर की सर्वाधिक चर्चित कृति है। सुधाकर द्विवेदी द्वारा १८९६ में इसे सम्पादित कर प्रकाशित किया गया था। इसके मंगलाचरण पर विवाद है। त्रिशतिरा या त्रिंशाति नाम पांडुलिपियों के अन्त एवं गणितसार नाम पुष्पिकाओं के अन्त एवं मंगलाचरण में प्रयुक्त हैं।

२. पाटीगणित- प्रो. कृपाशंकर शुक्ल द्वारा १९५९ में इसे सम्पादित कर प्रकाशित किया गया है।

३. नवरात्रि- श्रीपति कृत सिद्धान्त शेखर (१०५० ई.) ग्रन्थ पर मक्खिभट्ट द्वारा लिखी टीका (१३७७ ई.) में इस कृति (नवरात्रि) से २ श्लोक उद्धृत किये हैं इसके अतिरिक्त अभी कुछ उपलब्ध नहीं है।

४. वृहत्पाटी राघवभट्ट (१४९३ ई.) ने अपने उल्लेख में श्रीधर की इस कृति का उल्लेख किया है।

शुल्का (१९४९) ने नवशती एवं वृहतपाटी को पाटीगणित के ही अपर नाम माने हैं किन्तु हायाशी (१९५९) ने सप्रमाण चर्चा कर इसे भिन्न-भिन्न कृतियां माना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. बीजगणित : भास्कर द्वितीय ने अपने बीजगणित में श्रीधर कृत द्विघात समीकरणें को हल करने का सूत्र दिया है। इसका उद्धरण प्राप्त होने से कृति का ११५० ई. में उपस्थिति निर्विवाद हैं किन्तु वर्तमान में अनुपलब्ध है।

६. गणित पंचविंशी- Welcome Institute for the History of Medicine London में इसकी पांडुलिपि उपलब्ध है इसमें २५ श्लोक हैं। इसका विस्तृत परिचय हायशी (१६६५) ने दिया है।

७. ज्योतिर्ज्ञान विधि- इस अप्रकाशित कृति की पांडुलिपि जैन सिद्धान्त भवन आरा में उपलब्ध है हायाशी (१६६५) ने श्रीधर की कृतियों में इसे छोड़ दिया है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि श्रीधर की समस्त कृतियों की पांडुलिपियों को एकत्र कर उनकी सामग्री का सूक्ष्म अवलोकन करें जिससे कृतित्व का सही निर्धारण हो सके। तभी पाठान्तर देखकर प्रामाणिक संस्करण तैयार किये जा सकेंगे।

श्रीधर के सन्दर्भ में पूर्ववर्ती विद्वानों ने पर्याप्त शोध किया है। उनके निष्कर्षों एवं इंगित किये गये तथ्यों का विश्लेषण भी आवश्यक है। कतिपय प्रमुख पठनीय आलेख/पुस्तकें निम्नलिख़ित हैः-

1. Sudhakar Divedi, Trisatika of Sridhara, Banaras, 1899.
2. N. Ramanujacharia & G.R. Kaye, The Tristika of Sridharacarya, Billiotheca math. (3), 13 P.P. 203-217, 1912-1913.
3. D.E. Smith, History of Mathematics, 2 vols, Dover Publication New York 1925.
4. B.B. Datta, On the Relation of Mahavira to Sridhara, ISIS, 17, P.P. 25-33, 1932.
5. सुधाकर द्विवेदी (संशोधक एवं अनुवादक-पद्माकर द्विवेदी) गणक तरंगिणी, वाराणसी, १६३३।
6. P.K. Gode, Reference to a Lost Work on Patiganita of Sridhara carja by Mabbi ghatta (1337 A.d.) and by Raghaiea a Ghatta (1483 A.D.) etc. J.I.H., 16 P.P. 259-262, 1936.
7. बलदेव मिश्र, श्रीधराचार्य, काशी विद्यापीठ, रजत जयन्ती स्मारिका पृ. ११०-११४, १६४६।
8. S. Srikant Shastri, The Date of Sridharacarya, Jain

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Antiquary, 13 (2), P.P. -12-17, 1946.
9. नेमिचन्द्र जैन शास्त्री, श्रीधराचार्य, जैन सिद्धान्त भास्कर (आरा), १४ (२) पृ. ३१-४२।
10. Sabal Singh, Hindu Mathematics, Sridharacarya and his works, Doctoral Thesis, Agra Univ., 1946.
11. Sabal Singh, Time of Sridharacarya. ABORI. 31, P.P. 267-72-1950.
12. कृपाशंकर शुक्ल श्रीधराचार्य का पाटीगणित, ज्ञानशिखा, २, पृ. २१-३०, १९५१।
13. K.S. Shukla, Patiganita of Sridharacarya (with Translation & introduction) Lucknow, 1959.
14. U. Asthana, Acarya Sridhara & His Trisatika, Doctoral Thesis, Lucknow Univ. 1960.
15. शंकर बालकृष्ण दीक्षित (अनु. शिवनाथ झारखण्डी), भारतीय ज्योतिष, लखनऊ, १९६३।
16. ब्रजमोहन, गणित का इतिहास, लखनऊ, १९६५।
17. A.I. Volodarsky & O.F. Volkovoi, Russian Translation of Sridhara's Patiganita, 1966.
18. A.K. Bag, mathematics in Ancient & Medieval India, Varanasi, 1979.
19. T.A. Saraswati, Geometry in Ancient & Medieval India, Varansi, 1979.
20. D. Pingree (ed.), The Ganita pancacimst of Sridhara, Rtm. Ludubik Sterntach Felicita on Volume. Lucknow, Akhil Bhartiya Samskrit Parishad. 1979. 887-909.
21. अनुपम जैन, गणित के विकास में जैनाचार्यों का योगदान, एम.फिल. योजना विवरण, मेरठ वि.वि., मेरठ १९८०।
22. Ganitananda, On The Date of Sridhara, Ganita Bharti, 9 (1-4) P.P. 54-56, 1987.
23. T. Hayashi, The Pancauinsatika in its two recerision A study in the reformation of a medicial smanskrit mathematics text book I.J.H.S. 26, 1991, 399-448.
24. T. Hayashi, Sridhara's Authorised of the Mathematical Treatise, Ganita Pancacimst Historia Scienarum 4 (3) 1995, 233-250.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रावकाचार में वर्णित अष्टमूलगुण शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक दृष्टि

–डॉ. अशोक कुमार जैन
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ

श्रमण संस्कृति निर्वृति प्रधान है और निर्वृति का मार्ग साधु मार्ग है किन्तु सबके लिए साधु मार्ग पर चलना संभव नहीं है और साधु मार्ग को अपनाये बिना मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को निर्वृति मार्ग का पथिक बनाने एवं जीवन को सार्थक करने हेतु जैन धर्म में गृहस्थ धर्म या सागार धर्म का उपदेश दिया गया है। श्रमण धर्म हो या श्रावक धर्म दोनों में आचरण का विशिष्ट स्थान है। आचरण वह दर्पण है जिसमें व्यक्ति के भावों की निर्मलता का स्पष्ट निर्देशन होता है। वीतरागता चरित्र की कसौटी है क्योंकि उसके बिना भावों में निर्विकारता नहीं आ सकती और उसके बिना परमार्थ की प्राप्ति असंभव है। श्रमणत्व की प्रशस्त साधना हेतु प्रारम्भिक चरण में अभ्यास की बहुत उपेक्षा है।

श्रमण और श्रावक वस्तुतः दोनों एक दूसरे के उपकारक हैं। श्रावक मुनियों को आहार दान आदि द्वारा उनकी संयम साधना की वृद्धि में सहायक बनते हैं और मुनि श्रावकों की धर्मोपदेश द्वारा अज्ञानता के मार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर चलने हेतु प्रेरणा प्रदान करते हैं। भगवान महावीर ने सामाजिक मान मर्यादाओं की स्वस्थ परम्परा हेतु मानवोचित समीचीन आचार मार्ग का प्ररूपण किया था उनके ही सिद्धान्तों को गणधरों एवं आचार्यों ने अनेक ग्रन्थों में श्रावकाचार का सम्यक् रीत्या प्ररूपण किया जो आज के भौतिकता के वातावरण में आकण्ठ निमग्न मानव को जीने की कला सिखाते हैं। जैन धर्म का श्रावक चर्या विधान सुव्यवस्थित, व्यावहारिक और वैज्ञानिक है। भगवान महावीर के शासन के बारे में आचार्य समन्तभद्र ने लिखा है:-

दया-दम-त्याग समाधिनिष्ठं नय प्रमाण प्रकृतांजसार्थम्
अधृष्यन्यैरखिलैः प्रवादैर्जिन त्वदीयं मतद्वितीयम् ।।युक्त्यनुशासन ६।।

अर्थात् भगवान महावीर का शासन नय प्रमाण के द्वारा वस्तु तत्व को बिल्कुल स्पष्ट करने वाला और सम्पूर्ण प्रवादियों द्वारा अबाध्य होने के साथ-साथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दया (अहिंसा) दम (संयम), त्याग (परिग्रह त्यजन और समाधि (प्रशस्त ध्यान) इन चारों की तत्परता को लिए हुए है और यही सब उसकी विशेषता है इसलिए वह अद्वितीय है।

श्रावक का लक्षण

श्रावक को सद्गृहस्थ, अगारी, उपासक, गृही सागार आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है। सागार धर्मामृत में गृहस्थ का लक्षण लिखा हैः-

न्योपात्ताधनो यजन् गुणगुरू न सद्गीस्त्रवर्ग भजन्
नन्योंन्यानुगुणं तदर्हगृहिणी स्थानालयो हीममः।
श्रृण्वन् धर्मविधि दयालुरघमी सागारधर्म चश्ते।।

जो न्यायपूर्वक धन कमाने वाला, गुणों गुरूजनों और गुणों से महान गुरूओं को पूजने वाला, आदर-सत्कार करने वाला, परनिन्दा, कठोरता आदि से रहित प्रशस्त वाणी बोलने वाला, परस्पर में एक-दूसरे को हानि न पहुंचते हुए धर्म, अर्थ और काम का सेवन करने वाला, धर्म, अर्थ और काम सेवन के योग्य पत्नी, गांव नगर और मकान वाला, लज्जाशील, शास्त्रानुसार खानपान और गमनागमन करने वाला, सदाचारी पुरुषों की संगति करने वाला, विचारशील, पर के द्वारा किये गये उपकार को मानने वाला, जितेन्द्रिय, धर्म की विधि को सुनने वाला और पापभीरूपुरूष गृहस्थ धर्म को पालन करने में समर्थ होता है। इसी ग्रन्थ में एक अन्य श्लोक में श्रावक के बारे में वर्णन हैः-

मूलोत्तर गुण निष्ठामधितिष्ठन् पंचगुरुपदशरण्यः।
दानयजन प्रधानो ज्ञानसुधा श्रावकः पिपासु स्यात्।। सा.ध. १५।।

जो मूलगुण और उत्तर गुण में निष्ठा रखता है, अर्हन्त आदि पांच गुरुओं के चरणों को ही अपना शरण मानता है, दान और पूजा जिसके प्रधान कार्य हैं तथा ज्ञान रूपी अमृत को पीने का इच्छुक है वह श्रावक है।

श्रावक के भेदः-

पं. प्रवर आशाधर जी लिखते हैंः-

पाक्षिकादिमिदा त्रेधा श्रावकस्तत्र पाक्षिकः।
तद्धर्मगृह्यस्तन्निष्ठो नैष्ठिकः साधकः स्वयुक।।सा.ध. २०।।

अर्थात् पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक के भेद से श्रावक के तीन भेद हैं। हिंसा विरति रूप श्रावक धर्म का पक्ष लेता है अर्थात् उसका पालन करना स्वीकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है वह पाक्षिक है और जो उसमें निष्ठा रखता है अर्थात् निरतिचार श्रावक धर्म का निष्ठापूर्वक निर्वाह करता है वह नैष्ठिक है। जो अपने में समाधि लगाता है अर्थात् समाधिपूर्वक मरण साधना है वह साधक है।

पाक्षिक श्रावकः-

तत्रादो श्रद्धधज्जैनीमाज्ञां हिंसामपासितुम्।
मद्यमांसमधून्युज्झेत पंच क्षीरिफलानि च।।

गृहस्थ धर्म में सबसे पहले जिनागम की आज्ञा का श्रद्धान करते हुए हिंसा को छोड़ने के लिए देश संयम की ओर उन्मुख पाक्षिक श्रावक को मद्य, मांस पांच क्षीरि फलों को मक्खन, रात्रिभोजन और बिना जल आदि को छोड़ना चाहिए।

नैष्ठिकः-

देशयमघ्नकक्षाय क्षयोयशमतारतम्यव शतः स्यात्।
दर्शनिकाद्येकादशदशावसो नैष्ठिकः सुलेश्यतरः।।

देशचरित्र को घातने वाली कषाय के क्षयोपशम के उत्तरोत्तर उत्कर्ष के कारण दार्शनिक आदि ग्यारह अवस्थाओं के अधीन तथा पाक्षिक की उपेक्षा उत्तम लेश्या वाला नैष्ठिक श्रावक होता है। दार्शनिक, व्रतिक सामयिकी, प्रोषधापवासी सचित्तविरत, दिवामैथुन इन छह प्रतिमाधारकों के गृहस्थ कहा है। ये श्रावकों में जघन्य होते हैं। अब्रह्मविरत, आरम्भविरत और परिग्रहविरत ये तीन वर्णी या ब्रह्मचारी कहलाते हैं और श्रावकों में मध्यम होते हैं। अनुमति विरत और अद्दिष्ट विरत ये दो भिक्षुक कहे जाते हैं और श्रावकों में उत्तम होते हैं।

साधक- जो जीवन का अन्त आने पर शरीर, आहार और मन, वचन काया के व्यापार को त्याग कर ध्यान शुद्धि के द्वारा आनन्दपूर्वक आत्मा की शुद्धि की साधना करता है, वह साधक है।

श्रावक के मूलगुण- आचार्य कुन्दकुन्द और उमास्वामी ने अपने श्रावकाचार के वर्णन में मूलगुण का कोई निर्देश नहीं किया। श्वेताम्वर साहित्य में भी श्रावक के मूलगुणों की कोइ चर्चा नहीं है। सर्वप्रथम आचार्य समन्तभद्र के रत्नकरण्ड श्रावकाचार में श्रावक के आठ मूलगुण कहे हैं। वे हैं मद्य, मांस, मधु मांस के त्याग के साथ पांच अणुव्रत। महापुराण में तो व्रताचरण क्रिया में मधु मांस के त्याग तथा पांच उदुम्बर फलों के त्याग और हिंसादि विरति को सार्वकालिक व्रत कहा हैं। मूलगुण का नाम भी नहीं है। पुरुषार्थ सिध्युपाय में भी सर्वप्रथम हिंसा के त्यागी को मद्य, मांस, मधु और पांच उदुम्बर फलों को छोड़ने का विधान है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किन्तु उन्हें मूलगुण शब्द से नहीं कहा है। इसी ग्रन्थ में ही इन आठों में होने वाली हिंसा का स्पष्ट कथन मिलता है और इन्हें अनिष्ट, दूस्तर और पाप कें घर कहा है तथा यह भी कहा है कि इन आठों का त्याग करने पर ही सम्यग्दृष्टि जीव द्वारा जिनधर्म की देशना का काम होता है। इसके बाद आचार्य सोमदेव ने अपने उपासकाचार में और आचार्य पद्मनन्दी ने पंचविंशातिका में स्पष्ट रूप से इन आठों के त्याग को मूलगुण कहा है और उन्हीं का अनुसरण पं. आशाधर जी ने किया है। आचार्य अमितगति ने जो आचार्य सोमदेव और पद्मनन्दी के मध्य हुए अपने श्रावकाचार में इन आठों के साथ रात्रिभोजन का भी त्याग आवश्यक माना है किन्तु उन्हें मूलगुण शब्द से नहीं कहा। देवसेन के श्रावक संग्रह की गाथा ३५६ में अष्ट्मूलगुण का निर्देश है। शिवकोटि की रत्नमाला में एक विशेषता है उसमें मद्य, मांस और मधु के त्याग के साथ पांच अणुव्रतों को अष्टमूलगुण कहा है और पांच उदुम्बर फलों में त्याग वाले अष्टमूलगुण के पालकों को कहा है। पं. आशाधर के उत्तरकालीन मेघावी ने अपने श्रावकाचार में मद्यादि तीन तथा पांच उदुम्बर फलों के सातिचार त्याग को अष्ट्मूलगुण कहा है। पं. राजमल्ल ने पंचाध्यायी के उत्तरार्द्ध में आठ मूलगुणों का कथन करते हुए उनके बारे में जो विशेष कथन किया है वह इस प्रकार है कि व्रतधारी गृहस्थों के आठ मूलगुण होते हैं। कहीं-कहीं अव्रतियों के भी होते हैं क्योंकि ये सर्वधारण हैं। ये आठ मूलगुण स्वभाव से या कुल परम्परा से चले आते हैं।

इसके बिना न सम्यक्त्व होता है और न व्रत। इनके बिना जब जीव नाम से भी श्रावक नहीं हो सकता तब पाक्षिक नैष्ठिक और साधक की तो बात ही क्या है। जिसने मद्य, मांस और मधु का और पांच उदुम्बर फलों का त्याग कर दिया है वह नाम से श्रावक है। त्याग न करने पर नाम से भी श्रावक नहीं है।

मद्यपान से हानि- पुरुषार्थ सिध्युपाय में वर्णन है कि मदिरा अर्थात् शराब मन को मोहित करती है और मोहित चित्त पुरुष तो धर्म को भूल जाता है तथा धर्म को भूला हुआ जीव निडर होकर हिंसा का आचरण करता है। मदिरा बहुत से रस से उत्पन्न हुए जीवों की योनि मानी जाती है। इस कारण मदिरा सेवन करने वाले जीवों के हिंसा अवश्य ही होती है। घमण्ड, डर, ग्लानि, हास्य, अरति, शोक, काम, क्रोध आदि विकार मदिरा के निकटवर्ती है।

वैज्ञानिक खोजों से पता लगा है कि दीर्घकाल तक मद्य पीने से हृदय की नसें बेकार हो जाती हैं। मद्यपान, अप्रत्यक्ष रूप से गुर्दे पर भी भारी प्रभाव डालता है।

अल्कोहल के लगातार सेवन से आदमी के शरीर में अनेक बीमारियों स्थान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बना लेती हैं। आंखे जलने लगती हैं। मितली सी आने लगती है, भूख खत्म हो जाती है, थकावट आने लगती है, पसीना ज्यादा छूटने लगता है। शरीर में कंपकपी शुरू हो जाती है।

सुप्रसिद्ध ब्रिटिश सर्जन सर लाउडर ब्रुटन ने कहा है शराब धीरे-धीरे निर्बल और पंगु बनाती है, उसका यह कार्य प्रथम जाम के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है।

डॉ. क्वैन सैल का अभिमत है मद्यसारयुक्त पेय की लघु मात्रा भी मूत्राशय की थैली की कार्यप्रणाली में भारी परिवर्तन कर सकती है। अनुमति की स्वच्छता में कमी तथा निर्णय लेने की शक्ति को घटा सकती है।

शराब पीने का प्रभाव ही यह होता है कि आदमी की नियंत्रण शक्ति चेतना शून्य हो जाती है और वह अच्छे बुरे में भेद नहीं कर सकता। रक्त की धारा के माध्यम से जब शराब एक बार मस्तिष्क में प्रविष्ट हो जाती है तो उसका प्रभाव आत्म नियन्त्रण तथा निर्णय लेने की शक्ति पर हावी हो जाता है। शरीर शक्ति के लिए भी अल्कोहल में कैलोरीज तो होती है पर वह विटामिन, प्रोटीन, लोहा आदि पौष्टिक पदार्थों का स्थान नहीं ले सकती।

मांस भक्षण से हानि- पुरुषार्थ सिध्युपाय में वर्णन है कि प्राणियों के घात करने से हिंसा अवश्य हो जाती है। कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि स्वयं से ही मरे हुए प्राणियों से भी मांस प्राप्त होता है उनके भक्षण में कोई दोष नहीं होता आचार्य भी उस मांस के आश्रित रहने वाले उसी जाति के निगोद जीवों के मंथन से हिंसा होती है। बिना पकी-पकी हुई तथा पकती हुई मांस की डलियों में उसी जाति के सम्मूर्छन जीवों का निरन्तर ही उत्पाद होता रहता है।

आधुनिक शरीर शास्त्री, आहार शास्त्री और स्वास्थ्य शास्त्री भी अपने अन्वेषणों के आधार पर मांसाहार को शारीरिक और मानसिक दोनों दृष्टियों से दोषपूर्ण मानते हैं। मांसाहार अप्राकृतिक उत्तेजना उत्पन्न करता है, सहनशीलता को कम करता है, धमनियों और शरीर के तंतुओं के लचीलेपन को नष्टकर आयु को कम करता है। मांसाहार हमारे लिए अत्यन्त घातक है।

स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयार्क, बफैलों में की गई शोध से यह प्रकाश में आया है कि अमरीका में ४७००० से भी अधिक बच्चे हर वर्ष ऐसे जन्म लेते हैं जिन्हें माता-पिता के मांसाहारी होने के कारण कई बीमारियां जन्म से ही लगी होती हैं और ये बच्चे बड़े होने पर भी पूर्णतः स्वस्थ नहीं हो पाते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मांसाहार से हृदय रोग (उच्च रक्त चाप) व कैंसर जैसे असाध्य रोग हो जाते हैं। उच्च रक्तचाप का कारण रक्त-वाहिनियों की भीतरी दीवारों पर कोलेस्टोरोल का जमना है।

सभी प्राणियों के शरीर में विषैले पदार्थ तैयार होते हैं। वे केवल मल-मूत्र द्वारा ही शरीर के बाहर, निकल सकते हैं जब कोई जानवर मारा जाता है और उसके मांस में से ऐसे पदार्थ रह जाएं तो उनके बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं रह जाता। हृदय की क्रिया बंद होने के बाद शरीर के सारे अवयव पूर्ण रूप से निष्क्रिय हो जाते हैं अतः मृत जानवरों के मांस में विषैले पदार्थ भारी मात्रा में जमा रह जाते हैं जो व्यक्ति उसे खाता है सहज ही वह सारा विषैला तत्व उसके शरीर में पहुंच जाता है।

जिन जानवरों को मारा जाता है उन्हें हार्मोन्स, एन्टीवॉडीज और इसी प्रकार की अन्य औषधियां तथा जन्तुनाशक दवाइयां निश्चित रूप से दी जाती हैं जो व्यक्ति मांसाहार करता है उसमें शरीर में ये जहरीले पदार्थ जमा हो जाते हैं। गायों आदि जानवरों को मोटा-ताजा बनाने के लिए भी बी.ई.एस. नाम की दवाई दी जाती है। दूसरे उनके मांस को खाने से कैंसर की संभावना बतायी गयी है। जिन स्त्रियों को आज से पच्चीस वर्ष पूर्व बी.ई.एस. की औषधि दी गयी थी उनमें तथा उनकी पुत्रियों तक में कैंसर का प्रभाव अधिक पाया गया है।

आजकल अण्डों के खाने का भी प्रचलन बढ़ता जा रहा है जबकि सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों एवं चिकित्सकों ने स्पष्ट रूप से इनमें दोष बताये हैं।

डॉ. गोबिन्दराज का कहना है कि अण्डों में नाइट्रोजन, फास्फोरिक एसिड और चरबी की अधिक मात्रा होती है। इस कारण शरीर में ये तेजाबी माद्दा पैदा करते हैं और मनुष्य को रोगी बनाते हैं।

लन्दन के डॉक्टर एलेग्जेण्डर हेग के वैज्ञानिक परीक्षण के अनुसार मछली और मांस में यूरिक एसिड विष होता है। यह विष जब खून में मिलता है तब दिल की बीमारी टी.वी., जिगर की खराबी, श्वांस रोग, खून की कमी, गठिया, हिस्टोरिया, सुस्ती, अजीर्ण और तरह-तरह के दर्द पैदा कर देता है।

डॉ. ए. बांच मैन और डॉ. डी.एस. वर्नसीन ने हार्वर्ड मेडिकल स्कूल रिपोर्ट १९६९ पृ. ४५८ में लिखा है-

मांसाहार पाचन संस्थान को खराब करता है क्योंकि वह मुंह की लार की प्रतिक्रिया को क्षार से अम्ल में परिवर्तित कर देता है। इस प्रकार लार अपने काम में सक्षम नहीं हो पाती।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रात्रि भोजन का दोष- जैन श्रावकाचारों में श्रावकों के रात्रि भोजन का निषेध किया गया है इसका जितना धार्मिक दृष्टि से महत्व है उतना वैज्ञानिक दृष्टि से भी। हम जो भोजन करते हैं उनका पाचन होता है तैजस शरीर के द्वार उसको अपना काम करने के लिए सूर्य का आतप आवश्यक होता है। जब उसे सूर्य का प्रकाश नहीं मिलता तब वह निष्क्रिय हो जाता है। पाचन कमजोर हो जाता है। इसलिए रात को खाने वाला अपच की बीमारी से बच नहीं सकता यह कारण वैज्ञानिक है।

दूसरा कारण है जब सूर्य का आतप होता है तब कीटाणु बहुत सक्रिय नहीं होते हैं। बीमारी जितनी रात को सताती है उतनी दिन में नहीं सताती उदाहरणार्थ वायु का प्रकोप रात में अधिक होता है।

रात्रि भोजन में दृष्ट और अदृष्ट दोष पाये जाते हैं। रात्रि में जीवों का संचार बढ़ जाता है। फलतः भोजन में गिर पड़ने वाली मक्खी, मकड़ी, जूं वगैरह दृष्टिगोचर नहीं होते और उनके भक्षण से अनेक भयानक रोग हो सकते हैं। शास्त्रकारों ने कहा है कि भोजन में यदि चींटी खायी जावे तो मेधा का घात करती है, जूं के खाने से जलोदर रोग होता है, मक्खी खा लेने से वमन होता है। यदि बिच्छू भोजन में गिर जाये तो तालु को डंक से बींध देता है। बाल गले में लगकर स्वर भंग कर देता है।

जल छानकर या उबालकर पीने से लाभ- जैन श्रावकाचारों में जल को छानकर तथा उबालकर उपयोग करने की बात कही गयी है, जो पूर्ण वैज्ञानिक है। जल में अनेक सूक्ष्म जीव एवं अनेक अशुद्धियों होती हैं, जल की कुछ भौतिक अशुद्धियां तो वस्त्र मे छानने के बाद दूर हो जाती हैं कुछ जीव भी इस प्रक्रिया द्वारा जल से पृथक किये जा सकते हैं किन्तु जल की शुद्धि वस्तुतः जल को उबालने मे होती है। छने हुए जल को अग्नि पर उबालने से जलक्त सभी प्रकार की अशुद्धियां दूर हो जाती हैं और जल पूर्ण शुद्ध होकर निर्मल बन जाता है।

इस प्रकार जैन धर्म का श्रावकचर्या विधान सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक है। हमें इसके आलोक में अपने आचरण को निर्मल बनाकर आत्मकल्याण करना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानव शरीर : चुम्बकीय गुणों का स्वचालित यंत्र

–डॉ. अभय प्रकाश जैन
एन-१४, चेतकपुरी, ग्वालियर

जैन विद्या के अध्ययन में लाक्षणिक साहित्य Technical Science का महत्व विस्मृत नहीं करना चाहिये क्योंकि जैन विद्या जीवन के सभी पक्षों का विचार करती है। मनुष्य समाज के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास में जैन विद्या का महत्व अब पहले से अधिक आवश्यक हो गया है। आज के वैज्ञानिक युग में जैन विद्या के विभिन्न वैज्ञानिक पक्षों को उद्घाटित करने का महत्व समीचीन है क्योंकि उसे अपने अस्तित्व के साथ जीवित रहकर समाज के उत्कर्ष में योगदान करना चाहिये।

जैन विज्ञान शाश्वत् अनादि एवं सार्वभौमिक है। चुम्बकत्व वह मूलाधार है जो इस असीम ब्रह्माण्ड की आधारशिला है। चुम्बकत्व के कारण ही आकाश के विभिन्न ग्रह एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। पृथ्वी हो या चन्द्रमा हो या दूसरे ग्रह, उन सभी से एक चुम्बकीय शक्ति निकलती है जिसका हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। भौतिकी, रसायन, आयुर्वेद, खगोल विज्ञान का भारतवर्ष के विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों से अति घनिष्ट सम्बन्ध रहा हो।

भारतीय वैदिककालीन मान्यता के अनुसार संहिता ग्रंथों में आयुर्वेद, आकाशीय ऊर्जा की अथर्ववेद का अंग, उपवेद वर्णित किया है। इसी प्रकार श्रमण परम्परा के अनुनायी जैनाचार्यों ने द्वादशांग शास्त्र में दृष्टिवाद से सम्बन्ध बताया है। इसका जो बारहवां अंग है, उनके पांच भेदों में से एक भेद पूर्व है इसके भी चौदह भेद हैं। इन भेदों में जो प्राणवाद पूर्व शास्त्र है उसमें विस्तार के साथ अष्टांग शरीर विज्ञान और आयुर्वेद का कथन है। जैनाचार्यों के शरीर विज्ञान एवं चिकित्सा शास्त्र का वर्णन अपने धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर विशेष रूप से किया है। उदाहरणस्वरूप अहिंसा तत्व के आदर्श का संरक्षण करने के लिये उन्होंने अपने ग्रंथों में औषधि प्रयोग में मद्य, मांस, मधु आदि का उपयोग नहीं बताया है क्योंकि इनकी प्राप्ति में असंख्य सूक्ष्म जीवों का संहार करना पड़ता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूर्य एक बहुत बड़ा प्राकृतिक चुम्बक है और उसकी आकर्षण शक्ति महान है। वह सभी ग्रहों को आकृष्ट करता है जो उसके चुम्बकत्व के प्रभाव से उसके इर्दगिर्द घूमते हैं। सूर्य के साथ पृथ्वी का विशेष सम्बन्ध है। दस दिशाओं में पूर्व, उत्तर के कोण में आग्नेय दिशा है। सभी ईश्वरीय सत्ताएं चाहे वे किसी भी धर्म की हों, चाहे वे चौबीस तीर्थंकर हों, चाहे राम, कृष्ण, हजरत, ईसा, नानक सभी ने इसी दिशा में जन्म लिया है। उन्होंने सूर्य की भांति पूरे विश्व में धर्म और आध्यात्म का प्रकाश फैलया। आग्नेय दिशा का यह चुम्बकीय प्रभाव है।

सूर्य अग्नि का प्रतिनिधि है और पानी पर चांद का प्रभाव है। सभी प्रकार के विकास के लिये गर्मी, प्रकाश और पानी की आवश्यकता होती है। चन्द्रमा भी एक बहुत बड़ा प्राकृतिक चुम्बक है। इसके शुक्ल और कृष्ण पक्ष का हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। हमारी दैनिक गतिविधियों में चन्द्रमा का गहरा प्रभाव है क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है 'चन्द्र मनसो जातः।' प्राचीन भारत में पंचांग चन्द्रमां क गति के अनुसार बनाये गये। स्त्रियों के मासिक धर्म की गणना चन्द्रमा की कलाओं के अनुसार की जाती है। जैन, हिन्दू और मुसलमानों में बहुत से तीज त्यौहार चन्द्रमा के अनुसार मनाए जाते हैं और काल गणना भी तदनुरूप की जाती है।

चन्द्रमा की चुम्बकीय आकर्षण शक्ति के कारण समुद्र में ज्वार-भाटे भी आते हैं। ये प्रायः अष्टमी/चतुर्दशी अमावस्या और पूर्णिमा को पूरी शक्ति पर होते हैं। मानव शरीर में ७० प्रतिशत जल है मस्तिष्क और पेट में अधिकांशतः पानी है इसलिए चन्द्रमा का प्रभाव उपरोक्त हो चुका है कि पूर्णिमा के दिन ही पुलिस केस (Crime) ज्यादा होते हैं, पूर्णिमा पर ही पागलों को भीषण दौरे पड़ते हैं। अंग्रेजी भाषा में पागल के लिये Lunatic शब्द प्रयोग किया जाता है जो शब्द ल्यूना से बना है। प्रथम अमावस्या और पूर्णिमा, अष्टमी, चतुर्दशी के दिन व्रत रखने की परिपाटी अतयन्त वैज्ञानिक और तर्कसंगत है। इससे शरीर के असंयत द्रवों को कम करने और उसमें उचित संतुलन बनाए रखने में सहायता मिलती है। बहुत सी बीमारियां और औषधियों पर भी चन्द्रमा के चुम्बकीय आकर्षण का प्रभाव पड़ता है। कई रोग पूर्णिमा के आसपास अधिक भीषण रूप धारण कर लेतें हैं और कई औषधियां पूर्णिमा के दिन दी जायें तो अधिक प्रभावी होती हैं। दमे के रोगियों को कुछ विशिष्ट आयुर्वेदिक औषधि शरद पूर्णिमा को तैयार करके खिलाई जाती है जो हर वर्ष अक्तूबर के महीने में पड़ती है।

हमारे जैन मंदिर के गर्भ गृह में मूल वेदी पर प्रायः एक बड़ी पाषाण या धातु की प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है। इनको प्रतिष्ठित करते समय प्राण प्रतिष्ठा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की जाती है। सूर्य मंत्र से अभिमंत्रित करके ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से चुम्बकीय आकर्षण पैदा किया जाता है। जैसे ही हम गर्भ गृह के बाहर मंत्रोच्चारण करके प्रवेश करते हैं। गर्भगृह की उपस्थित प्राणवायु में अधिकतम ऊर्जा के साथ कम्पन शुरू हो जाता है और यह ध्वनियों के अणुओं के पुंज ऊपर उठकर प्रार्थना करने वालों की ओर आने लगते हैं जिसमें सांस लेने से आक्सीजन को हीमोग्लोबिन में प्रविष्ट करने में मदद मिलती है। इस प्रकार पूजा, अर्चना की तन्मयता, आध्यात्मिक जुड़ाव, भक्ति में शारीरिक अवयवों की लयबद्धता, तालबद्धता का equalibariam संतुलन (सहजता) रिदमिक Balance बनाती है जिससे अनेक विकृति शीरीरिक अवयव शांत होकर अनुकूलता की ओर परिणत होते हैं। गर्भगृह चारों ओर से बंद रहने से अनुनादक Volume Rejonator है मूर्ति ऊर्जा भण्डार Energy Resivori का काम करती है और गर्भगृह की प्राणवायु ऊर्जा के Transfer of Energy के माध्यम का काम करती है।

पूजा अर्चना के उपरान्त हम स्थापित मूर्ति की परिक्रमा करते हैं। यह भी वैज्ञानिक तथ्य है क्योंकि किसी चुम्बकीय शक्ति के चारों ओर घूमने से उस वस्तु/व्यक्ति विशेष में भी चुम्बकीय अणुओं का प्रवेश होने लगता है और चुम्बकीय क्षेत्र में आने से परिक्रमा करने वाला भी मूर्ति के गुणों से प्रभावित होता है और उसमें चुम्बकीय शक्ति आ जाती है। इस तरह सिद्ध होता है कि हमारे पूर्वजों द्वारा निरूपित/ निर्धारित मंदिर स्थापत्य विधिविधान बहुत वैज्ञानिक अर्थ रखते हैं। हमारी संस्कृति न केवल वैज्ञानिक सिद्धान्तों की जन्मदात्री है बल्कि आत्मोन्नति की अपूर्व सीढ़ी है। अंधानुकरण न करके यदि हम इन साधनों के गूढ़ रहस्यों को समझने की कोशिश करें तो हम इस जीवन को अलौकिक शक्तियों का पुंज बना सकते हैं। यह तथ्य निर्विवाद सत्य है कि इस संसार में किसी पूजनीयता, महानता, चुम्बकीय शक्ति का आभास उसका व्यावहारिक प्रयोग व चमत्कार देखकर ही होता है। कोरे सिद्धान्त जन सामान्य के लिये अनुपयोगी होते हैं। श्रद्धालुओं को अपने देवता की शक्ति ही अभिभूत और आकृष्ट करती है। यहां तो चमत्कार देखकर ही होता है। कोरे सिद्धान्त जनसामान्य के लिये अनुपयोगी होते हैं। श्रद्धालुओं को अपने देवता की शक्ति ही अभिभूत और आकृष्ट करती है। यहां तो चमत्कार को नमस्कार है।

हम अपने गुरुजनों, प्रणम्यों, आचार्यों को नमन एवं चरण स्पर्श करते हैं। विज्ञान की दृष्टि से यदि विश्लेषित करें तो सिद्ध होता है कि हमारा शरीर अनेकानेक ऊर्जाओं का भण्डार है, ऊष्मा का सुचालक है, हमारी देहयष्टि से ऊष्मा का निष्कासन हाथों और पांवों की उंगलियों के सिरे से होता है। अतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हाथों से आशीर्वाद का विधान शीर्ष संस्पर्शन से है। ऊर्जा केन्द्रित कर नमित व्यक्ति को ऊर्जस्वित करने से है। दूर से भी हाथों को उठाकर आशीर्वाद का चुम्बकीय प्रभाव है, सर्चलाइट फोकस कर आन्तरिक अंधेरा दूर करने से है, इसी प्रकार चरणों से निकली ऊर्जा का स्पर्श कराते हैं जिसमें हमें सावधानीपूर्वक आचरण का ज्ञान भली-भांति मिलता रहे। हम जैसे ही ऊर्जा के सम्पर्क में आते हैं "इलैक्ट्रिक शॉक" की उपचार पद्धति की तरह हमारी विवेक बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियां प्रभावित होकर कार्यरत एवं क्रियाशील हो जाती हैं। हमें तब कर्तव्य बोध होता है जिससे हम भ्रष्ट उन्मत्तता से बच जाते हैं। श्रावकाचार विधान में जैन मन्दिरों की भांति ही चरणों की स्थापना को भी महत्व दिया गया है। जैनागम में चारित्रिक उत्कृष्टता की श्रेणी का निर्धारण व्रत/महाव्रत अंगीकार करने से होता है। चरणों की पूजा महाव्रतधारियों, महामानवों की ही की गई है। चरणों की महिमा को भारतीय मनीषियों ने एकमत से स्वीकारा है। चरणों एवं हाथों के आगे के भाग से ऊर्जा प्राप्ति से ही अंतरंग में शुक्लध्यान प्रज्जवलित हो उठता है।

ब्रह्माण्ड में अनगिनत तारा मण्डल, ग्रह सर्वव्यापी चेतना हैं जिनमें चुम्बकत्व के कारण ही संतुलन है। मानव ब्रह्माण्ड की इस विशाल व्यवस्था में एक कण मात्र है लेकिन उसमें वे सभी तत्व हैं जो ब्रह्माण्ड में पाये जाते हैं। इसी कारण उसमें उन सभी तत्वों के गुणों का भी समावेश हुआ है। अपने आप में मानव ब्रह्माण्ड का एक सूक्ष्म रूप कहा जाता है। विकास की लम्बी प्रक्रिया में जब एक कोशिका के माध्यम से इन पांच तत्वों अथवा पंचभूतों का विकास हुआ और पहले पौधे और पशु बने और फिर मानव का उदय हुआ, प्रकृति और ब्रह्माण्ड की शक्तियों की स्पष्ट भूमिका दिखाई देती है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि मानव के शरीर की संरचना में भी संतुलन उसी चुम्बकत्व के कारण हैं जो पृथ्वी, अन्य ग्रंहों और सारे ब्रह्माण्ड को सन्तुलन की अवस्था में रखता है।

मानव जीवन के तीन तत्व कहे जा सकते हैं- शरीर, मन और आत्मा। मानव के मन और उसकी आध्यात्मिक प्रवृत्तियों से किसी चुम्बकीय शक्ति का आभास मिलता है जो इसकी अन्तरात्मा का सूक्ष्मता और शुद्धता के अनुसार कम या अधिक होती है। भारत में प्राचीन काल से साधु संतों और योगियों ने अपने व्यवहार से इस बात का प्रमाण दिया है उनके प्रभाव से गर्मी में ठण्डी-ठण्डी हवा चलने लगती थी, सूखी घास हरी हो जाती थी, पेड़ फलों और पौधे फूलों से लद जाते थे, तीर्थंकरों के गर्भ के समय से ही नौ माह तक अनेक अतिशयों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का वर्णन हमारे ग्रन्थों में मिलता है। यह उनके चुम्बकीय गुरुत्त्वाकर्षण का ही प्रभाव परिलक्षित होता था। सृष्टि के आरम्भ से ही भगवान आदिनाथ का नाम महान योगी कहा जाता है। योगी मन की शुद्धता और ज्ञान की प्राप्ति के लिये वर्षों तपस्या करते हैं। ऐसे योगी, मुनि किसी को छूकर आशीर्वाद दे देते हैं तो उसका चमत्कारी प्रभाव होता है। लगातार योग साधना के कारण शरीर के प्रत्येक कण में छिपी हुई चुम्बकीय शक्तियां प्रकट हो जाती हैं। जैन साधुओं, आचार्यों के पास ऋद्धियां, सिद्धियां स्वयं ही आ जाती हैं जिनका प्रयोग वे समाज कल्याण के लिये बिना प्रदर्शन के किंया करते हैं।

ठीक उसी प्रकार प्रकटं हो जाती हैं जिस प्रकार एक लौह बिन्दु चुम्बक के सामने चुम्बक हो जाता है। शारीरिक चुम्बकीय प्रभाव पर जो वैज्ञानिक अध्ययन कर चुके हैं, उनमे नाम हैं पैरा सेहमस, मैसमर गैसनर, हाल।

मानव का शरीर बड़े जटिल और स्वचालित यंत्र के समान है। इसके प्रत्येक अवयव में चुम्बकीय संतुलन है। यह चुम्बकीय संतुलन हर व्यक्ति में इस प्रकार की तरंगों की अपनी एक व्यवस्था होती है, प्राणी की अब तक के बिताये जीवन की पूरी समान धारा उसके भीतर सदैव कम्प्यूटर की फ्लॉपी की तरह संरक्षित है। यह धारा शरीर के सात चक्रों की सक्रिय चेतना में हैं और उनसे ऊर्जा का प्रस्फुटन होता रहता है। शरीर की सारी क्रियाओं का नियंत्रण रखने वाला अंग मस्तिष्क है। मस्तिष्क में लगभग दस अरब स्नायु सैल होते हैं जिन्हें न्यूरोन कहा जाता है प्रत्येक न्यूरान सफेद रंग के सूक्ष्म धागे के समान है और प्रत्येक ऐसा धागा दूसरे से जुड़ा हुआ है। प्रत्येक अनुभूति और ज्ञान का प्रत्येक भाग इन्हीं छोटे स्नायुओं के माध्यम से मस्तिष्क तक पहुंचता है और जब पहुंचता है तो बिजली जैसी कुछ तरंगे उत्पन्न होती हैं जो मस्तिष्क का संदेश अन्य अंगों तक पहुंचाती है। ये सभी क्रियाएं बिजली के समान हैं। मस्तिष्क में न केवल बिजली का संचार है बल्कि उसमें उसकी तरंगे भी उत्पन्न होती हैं। ये तरंगें लगभग प्रति दस सैकिण्ड बाद उठती हैं लेकिन उनका परास और आकार समय-समय पर भिन्न-भिन्न होता है। वयस्क के आकार के मस्तिष्क में लगभग २० वाट बिजली की ऊर्जा उत्पन्न होती है। उस ऊर्जा का स्रोत है स्नायुओं की कोशिकाएं जिनमें से प्रत्येक एक छोटे से डायनामों के समान है। ग्लूकोज और हाइड्रोजन जैसे तत्वों के ईंधन से कोशिका अपने आप में बिजली उत्पन्न करती है। सामान्यतः जितनी अधिक प्रेरणा होगी आस्था विश्वास सहजता और निर्मलता होगी, उतनी ही अधिक बिजली बनेगी। प्रत्येक मानव किसी एरियूल के ऊपर हाथ रखकर शक्तिशाली रेडियो संकेत प्राप्त करने के लिए एरियल का काम कर सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह भी देखा गया है कि किसी ट्रांजिस्टर रेडियो पर हाथ रख दिया जाये और उसे इस प्रकार रखा जाये कि उसका एक छोर उत्तर की ओर दूसरा दक्षिण की ओर ओर हो तो उसकी आवाज अधिक स्पष्ट हो जाती है। पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण उत्तर से दक्षिण की ओर है।

कहा जाता है कि मानव शरीर में चुम्बकत्व क्षेत्र इसलिये बनते हैं कि या तो उसमें सोडियम, पोटाशियम और क्लोरीन जैसे नमक हैं जो स्नायुओं या मांस-पेशियों की क्रिया से उत्पन्न होते हैं और क्लोरीन जैसे नमक हैं जो स्नायुओं या मांसपेशियों की क्रिया से उत्पन्न होते हैं और या उनके सिकुड़ने से।

तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में निम्न प्रकार लिखा है।

भव संग दंसण हेदु, दरसण मेत्तेण सयललोयस्स
भामण्डल जीवाणं, रवि-कोडि समज्ज ले जयई।। ९३५ पृष्ठ २८३

जो दर्शन मात्र से ही भव्य जीवों को अपने अपने सातभव देखने में निमित्त हैं। करोड़ों सूर्यों सदृश उज्ज्वल हैं, भगवान का ऐसा प्रभामण्डल जयवंत होता है।

चुम्बकीय ऊर्जा के विषय में शास्त्रों में लिखा है:-

प्रभयो परतो जिन देह भुवाः जगती सकला समवादिसृतेः
रू रू चे ससुरा सुर मर्त्यजनाः किमिदाद्भुत की दृशि धाम्नि विभौः।।

सुर असुर और मनुष्यों से भरी धर्म सभा की समस्त भूमि भगवान के शरीर से उत्पन्न हुई तथा चारों ओर फैली हुई प्रभा से बहुत ही सुशोभित हो रही है सो ठीक ही है ऐसे चुम्बकीय तेज में आश्चर्य कैसा?

मस्तिष्क तरंगों के शोध से वैज्ञानिकों ने पाया है कि जागृत अवस्था में प्रायः अल्फा और बीटा तरंगें ही उठती हैं यह अनुपम बात है कि किसी एक क्षण में मस्तिष्क के एक हिस्से में अल्फा तरंग उठती है और दूसरे हिस्से में बीटा तरंग, अन्तर्मुखी योगियों में अल्फा तरंग ही उठती है। थर्मोग्राफी के माध्यम से इनका मानक भी सम्भव हुआ है इसमें रंगों के माध्यम से शरीर के अवयवों के चित्र आ जाते हैं जो शरीर के रेडिएशन को बताते हैं। क्रिलियान फोटोग्राफी के माध्यम से स्पैक्ट्रम फोटोग्राफ शरीर के अवयवों के लिये जाते हैं जिनसे उत्सर्जित ऊर्जा का भान हो जाता है।

सन्दर्भ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

1. Magnet and magnetic fields
Dr. T. Bhattacharyya

2. Biological Impects of Megnetic Fields,
Dr. Medillen F. Barnothi Vol. II/II.

3. अर्थवेद भाग 1, खण्ड 1, सूक्त 17, मंत्र 3 और 4।
शतस्य धमनीनां सहस्त्रस्य हिराणाम्
अस्तुरिन्मध्यमा इमाः साक मन्ता अरसंत।।3।।
परि वः सिफ साक्तौ धनूर्वुहत्य क्रमीत
सतमडलेयता सु क्रम।।4।।

4. समाधि तंत्र पूज्यपाद स्वामी
भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवति तादृशः
वत्तिदीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी।।

5. जैन पूजा अभिषेक, वी.टी. कजावत

6. दर्शन स्रोत- जिनवाणी संग्रह
अद्य भवत्सफलता नयन द्वयस्य, देवः
त्वदीय चरणाम्बुज वीक्षणेन
अग्र त्रिलोक तिलक
प्रतिभासिते में संसार वारिधिरियं चुलक प्रमाणं

7. सिद्धयोगमाला- सिद्धर्षि मुनि 10वीं शती

8. योग चिंतामणि- हर्ष कीर्ति सूरि वि.सं. 1660

9. मेरू दण्ड तंत्र- पूज्यवाद

10. लेखक का आलेख- प्रकाशधारा और आभामण्डल अर्हत्वचन Oct. 92
Vol (4) पृष्ठ 31-34 इंदौर (कुन्द-कुन्द ज्ञानपीठ)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंगल मंत्र णमोकार : एक विश्लेषण

– डॉ. जयकुमार
२६१/३, पटेल नगर, मु.नगर

यह सार्वभौम सत्य है कि संसार में प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है और दुःख से भ्रयभीत है- 'जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहें दुखतैं भयवन्त।' सुखप्राप्ति के उपाय के विषय में विषमता दृष्टिगोचर होती है। जड़वादी भौतिक सामग्री की उपलब्धि में सुख मानता है किन्तु अध्यात्मवादी भौतिक सामग्री जन्य सुख को सुखाभास समझकर इच्छाओं के अभाव में स्थायी सुख स्वीकार करता है। सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स ने सुख प्राप्ति का एक सूत्र बतलाया है।

$$\frac{\text{Achievement (लाभ)}}{\text{Expectation (आशा)}} = \text{Satisfaction (संतुष्टि)}$$

अर्थात् लाभ अधिक हो तथा आशा कम हो तो सुख की प्राप्ति होती है और आशा अधिक हो तथा लाभ कम हो तो दुःख मिलता है। इस सूत्र का सार यह है कि मनुष्य को आशायें कम करके सुख प्राप्त करना चाहिए। जब आशायें शून्य हो जाती हैं तो परमानन्द की प्राप्ति होती है। जैनाचार्यों का भी यह उद्घोष है-

आशागर्तः प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपमम्।
कस्य कियदायाति वृथा का विषयैषिता।।

वादीभसिंह सूरि की तो स्पष्ट अवधारणा है कि आशारूपी समुद्र की पूर्ति आशाओं की शून्यता से ही सम्भव है। भारतीय मनीषियों ने आशान्शून्यता या आशान्यूनता की अवस्था पाने के दो साधन प्रतिपादित किये हैं- साधना (अभ्यास) और वैराग्य। इन दोनों से प्राणी प्रतिकूल परिस्थिति में भी सुख प्राप्त कर सकता है। महर्षि पांतजलि द्वारा वर्णितमन को वश में करने के लिए चतुर्विध साधनों में मन्त्रों का महत्वपूर्ण स्थान है।

भारत की आध्यात्मिक परम्परा में गुणी की पूजा उसके गुणों की उपलब्धि के लिए की जाती है- 'वन्दे तद्गुणलब्धये' इसका प्रमुखतम उपाय मन्त्रसाधना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, जो एक क्रियात्मक विज्ञान है तथा जिसके माध्यम से साधक साध्य से मिलकर साध्यगत गुणों को पा लेता है। मन्त्रसाधना से दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से छुटकारा पाया जा सकता है। जैन धर्म के मूल मंत्र णमोकार में जिन पंच परमेष्ठियों को नमस्कार किया है वे या तो आशा शून्य अवस्था को प्राप्त है या फिर आशा न्यूनता से क्रमशः आशाशून्यता की ओर अग्रसर है। विलियन जेम्स के शब्दों में कहा जाये तो वे या तो पूर्ण सुखी हैं अथवा पूर्ण सुखी बनने के मार्ग पर अग्रसर हैं। अतः उनके मनन से साधक भी वैसा ही बन सकता है।

मंत्र शक्ति सर्वसम्मत है। जैन परम्परा में इसे पौद्‌गलिक माना गया है। गोम्मटसार जीवकाण्ड की जीवतत्वप्रदीपिका टीका में कहा गया है- 'अचिन्त्यं हि तपो विद्यामणिमंत्रौषधि शक्त्य तिशयमाहात्मयं दृष्टत्व भावत्वात्। स्वभावोऽतर्कगोचरः इति समस्तवादिसम्भतत्वात्।' कालिदास ने इसी तथ्य को 'आचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः' कहकर प्रकट किया है यद्यपि जैन धर्म में मन्त्र आदि की सिद्धि का मोक्षमार्ग में निषेध किया है तथा मंत्रों से आजीविका करने वाले साधु को बहुत प्रताड़ित भी किया है। रयणसार में कहा गया है कि जो मुनि ज्योतिषशास्त्र, अन्य विद्या या मन्त्र तंत्र से अपनी आजीविका करता है, वैश्यों के समान व्यवहार करता है और धनधान्यादि ग्रहण करता है, वह मुनि समस्त मुनियों को दूषित करने वाला है। तथापि परिस्थितिवश हमें मंत्र प्रयोग की अनुमति भी दी गई है। भगवती आराधना की विजयोद्या टीका में कहा गया है कि जिन मुनियों को चोर से उपद्रव हुआ हो, दुष्ट पशुओं से पीड़ा हुई हो, दुष्ट राजा से कंष्ट पहुंचा हो नदी के द्वार रुक गये हों तो विद्या मंत्र आदि से उसे नष्ट करना उनकी वैयावृत्ति है। संसारीजनों के निमित्त पूजा विधान आदि धार्मिक तथा गर्भाधानादि लौकिक क्रियाओं के लिए महापुराण आदि में विशिष्ट-विशिष्ट मंत्रों का निर्देश किया गया है।

णमोकार दिगम्वर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में मान्य है। धवलाकार इसे निवद्ध मंगल मानते हैं। निबद्ध मंगल का अर्थ है- ग्रन्थकार द्वार रचित इस आधार पर इस मंत्र को धवला प्रथम खण्ड के कर्ता आचार्य पुष्पदन्त की रचना माना अभिष्ट प्रतीत होता है। यह भी संभव है कि आचार्य पुष्पदन्त ने इसे अन्यत्र से लेकर उद्‌धृत किया हो। श्वेताम्बर ग्रन्थ महानिशीथ में कहा गया है कि पंचमंगलसूत्र अर्थ की अपेक्षा तो भगवान द्वारा रचा गया है किन्तु सूत्र की अपेक्षा यह गणधर की रचना है। हाथी गुफा (उड़ीसा) शिलालेख में 'णमो सिधाणं' पाठ भेद पाया जाता है। यह शिलालेख कलिंग नरेश खाखेल का है। कुछ लोग आजकल 'अरहंताणं' पाठ को अशुद्ध घोषित कर रहे हैं आगम में अरिहंताणं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और अरहंताणं दोनों ही पाठों का खूब उल्लेख हुआ है। कषायपाहुड, महाबन्ध, मूलाचार, तिलोयपणात्ति, धवला आदि में दोनों ही पाठ प्राप्त होते हैं। हेमचन्द्राचार्य तो प्राकृत व्याकरण के अनुसार अरहंत, अरिहंत और अरूहंत तीनों पाठों का सबहुमान उल्लेख करते हैं। 'उच्चार्हति' ८.२.१११ सूत्र की स्वोपज्ञवत्ति में वे लिखते हैं- 'अर्हत् शब्दे हकारात् प्राग् उदितावुद भवन्ति च।' अरहो अरिहो रूपमरू हो चेति सिद्धयति। अरिहंतो, अरहंतो अरू हंतो चेति पठ्यते। हाथी गुफा शिलालेख में सिद्धाणं के स्थान पर सिधाणं का प्रयोग भी अशुद्ध नहीं अपितु साभिप्राय है। सिद्धाणं के सि को संयुक्ताक्षर के पूर्व होने पर भी ह्रस्व ही माना गया है, क्योंकि यहां स्वराघात नहीं है। सिद्धाणं के स्थान पर सिधाणं का लेखन उच्चारणगत भिन्नता दृष्टिगोचर होती है।

आजकल कुछ लोगों कुछ लोगों ने आगमों की शुद्धि का एक अभियान सा चला रखा है तथा पश्चाद्वर्ती व्याकरणों के आधार पर कुन्दकुन्द आदि की भाषा को शौरसेनी प्राकृत जोर-शोर से घोषित किया जा रहा है। यह दिगम्बर परम्परा को पीछे ढकेलने वाला तथा आत्मघाती भी सिद्ध हो सकता है। जिस प्रकार पाणिनि आदि के लौकिक व्याकरणों को आधार बनाकर वैदिक संस्कृति के परम्परागत मूलपाठों में परिवर्तन न करके उनकी पूर्ण सुरक्षा की गई है, उसी प्रकार दिगम्बर जैन आगमों की गाथा में भी व्याकरण को आधार बनाकर आम्नाय के मूल पाठों में परिवर्तन करना हितकर नहीं है। आगमों में आर्ण प्रयोगों की बहुलता होती है। अतः उन्हें किसी प्राकृत का मानना ही समीचीन नहीं है। हमारी परम्परा तो मूल भाषा को दश अष्ट महाभाषा समेत, लघु भाषा सात शतक सुचेत स्वीकार करती है। सुप्रसिद्ध प्राकृतवेत्ता पिशेल जैन आगमों में शौरसैनी की बहुलता तथा अर्धमागधी आदि की प्रवृत्तियों के समावेश के आधार पर ही इसे जैनशौरसेनी जैसे पृथक् नाम से अभिहित करते हैं यदि दिगम्बर परम्परा की मूल भाषा शौरसेनी स्वीकार कर ली जाए तो णमोकार मंत्र में प्रथम पद णमो के स्थान पर नमो पाठ स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि शौरसेनी में तो आदि का न अपरिवर्तनीय रहता है। जबकि यह सुविदित तथ्य है कि दिगम्बर परम्परा णमो पाठ तथा श्वेताम्बर परम्परा नमो पाठ मानती है।

णमो मंत्र में पंच परमेष्ठियों में सर्वप्रथम अरहंतों को नमस्कार किया गया है, जो सर्वथा वैज्ञानिक है क्योंकि सिद्धों का ज्ञान हमें अरहंतों के माध्यम से ही होता है। धवला में आदि में अरहंतों को नमस्कार करने के जो कारण कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं:-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१. अरहंतो के द्वारा ही सिद्धों का श्रद्वान होता है।

२. आप्त, आगम और पदार्थों का परिज्ञान अरहंतो के माध्यम से ही होता है।

३. अरहंतों के प्रति शुभ पक्ष कल्याण का उत्पादक है।

४. इस मंत्र में वस्तुतः गुणी को नमस्कार न करके गुणों को नमस्कार किया गया है और गुणों की अपेक्षा पांचो परमेष्ठी भिन्न नही है।

५. अरहंत प्राप्त है। उनकी श्रद्धा से अन्य में श्रद्धा होती है। अतः अरहंतो को प्रथम नमस्कार किया गया है। चन्तारि दण्डक में पठि त साधु शब्द आचार्य, उपाध्याय और साधु तीनों का उपलक्षण है। अतः तीनो को पृथक-पृथक उल्लिखित नहीं किया गया है। पञ्चम परमेष्ठी साधु के पूर्व जुड़ा सर्वपद् साभिप्राय है। मूलाचार में कहा गया है कि निर्वाण के साधन भूत मूल गुण आदिक में सर्वकाल अपने आत्मा को जोड़ते हैं और सव जीवों में सम्भाव को प्राप्त होते हैं, इसलिए वे सर्वसाधु कहलाते हैं। धवलाकार ने णमोकार मंत्र में पठित सर्व और लोक पदों को अन्त दीपक मानते हुए उनका सवके साथ योग अभीष्ट माना है।

अनगार धर्माकृत में णमोकार मंत्र की उच्चारणविधि का वर्णन किया गया है। इसके अनुसार प्रथम भाग में णमो अरहंताण णमो सिद्धाण दो पदों का द्वितीय भाग में णमो आयरियाणं णमो उनण्झायाणं दो पदों का तथा तृतीय भाग में णमों लोए सववसाहूणं पद का उच्चारण एवं ध्यान करना चाहिएय इस मंत्र में कुल पांच पद, पैंतीस अक्षर तता अट्ठवन मात्रायें हैं। णमोकार मंत्र का गाता की तरह उच्चारण भी किया जा सकता है। किन्तु यह गाथा के प३चलित सात प्रकारों से भिन्न है। क्योंकि गाहू में ५४ , गाथा एवं विगाथा में ५७, उद्गाथा में ६०, गाहनि एवं सिंहनी में ६२ तथा स्कन्धक में ६४ मात्राओं का विधान है, जवकि सिद्धाणं के सकारोत्तखर्ती इकार को ह्स्व (स्वराघात न होने से) माने पर इस मंत्र में ५८ मात्रायें होती हैं। यनः यह एक मंत्र है , अतः इसकी आनुपूर्ती में किञ्चित् भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। 'ओम्' बीजाक्षर के साथ पाठ भले ही समीचीन है, किन्तु अन्य रूपों में तोड़-मरोड़ कर मंत्र का पाठ साधनापद्धति के अनुकुल नहीं है। अतः जहाँ तक संभव हो मंत्र ही मंत्र को न्यूनाक्षर यां अधिकाक्षर नहीं पढ़ना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशुद्धि का गणितीय पक्ष

- प्रो० लक्ष्मी चन्द जैन
मानद निदेशक
आचार्य श्री विद्यासागर शोध संस्थान
५५४, सराफा, जवलपुर-४८२००२

प्रस्तावना

विशुद्धि विशुद्धि में भेद हैं। शब्दों द्वारा या परिभाषाओं द्वारा भेद वतलाया जा सकता है किन्तु सूक्ष्मतम विशुद्धि से लेकर उत्कृष्ट विशुद्धि के भेदों को वस्तुतः विशेष कर करण लब्धि की विशुद्धि के परिवर्तनों को गणित द्वारा ही समझा जा सकता है।

सर्वार्थ सिद्धि (१,२४,१३०, ८) में उसे विशुद्धि कहा है जो मनःपर्यय ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर जो आत्मा में निर्मलता रूप होती है। धवला (६/१, ९-७, २/१८०/६) में साता के वन्ध योग्य परिणाम को विशुद्धि कहा गया है। किन्हीं आचार्यों के अनुसार उत्कृष्ट स्थिति में अधस्तन स्थितियों को वांधने वाले जीव का परिणाम विशुद्ध कहा गया है। किंन्तु वीर सेन के अनुसार एक परिणाम के लक्षण भेद के विना द्विभाव अर्थात दो प्रकार को होने का विरोध है- जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति के वंधने के योग्य परिणामों को छोड़कर शेष मध्यम स्थितियों के वंधने योग्य सर्व परिणामों के भी संक्लेश और विशुद्धि का प्रसंग आता है। यहीं से गणितीय परिवर्तन की दर प्रारम्भ होती है।

पुनः धवला (११/४, २, ६, १६९-१७०/३१४/६) के अनुसार अत्यन्त तीव्र कषाय के अभाव में जो मन्द कषाय होती है, उसे विशुद्धता कहना चाहिये। सूत्र में साता वेदनीय के चतुः स्थान वन्धक जीव सर्व विशुद्ध है। इसका अर्थ अतिशय मंद संक्लेश है। इसके आगे परिवर्तन की दर है। साता के चतुः स्थान वन्ध की अपेक्षा साता के ही त्रिस्थान अनुभाग वन्धक जीव संक्लिष्टतर हैं। यहाँ स्थिति के स्थान में अनुभाग स्थान लिया गया है।

कषाय पाहुड़ (५/४-२२/६३१/३८०/५) में विशुद्धि स्थान उसे कहा गया है जहां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव के परिणाम वांधे गये अनुभाग सत्कर्म के घात के कारण हैं।

पुनः साता, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर और आदेय आदिक परिवर्तमान शुभप्रकृतियों के वन्ध के कारण भूत कषाय स्थानों को विशुद्धि स्थान कहते हैं। कषाय के विपाक की मन्दता विशुद्धि स्थान का लक्षण हैं। (समयसार/आ./५३-५४)

स्थितियों की वृद्धि और हानि स्वयं जीव के परिणाम हैं जो क्रमशः संक्लेश और विशुद्धि रूप परिणाम की वृद्धि तथा हानि से उत्पन्न होते हैं। स्थितियों को और संक्लेश एवं विशुद्धि की वृद्धि और हानि में कार्य कराण सम्वन्ध अवश्य है। पर उनमें लक्षण लक्ष्य सम्वन्ध नहीं माना जा सकता है। इस प्रकार वर्द्धमान व हीयमान स्थिति को संक्लेश य विशुद्धि कहना ठीक नहीं है। धवला (६/१, ९-७ २/१८१/१).

कषाय की वृद्धि भी संक्लेश नहीं है - कारण (१) अन्यथा स्थितिबन्ध की वृद्धि नहीं वन सकती है, और (२) विशुद्धि के काल में वर्द्धमान कषाय वाले जीव के भी संक्लेशत्व का प्रसंग आता है। पुनः विशुद्धि के काल में कषाय की वृद्धि नहीं होती है। ऐसा भी कहना युक्त नहीं हैं, क्योंकि वैसा मानने पर साता आदि के भुजगार बंध के अभाव का प्रसंग प्राप्त होगा। (धवला ६/१, १- ९-७,-२/१८ १/३) अतः संक्लेश से असाता का वंध और विशुद्धि से साता का वन्ध तो होता है। किन्तु वर्द्धमान व हीयमान कषाय को संक्लेश विशुद्धि कहना ठीक नहीं। कारण (३) यह है कि कषायों की वृद्धि केवल असाता के वंध का कारण नहीं है, क्योंकि कषायों की वृद्धि के काल में साता का वन्ध भी पाया जाता है। इसी प्रकार कषायों की हानि केवल साता के बन्ध का कारण नहीं है।

अतः संक्लेश एवं विशुद्धि कषायों से विलक्षण प्रक्रिया है जिन्हें गहराई से समझ लेना अति आवश्यक है। विशुद्धि समझने हेतु हमें साता के वंध के सही अर्थ को समझना होगा और उसकी उत्पत्ति के साधक को साधना होगा। पुनः संक्लेप और विशुदि स्थानों में संख्या की अपेक्षा समानता नहीं है।

प्रश्न :- सम्यक्त्व उत्पत्ति में साता वेदनीय के अधवान की प्ररूपणा करके पश्चात संक्लेश व विशुद्धि की प्ररूपणा करते हुए ज्ञापित है कि हानि को प्राप्त होने वाले कषाय के उदय स्थानों की ही क्या विशुद्धि संज्ञा है। (देखिये धवला पुस्तक ११/४२, ६. ५१/२०८/६)

उत्तर - यहाँ पर वैसा कथन ठीक है, क्योंकि दर्शन और चारित्र मोह की क्षपणा व उपशामना में पूर्व समय से उदय को प्राप्त हुए अनुभाग स्पर्धकों की अपेक्षा अनन्त गुणाहीन अनुभाग स्पर्धकों के उदय से उत्पन्न हुए कषाय के उदय स्थान के विशुद्धपना

4496

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वीकार किया गया है। परन्तु वह नियम संसार अवस्था में सम्भव नहीं है। क्योंकि वहाँ छह प्रकार की वृद्धि व हानियों से कषायोदय स्थान की उत्पत्ति देखी जाती है।

प्रश्न - संसार अवस्था में भी अन्तर्मुहूर्त काल तक अनन्तगुणे हीन क्रम से अनुभाग स्पर्धकों का उदय है ही।

उत्तर - संसार अवस्था में भी उनका उदय बना रहे। वहाँ भी उक्त स्वरूप का आश्रय करके विशुद्धता स्वीकार की गयी है। परन्तु वहाँ अनन्त गुणे हीन स्पर्धकों के उदय से उत्पन्न कषायोदय स्थान को विशुद्धि नहीं ग्रहण करना चाहिए। (इससे यह होता है कि विशुद्धि परिणाम एक स्वतंत्र परिणाम है।) इस प्रकार साता वेदनीय के बन्ध योग्य कषायोदय स्थानों को विशुद्धि ग्रहण कर सकते हैं क्योंकि इसके बिना उत्कृष्ट स्थिति में विशुद्धि स्थानों की स्तोकता विरोध है।

पुनः सातावेदनीय चतुः स्थान बन्धक जीव सबसे विशुद्ध हैं। त्रिस्थान बन्धक जीव संक्लिष्टतर हैं। द्विस्थान बन्धक जीव संक्लिष्टता हैं।

इससे विपरीत असाता वेदनीय के द्विस्थान बन्धक जीव सर्व विशुद्ध हैं। त्रिस्थान बंधक जीव संक्लिष्टतर हैं। चतुः स्थान बन्धक जीव संक्लिष्टतर हैं।

आगे धवला पुस्तक ६ में १.९.७-३/१८२/२ पर विवरण कुछ और गणितीय हुआ है। विशुद्धियां उत्कृष्ट स्थिति में अल्प होकर गणना की अपेक्षा बढ़ती हुई जघन्य स्थिति तक चली जाती है। इसके विपरीत संक्लेश जघन्य स्थिति में अल्प होकर ऊपर प्रक्षेप उत्तर क्रम से अर्थात् सदृश प्रचय रूप से बढ़ते हुए उत्कृष्ट स्थिति तक चले जाते हैं। अतः संक्लेशों से विशुद्धियां प्रथग्भूत होती हैं। अभिप्रायः यह हुआ कि साता के बन्ध योग्य परिणाम का नाम विशुद्धि है।

विशुद्धि स्थानों की अपेक्षा संक्लेश स्थान विशेष अधिक हैं।

जीव द्विचरम व त्रिचरम समय में उत्कृष्ट संक्लेश को प्राप्त होता है। मारणान्तिक समुद्घात में जीव के न तो उत्कृष्ट संक्लेश होता है और न उत्कृष्ट योग ही। अतः वह उत्कृष्ट द्रव्य का स्वामी नहीं हो सकता है। अपर्याप्त काल में सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि नहीं होती है।

यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि जागृत साकारोपयोगी को ही उत्कृष्ट संक्लेश या विशुद्धि सम्भव है। दर्शनोपयोग के समय में अतिशय (सर्वोत्कृष्ट) संक्लेश और [illegible] का अभाव होता है। [illegible] उपयोग व जागृत समय में ही सर्वोत्कृष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute; Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशुद्धियाँ व सर्वोत्कृष्ट संक्लेश होते हैं।

अब हम वेदनीय कर्म की दो उत्तर प्रकृतियों पर चढ़ते हैं। जो वेदन कराता है या जिसके द्वारा वेदन किया जाता है वह वेदनीय कर्म है। सत् असत् लक्षण वाले वेदनीय कर्म की प्रकृति सुख व दुःख के अनुभव का कारण, मिथ्यात्व आदि के प्रत्ययों के वश से कर्म रूप पर्याप्त से परिणत और जीव के साथ समवाय सम्बन्ध को प्राप्त पुद्गल स्कन्ध वेदनीय कहलाता है। इस कर्म मात्र दो स्वभाव हैं - साता वेदनीय और असाता वेदनीय। (द्रव्यार्थिक नय के आलम्बन होने से मात्र दो शक्तियां सम्भव हैं) रति मोहनीय कर्म के उदय से सुख के कारणभूत इंद्रियों के विपयों का जो अनुभव कराता है वह साता वेदनीय कर्म है। इसके विपरीत असाता वेदनीय कर्म। यदि साता वेदनीय के वन्ध योग्य विशुद्धि रूप परिणमों को जानना है तो वे निम्न प्रकार होंगे।

भूत अनुकम्पा, व्रती अनुकम्पा, दान और सराग संयम आदि का योग तथा क्षान्ति और शौच में साता वेदनीय कर्म के आस्रव हैं। सराग संयम का अर्थ संयमासंयम, अकाम निर्जरा और वाल तप होता है। अर्हन्त की पूजा में तत्परता तथा वाल और वृद्ध तपस्वियों की वैयावृत्य आदि करना विशुद्धि के ये द्वार हैं। कप्ट साध्य भी।

पुनः सयोगीकेवली गुणस्थान छोड़कर अन्यत्र उदयकाल का प्रमाण अन्तमुहूर्त नियमानुसार है। अतः कप्टसाध्य विशुद्धि का कार्यकाल अन्तर्मुहूर्त निर्णीत होता है।

साता वेदनीय की उदीरणा का काल जघन्य से १ समय और उत्कर्प से ६ मास है। असाता वेदनीय की उदीरणा का काल उघन्य से १ समय और उत्कर्प से अंतर्मुहूर्त से अधिक ३३ सागरोपम है। कारण कि सातवीं पृथ्वी में प्रवेश करने से पूर्व और पश्चात् अतंर्मुहूत मात्र काल तक असाता वेदनीय की उदीरणा पायी जाती है।

साता वेदनीय की उदीरणा में अन्तर ४ का जघन्य से १ समय और उत्कर्प से साधिक ३३ सागरोपम प्रमाण है। गति के अनुवाद से साता वेदनीय की अदीरणा का अन्तरकाल जघन्य व उत्कृप्ट भी अंतर्मुहूत है। असाता वेदनीय का अन्तर एक समय जघन्य और उत्कृप्ट ६ माह है। मनुप्य जाति में असाता की उदीरणा का अन्तर जघन्य से १ समय और उत्कृप्ट से अन्तर्मुहूत है।

वेदनीय के उत्कृप्ट अनुभाग की स्थिति १२ मुहूर्त मात्र है।

ये सभी विशुद्धि से सम्बन्धित हैं।

वेदना का अर्थ सुखदुःख है। वे सुख दुख वेदनीय रूप पुद्गलस्कन्ध के सिवा अन्य कर्म द्रव्यों में से उत्पन्न नहीं होते हैं। अन्यथा वेदनीय कर्म के अभाव का प्रसंग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आयेगा। अतः उदयगत वेदनीय द्रव्य को ही वेदना कहा है। यहां ऋजुसूत्रनय के अभिप्राय से मात्र वेदना को स्वीकार किया गया है। दुःख के उत्पाद को असाता वेदनीय नहीं माना जा सकता है, जैसे अज्ञान को।

आगे सुख के हेतुभूत वाह्यसामग्री सम्पादन में साता वेदनीय का व्यापार होता है। इस व्यवस्था के मानने पर वेदनीय कर्म को पुद्‌गल विपाकत्व प्राप्त नहीं होता। वस्तुतः दुख के उपशम से उत्पन्न हुए दुख के अविनाभावी उपचार से ही सुख संज्ञा को प्राप्त और जीव से अपृथग्भूत ऐसे स्वास्थ्य के कण का हेतु होने से सूत्र में सातावेदनीय कर्म के जीव विपाकित्व का और सुख हेतुत्व को उपदेश दिया गया है। वेदनीय कर्म जीव विपाकी है।

पुनः अघाती होने से केवल वेदनीय वास्तव में सुख का विपक्षी नहीं है।

अव हम उस विशुद्धि की ओर चलते हैं जो लब्धि के घेरे में आती है।

ज्ञान आदि शक्ति विशेष को लब्धि कहते हैं। सम्यक्तव प्राप्ति में पांच लब्धियां का होना अनिवार्य बतलाया गया है। जिनमें करण लब्धि उपयोगात्मक है, वस्तुतः सम्यक् दर्शन की उत्पादक है। इनके अतिरिक्त जीव में संयम या संयमा संयम आदि को धारण करने की योग्यताएं भी उस - उस नाम की लब्दि कही जाती है। किन्तु प्रथमोशम सम्यक्तव में कारणभूत पांच लब्धियां अंततः ऐसी विशुद्धि को देकर चाहती हैं जिसका गणितीय स्वरूप तीन अंतर्मुहूर्त में भिन्न भिन्न रूप लेता है। ऐसी पांच लब्धियां निम्न प्रकार हैं जिनमें प्रथम चार तो अभव्य को भी हो जाती हैं किन्तु अंतिम पांचवी लब्धि केवल भव्य जीव के होती हैं:-

१. क्षयोपशम लब्धि - जिस काल में जीव के कर्मों में मैलरूप जो अशुभ ज्ञानावरणादि समूह उनका अनुभाग समय समय अनन्त गुणा क्रम से घटता हुआ उदय को प्राप्त होता है। उस काल में क्षयोपशम लब्धि होती है। यहाँ भी वही विशुद्धि है, जिसका उल्लेख हम कर चुके हैं, क्योंकि अनुभाग प्रति समय अनन्त गुणा क्रम से घट रहा है, निश्चित ही विशुद्धि यहाँ वढ़ रही है।

२. विशुद्धि लब्धि :- प्रथम क्षयोपशम लब्धि से उत्पन्न हुआ जो जीव के साता आदि शुभ प्रकृतियों के वंधने का कारण शुभ परिणाम उसकी जो प्राप्ति वह विशुद्ध कहलाती है। यहां अशुभ कर्म के अनुभाग के घट ने से संक्लेश की हानि और प्रतिपक्षी विशुद्धपने की वृद्धि होती जाती है। यहाँ भी शुभ परिणाम वढ़ता चल जाता है।

३. देशना लब्धि :- छ द्रव्य और नौ पदार्थ के उपदेश का लाभ, आचार्य आदि के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा अथवा पूर्वभव में धारण किए हुए तत्त्वार्थ के संस्कार के बल से तथा उक्त उपदेश या संस्कार के अर्थ के धारण और विचारण शक्ति की प्राप्ति को देशना लब्धि कहते हैं। यहाँ साकार ज्ञानोपयोग होने से पुनः विशुद्धि अगले कदमों को चुनती बढ़ती चली जाती है।

४. प्रायोग्य लब्धि :- पूर्वोक्त तीन लब्धि जीव समय प्रति समय विशुद्ध की वृद्धि होते हुए एक ओर पुरूपार्थ करता है- कि आयु कर्म को छोड़कर शेष ७ कर्मों की स्थिति घटाता हुआ मात्र अंतः कोड़ा कोड़ी कर ले और कर्मों के फल देने की शक्ति को भी कमजोर कर दे। ऐसी योग्यता प्राप्ति को प्रायोग्य लब्धि कहते हैं। यहाँ भी पुरूपार्थ में क्या कार्यकारी है - विशुद्धि ही, जो भव्य या अभव्य के उस अंश तक पहुँची है जहाँ से अगली छलांग करण लब्धि रूप हो सकती है, किन्तु अभव्य जीव इसे इस चक्रव्यूह से निकलने की न तो रूचि रखता है, न पूर्ण जागृति, न ही वह सामर्थ्य जो भव्य कर और ले गुजरता है। यहाँ की विशुद्धि स्थिति घटाने में कारण है कर्म ज्ञान चेतना का सहारा लेकर।

५. करण लब्धि की विशुद्धियाँ - अधः प्रवृत्त, अपूर्व, एवं अनिवृत्त हैं

सर्व प्रथम यह देखना कि कौन मिथ्यात्वी जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण नहीं करता। संक्लेप परिणाम वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के संभव जो उत्कृष्ट स्थिति बंध और उत्कृष्ट स्थिति अनुभाग प्रदेश का सत्व, तथा विशुद्ध क्षपक श्रेणीवाले के संभव जो जघन्य स्थितिबंध और जघन्य स्थिति अनुभाग प्रदेश इन तीनों की सत्ता के होने पर वह मिथ्यात्वी जीव प्रथमोपशम सम्यक्तव को ग्रहण नहीं करता है।

चौथी लब्धि में कर्म-ज्ञान दोनों चेतना से उत्पन्न विशुद्धि से यह जीव प्रथमोपशम सम्यक्तव के सम्मुख होता है। इस लब्धि में विशुद्ध प्रायोगिक रूप से वृद्धिगत है जो निम्नलिखित कार्य कर रही होती है।

१. प्रायोग्य लब्धि के प्रथम समय से लेकर पूर्व स्थितिबंध के संख्यातवें भाग अतः कोड़ाकोड़ि सागर बराबर आयु के बिना सात कर्मों की स्थिति बंध करना।

२. अंतः कोड़ाकोड़ि सागर स्थिति से पल्य के असंख्यातवें भाग घटता हुआ स्थिति बंध अंतर्मुहूत तक समानता लिये होता है।

३. पुनः उससे पल्य के असंख्यातवें भाग घटता हुआ स्थितिबंध अन्तर्मुहूत तक होता है। इस प्रकार क्रम से संख्यात स्थिति बंधावसरणों कर पृथकत्व (७ या ८ सौ सागर घटने से प्रथम प्रकृति बंधावरण होता है। ऐसी ३४ घटनाएं होती हैं ३४ प्रकृति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वंधापसरण स्थान होते हैं जिन स्थानों में विभिन्न प्रकार की प्रकृतियों के वंध की व्युच्छित्ति होती है।

४. वंध व्युच्छिति होने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सम्मुख हुए मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंचों के ज्ञानावरणीय ५, दर्शनावरणीय ९, अन्तराय ५, सातावेदनीय १, मिथ्यात्व १, कषाय १६, पुरुषवेद १, हास्य-१, रति १, भय १, ग्लानि १, नामकर्म की अप्रमत्त गुण स्थान में वंध होने वाली २८, उच्चगोत्र १, इस प्रकार ७१ प्रकृतियों का वंध होता है। (नाम कर्म की - देवगति ४, त्रस ४, वर्ण-४, अगुरुलघु ४, समचतुरस्त्र संस्थान १, तैजस १, कार्माण १, शुभ विहायोगति पंचेन्द्रिय १, स्थिर १, शुभ १, सुभग १, सुस्वर १, आदेय १, यश १, निर्माण १, (कुल २८)

५. उपरोक्त ७१ प्रकृतियों में से देवगति ४ कम करके मनुष्यगति ४ और वज्रवृषभनाराच संहनन मिलाने पर ७२ प्रकृतियों का वंध देव और आदि के ६ नरक के नारकियों के होता है। सातवें नरक में ७२ प्रकृतियों में से मनुष्य गति २, उच्चगोत्र को छोड़कर तिर्यंच २ नीच गोत्र १ मिलाने पर तथा उद्योत सहित ये ७३ प्रकृतियों का वंध होता है।

६. यहाँ घातिया में लता काठ, अधातियों में नीम कांजी अनुभाव अनन्त गुणा घट ता है तथा शुभ प्रकृतियों का अनुभाग गुड़ खांड, मिश्री, अमृत प्रति समय अनन्त गुणा वढ़ता है।

७. यही १९ प्रकृतियां (मिथ्यात्व१, अनन्तानुवंधी४, स्त्यानगृद्धि३, देवगति ४ समचतुरस्त्र संस्थान १, वज्रवृषभनाराच संहनन १, शुभचाल १, सुभग १, सुस्वर १, आदेय १, नीच गोत्र १, का उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट प्रदेश वंध करता है।

८. जो इनसे हीन तीन महादंडकों (निम्न स्थानो) में कही गई ६१ प्रकृतियों का अनुत्कृष्ट प्रदेश वंध होता है।

९. ऐसे जीव के तिर्यंच गति में ५९, ५८ या ५७ प्रकृतियों का उदय होता है, मनुष्य जाति में उद्योत कम कर ५८, ५७, ५६ का उदय होता है। (ज्ञानावरणीय ५, दर्शनावरणी आदि ४, अंतराय-५, निद्राप्रचला १, मोह १०, ९ या ८ आयु १, नामकर्म की २९, वेदनीय १, नीच गोत्र १ संहनन १, उद्योत १, इस प्रकार ५९, ५८ या ५७ देव गति नरक गति में ५७, ५६, ५५ का उदय होता है।

१०. एक स्थिति में १ निषेक का उदय अशुभ का द्विस्थान (नीम, कांजी, कण या काठ) रूप अनुभाग। शुभ प्रकृतियों का चार स्थान (गुड़, खांड, मिश्री, अमृत)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप अनुभाग का उदय होना है।

११. जो प्रकृति. प्रदेश. स्थिति. अनुभाग उदय में है उनकी ही उदीरणा कर सकता है।

१२) अनादि मिथ्यादृष्टि के अबद्धायु की अपेक्षा भुज्यमान आयु के बिना आयु ३. तीर्थंकर १. आहारक ४. सम्यक् प्रकृति १. मिश्र प्रकृति १. के बिना १३८ प्रकृतियों का सत्त्व होता है। बद्धायु मिटाने पर १३९ का सत्त्व भुज्यमान आयु बिना आयु ३ तीर्थंकर १. आहारक के बिना १४० प्रकृतियों का सत्त्व रहता है। वहां बध्यमान आयुसहित १४१ का सत्त्व होता है। उद्वेलना होने पर १३९. या १४० प्रकृतियों का सत्त्व रहता है। आहारक ४ के सत्त्व की भी उद्वेलना आवश्यक है।

हम अब करण की विशुद्धि पर आते है। यहां तक विशुद्धि तथा परिणाम की वृद्धि की गणितीय धारा या श्रेणी का प्रमाण नहीं आया. केवल तारतम्य रूप में विशुद्धि की वृद्धि कहते आये। करणों में विशुद्धि तथा परिणाम किस गणितीय रूप में बढ़ते हैं यही अंक संदृष्टि द्वारा तथा अर्थ संदृष्टि द्वारा दिगम्बर जैन दृष्टिवाद अंग आगम से दिखाया गया है। जय धवल. लब्धिसार तथा उसकी टीका तथा कषाय पाहुड के चूर्ण सूत्र में यह विवरण मिलता है. गणितीय रूप में. गोम्मटसार की बड़ी टीकाओं में इन कारणों की विशुद्धि एवं परिणामों की श्रेणियां विशद रूप में जीव काण्ड में प्रारम्भ में ही बतला दी गयी है।

उनके गणितीय स्वरूप में यहां न जाकर हम थोड़ा सा विवरण इन करणों की उपयोगिता और प्रयोग देना चाहेंगे। अधः प्रवृत्त. अपूर्व एवं अनिवृत्त करण न केवल प्रथम उपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कारण होते हैं। वरन्. अन्य प्रसंगों पर भी उपयुक्त होते हैं। यथा. क्षायिक सम्यक्त्व के लिए ३. अनन्तानुबन्धी कषाय के विसंयोजन के लिए ३. चारित्र मोह के उपशम के लिए ३. चारित्र मोह के क्षय के लिए ३. क्षयोपशमिक सम्यक्त्व के लिए आदि के २ देशचारित्र के लिए आदि के २. सकल चरित्र के लिए २। जिस कार्य के लिए ये करण होते है. इन करणों के अन्तिम समय में उस कार्य की सिद्धि होती है। गणितीय निरूपण द्वारा इन करणों का बोध पुरुषार्थ की प्रगति का भी गहन गम्भीर बोध देता है. स्वोन्मुख करने में निमित्त होता है और मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी तक पहुंचाने में निमित्त हो सकता है। चेतना के जागरण की धारा कैसे कैसे रूप धारण करती चलती है और कर्म शिखर को चूर्ण करती दिखती है यह लब्धिसार के मर्म में जाने पर ज्ञात होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मांसाहार और मद्यपान से शरीर की बर्बादी और मस्कुंलर डिस्ट्रॉफी का जन्म

- डॉ० एम० एम० बजाज
देहली विश्वविद्यालय, दिल्ली

न्यूरो - मस्कुलर रोग

विकलांगता का एक क्षेत्र ऐंसा है जिसकी ओर हमारे देश में वहुत कम ध्यान दिया गया अथवा दिया गया तो उसमें समपर्ण एवं पूरे लगन से काम नहीं हुआ। इस क्षेत्र को हम असाध्य रोगों का समूह कह सकते हैं। इस समूह में कई प्रकार के भयंकर रोग आते हैं। यो रोग रोगी को लगभग पूर्णरूपेण लाचार वना देते हैं। रोगी न तो उठ सकता है और न ही मलमूत्र विसर्जन के लिए शौचालय तक जा सकता है। स्थिति इतनी गम्भीर एंव दुखद हो जाती है कि रोगी अपने माथे पर वैठी मक्खी को भी उड़ा नहीं सकता। इन रोगों को हम न्यूरो-मस्कुलर अथवा तन्त्र पंशीय रोगों का समूह कह सकते हैं।

इस समूह की एक भयंकर बीमारी का नाम हैं Muscular Dystrophy.

भारत में सुविधाएँ -

भारत में इस रोग पर लगभग सभी बड़े अस्पतालों में जाँच की पूर्ण अथवा आँशिक सुविधाएँ हैं। अब तक की प्राप्त सूचनाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि दिल्ली, मुम्बई, मद्रास, हैदराबाद, वंगलौर, लखनऊ, चण्डीगढ़, मछलीपट्टम आदि स्थानों पर कुछ काम हो रहा हैं।

दिल्ली विश्वविद्यालय का केन्द्र

इस समस्या पर दिल्ली-विश्वविद्यालच के मस्कुलर डिस्ट्रॉफी केन्द्र में पिछले ५ वर्षों में काफी शोध एवं कल्याण कार्य हुआ है।

रोग का-कारण

यह रोग होता क्यों है, इसके ऊपर भारतीय वैज्ञानिकों ने नए मापदण्ड स्थापित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किए हैं। इन तथ्यं की खोज़ करने में हमने देश के लगभग सभी क्षेत्रों से सम्पर्क स्थापित किया है और यह पता लगाया है कि Xp21 जीन किस प्रकार से शराब पीने से खराब हो जाता है। रोग का कारण ढूँढ़ने में वर्षों लगे हैं। रोग का उपचार करने के लिए भी नई एवं विश्वनीय विधियाँ विकसित की गई हैं। आइए, हम इसके बारे में विस्तार से विचार करें।

रोगी का जीवन - काल और जीवन - स्तर

अभी तक यह मान्यता थी कि Muscular Dystrophy का रोगी अधिक जीता नहीं है। उसके जीवन का स्तर अत्यन्त निराशामय होता है। हमें अपने शोधकार्य से यह पता लगा है कि रोगी ५६ साल से भी अधिक जीवित रह सकता है और समाज को अपना बहुत उपयोगी योगदान दे सकता है।

यह बात हम अपने कार्य के सिलसिले में यथार्थ रोगियों के आधार पर कह रहे हैं। हमारे कुछ रोगी अपने परिवारों के प्रमुख आजीविका कमाने वाले हैं और आज भी वे अपने कार्य और सोचने की प्रक्रिया में अत्यन्त सक्रिय हैं।

मस्कुलर डिस्ट्रॉफी और विवाह

अभी तक यह मान्यता थी कि Muscular Dystrophy के रोगियों को विवाह नहीं करना चाहिए, अन्यथा आने वाले बच्चे भी इस रोग से प्रभावित होंगे, परन्तु इन सब गलत मान्यताओं का महल सत्य की खोज से पूर्णरूपेण ध्वस्त हो चुका है।

मस्कुलर डिस्ट्रॉफी से प्रभावित नारी और गर्भपात

हम नहीं समझते कि किसी मस्कुलर डिस्ट्रॉफी से प्रभावित गर्भिणी महिला को अब अपना गर्भ नष्ट करने का पाप करना पड़ेगा।

मस्कुलर डिस्ट्रॉफी या पेशीय क्षरण से प्रभावित रोगी यदि विवाहित होता है तो इसमें निरर्थक हाय-तौबा मचाने की आवश्यकता नहीं है।

शोधकार्य के सिलसिले में हमने यूरोप और एशिया के देशों की यात्राएँ कीं। अपनी खोज़ को दौरान जब हम आस्ट्रेलिया के प्रख्यात शहर एडीलेड़ में पहुँचे तो हमें यह मालूम हुआ कि ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी से प्रभावित एक रोगी ने अपनी परिचारिका से विवाह कर लिया है और उसके एक बच्ची भी है जोकि पूर्णरूप से स्वस्थ है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि विवाह की पवित्र संस्था के द्वारा हम ऐसे विकलांग रोगियों को संरक्षण एवं सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं। यह आवश्यक नहीं कि आनेवाला शिशु मस्कुलर डिस्ट्रॉफी से प्रभावित हो हो। हमारा यह निष्कर्ष यद्यपि पूर्ववर्ती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैज्ञानिकों से भिन्न है लेकिन यह हमारे देश में रह रहे रोगियों के यथार्थ पर आधारित है।

मांसाहार और मस्कुलर डिस्ट्रॉफी

हमने पता लगाया है कि लगातार मांसाहार करना लिम्ब गिरडल मस्कुलर डिस्ट्रॉफी को जन्म देता है। इस तथ्य को पता लगाने के लिए हमने कई रोगियों और उनके परिवार में लिये जा रहे भोजन का विस्तृत विश्लेषण किया। सारणी 9 में हम उपलब्ध आंकड़े प्रस्तुत कर रहे हैं। बटर चिकन अर्थात् मुर्गी अथवा मुर्गे के भुने हुए टुकड़ों को क्रीम में आवेष्ठित करके खाने पर मांसपेशियों में निरन्तर क्षरण प्रारम्भ हो जाता है।

मांसाहार और पीठ का दर्द

मांसाहरियों में एक विशेष प्रकार का दर्द भी हमें देखने को मिला है। यह दर्द गर्दन से शुरू होकर घुटने तक आ जाता है।

उच्चस्तरीय विज्ञान (Super Science)

विज्ञान की सांसारिक उपलब्धियों के साथ जब तक हम अध्यात्म अर्थात् (Super Science) को न जोड़े तो यह कहानी अधूरी कहलाएगी।

पशुओं पर की जाने वाली पीड़ा और उन पर होनेवाले अत्याचार मस्कुलर डिस्ट्रॉफी, मल्टिपल स्लिरोसिस एवं फ्रेडरिक एटेक्सिया (Frederick Atexia) के रूप में देखने में आ रहे हैं। हम यदि केवल वेहद रूखे एवं सीमित विज्ञान का सहारा लेंगे और मानवीय पीड़ा एवं दर्द को अपने क्षेत्र से बाहर की बात मानेंगे अथवा कर्मों के लेखे-जोखे को स्वीकार नहीं करेंगे तो हमारा ज्ञान अधूरा रहेगा।

योगाभ्यास एवं मस्कुलर डिस्ट्रॉफी

योगाभ्यास के द्वारा मस्कुलर डिस्ट्रॉफी के रोगियों का बहुत कल्याण हो रहा है। इसलिए हम अष्टागंयोग पर बहुत जोर देना चाहते हैं।

एक नवीन प्रकार का श्वासक-यंत्र

दिल्ली विश्वविद्यालय के शोध केन्द्र ने कुमार-बजाज श्वासक अथवा के०बी० रेसपिरेटर नाम का एक यन्त्र मस्कुलर डिस्ट्रॉफी रोगियों के लिए निर्मित एवं विकसित किया है। इस यंत्र को राजकीय स्तर पर शिक्षा विभाग, दिल्ली राज्य ने पुरस्कृत भी किया है। यह अत्यन्त उपयोगी उपकरण है। हमने यह पता लगाया है कि इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यंत्र से रोगी के फेफड़ों की श्वसन क्रिया क्षमता का एकदम पता लग जाता है। इस यंत्र का उपयोग मरणासन्न रोगियों पर भी किया जा सकता है। इस यंत्र का उपयोग स्वस्थ एवं अस्वस्थ दोनों प्रकार के व्यक्तियों पर किया जा चुका है। इसके अलावा ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी रोगियों की मांसपेशियों को मजबूत करने के लिए एक घूमते चुम्बक का यंत्र भी रोगियों पर आजमाया गया है। यह भी ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी रोगियों में बहुत लोकप्रिय हो रहा है।

उत्सर्जित ऐड्रेनिल का Xp^{21} जीन पर प्रभाव

जब किसी जानवर को मारा जाता है तो उस समय वह वेहद छटपटाता है। उसकी आँखें लाल हो जाती हैं और अपनी बेबसी को व्यक्त करने के लिए हर सम्भव साधन अपनाता है। उदाहरणार्थ - सुअर कटने से पूर्व वेइन्तहाँ रूप से कराहता है व चीखता है और प्रतिरोध करता है और हत्यारे से बचने के लिए हर सम्भव कोशिश करता है। इस पूरी दयनीय प्रक्रिया में उसके शरीर में इड्रेनिल नाम का एक विषैला जैव-रसायन उत्सर्जित होता है और यह जहरीला पदार्थ मरे हुए जानवर के शरीर में ही बिखर जाता है। ऐसे दूषित पदार्थ को खाने से इन्सान का पवित्र शरीर जहर का अड्डा बन जाता है और कुछ विशिष्ठ परिस्थितियें में Xp^{21} जीन को खराब कर देता है। उसके खराब होने से ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी रोग होता है। यदि यह खराबी Xp^{19} जीन पर हो तो Emery-Driefuss type की मस्कुलर डिस्ट्रॉफी हो जाती है। इस सिलसिले में हमने Laser Raman Spectro-meter से काफी विस्तृत शोधकार्य किया है और अपने प्रकाशित शोधपत्रों में यह दर्शाया है कि ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी और नॉरमल ड्यूशेन मस्कुलर डिस्ट्रॉफी में क्या अन्तर है।

निष्कर्ष

हम यह कहना चाहते हैं कि मांसाहार, हिंसा और नशीले पदार्थ न केवल वर्तमान पीढ़ी का बेड़ा गर्क कर रहे हैं, अपितु उनका प्रभाव अजन्मे शिशुओं पर भी पड़ रहा है। हमारी मूर्खताओं की सजा कोई और भोगे, यह तो ठीक नहीं है। आईए हम स्वस्थ समाज का निर्माण करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए पशु-बलि: क्या कोई विकल्प है ?

- डॉ० (श्रीमती) नीलम जैन
C/o श्री यू० के० जैन
सैण्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, कोर्ट रोड
सहारनपुर

वैज्ञानिक परीक्षणों के लिए दुनिया की प्रयोगशालाओं में हर वर्ष करोड़ों असहाय पशु -पक्षियों की बलि चढ़ाई जाती है, वस्तुतः विज्ञान की सेवा में यातना भुगतने के लिए मजबूर इन पशुओं ने न कोई पाप किया होता है और नही मानवीय मामलों में इनका कोई हस्तक्षेप ही है, फिर भी वैज्ञानिक परीक्षणों के नाम पर जो कष्ट ये झेलते है उसका कोई अन्त नहीं, और परीक्षण भी कैसे-कैसे ? जीते जी उबाल देना वर्फ से भी नीचे के ताप पर जमा देना, घाव करे मार देना, और संत्रास सहायक रोगों से अभिशप्त कर मरने पर मजबूर कर देना।

वैज्ञानिकों का तर्क यही है कि यह सब मानव के सुखमय भविष्य को दृष्टिगत रखते हुए वैज्ञानिक अध्ययनों के लिए किया जाता है, जबकि वास्तविकता यह भी है कि इन तमाम तथाकथित परीक्षणों मे नई जानकारी के नाम पर प्रायः नया कुछ भी उपलब्ध नहीं होता है, वे बस पुराने प्रयोगों का अन्धानुकरण बनकर रह जाते हैं, विज्ञान के मन्दिर रूपी हमारी वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में निरीह पशु वध के इस प्रसंग पर आइये कुछ विस्तार से जांच - पड़ताल करें।

ऐसी जानकारी मिलती है कि ब्रिटेन में जानवरों पर अत्याचार की पाबन्दी के लिए विधिवत नियम कानून काफी पहले से ही अस्तित्व में रहे हैं, किन्तु १८६६ में इन कानूनों को शिथिल करे हुए जीवोच्छेदन को वैज्ञानिक जानकारी के नाम पर परमिट मिल गया और यहीं से मानव जिज्ञासा की एक परपीडात्मक प्रवृत्ति मुखरित होना आरम्भ हुई, जैसा कि भारत ने कई दूसरे मामलों में ब्रितानी व्यवस्थाओं का अन्धानुकरण किया, इस मुद्दे पर भी यहां पश्चिमी प्रतिध्वनि के चलते १९५३ में कहीं जाकर थोड़ी बहुत जनचेतना उभरी। रूकमणी देवी अरूण्डेल ने राज्य सभा में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जानवरों पर हो रहे अत्याचारों के विरूद्ध एक विधेयक रखा, जल्दीवाजी में वनायी गयी एक उच्चस्तरीय समिति में कई वैज्ञानिक और चिकित्सा संस्थानों के अध्यक्ष भी शामिल हुए, किन्तु मात्र प्रचार-प्रसार सामग्री उपलब्ध कराते रहने के अतिरिक्त इस समिति की कोई उल्लेखनीय उपलब्धि नहीं कही जा सकती. कालान्तर में इसकी अकर्मण्यता के चलते इसे भंग कर दिया गया, हां इस समितिने एक संशय भरी बात जरूर ऊठयी थी, वैज्ञानिक अनुसंधानों के लिए की जाने वाली पशु चीर - फाड को नियंत्रित करने से कहीं इस देश में वैज्ञानिक प्रगति का कारवां रूक न जाए ...

भारतीय संदर्भ में जीवोच्छेदन प्रयोगशालाओं में जानवरों की चार-फाड़ के जो दृष्टान्त दिखाई देते हैं उनसे महज पश्चिमी देशों की प्रयोगशालाओं में जानवरों पर चल रहे अत्याचारों की अन्धाकृति की ही झलक मिलती है, कुछ बानगी देखिये। एक आपरेशन में १५ कुत्तों की तिल्लियां निकाल ली गई, उन्हें इस आपरेशन के १२ घंटे पहले से भूखा-प्यासा रखा गया था अब इन सभी कुत्तों की एक प्रमुख धमनी काटकर खून बहाया गया निष्कर्ष मौलिक नहीं, इन वैज्ञानिकों की उपलब्धि मोराविट्ज नाम के वैज्ञानिक के समान प्रयोगों से लेशमात्र भी आगे बढ़ नही पाई केवल मोराविट् ज के प्रयोग - परिणामों की हूबहू पुनरावृति थी। यह निबार्ध रक्तस्त्राव और उनके परिणामों का अध्ययन किसी भी अस्पताल के आकस्मिक कक्ष में बिना पशु वध के खुद आदमी पर किया जा सकता है, इसी तरह के देह स्वस्थ नवजात पड़वी (बैसा शावक) की धमनियों और एक संवेदी नाड़ी कों काटकर मात्र स्थापित नतीजे की पुष्टि की गई (सन्दर्भ : इण्डियन जनरल आफ सर्जरी, खण्ड ३४, अंक ३ : एवं जर्नल आफ द एनाटॉमिकल सोसायटी आफ इण्डिया, खण्ड २५, संख्या ३)

अभी अति नहीं। आगे देखिये - पश्चिम बंगाल के बांकुरा जिले में जापानी मस्तिष्क/शोध की जांच पड़ताल के लिए १०५ चिड़ियां और १२१ चुहों-गिलहरियों को सीधे दिल का पंक्चर करते हुए खून के नमूने इकट्ठे किए गये (इण्डियन जर्नल आफ मेडिकल रिसर्च, खण्ड ६४, अंक १२) नतीजा यही कि प्रश्नगत प्रयोगों से यह सिद्ध नहीं होता कि बाकुंरा जिले में जापानी मस्तिष्क ज्वर के प्रसार में चिड़ियां और नन्हें स्तनपायियों की क्या भूमिका है ? क्या खूब ? तो क्या कत्लेआम (सामूहिक पशुवध) जरूरी था ?

इसी तरह अलकोहल की एक किस्म मीतेनाल की विषाक्तता की जांच के लिए ३१ नर खरगोशों और ८ नर बन्दरों की बलि दे दी गई. जो भी परिणाम आए उनसे नयापन हासिल नहीं हुआ इन हतभाग्यजानवरों ने वही लक्षण प्रगट किए जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(जहरीली) शराव की हौलियां (दुकानों) पर खुद आदमियों पर अनेक वार देखे परखे जा चुके हैं, १० कुत्तों के वृषणों में रूधिर संचरण अवरूद्ध करते हुए उसके परिणामों की निरर्थक समीक्षा की जा चुकी है।

इन प्रयोगों और परिणामों को शोध पत्र - पत्रिकाओं में ऐसी तकनीकी शव्दावलियों की आड में प्रस्तुत किया जाता है कि साधारण सोच-समझ वाला आदमी उन्हें महान वैज्ञानिक अनुसंधान की ही कोटि में समझता है भारत में तो ऐसे तमाम प्रयोग प्रायः अनुसंधान की वड़ी अनुदान राशियां का भंयकर दुरूपयोग भर लगते है।

इधर जानवरों का मस्तिष्क भी तमाम खोजों ? का केन्द्र वना हुआ है, दिमाग का कौन सा हिस्सा कुरदने पर (विजली अथवा रसायनों के जरिए) कव जानवर दर्द से विलविला उठेगा, कव अन्धा हो जायेगा, कव उसकी जवान वन्द हो जायेगी, कव वह क्रोध से चिंघाड़ उठेगा, कव सेक्स की अनुभूति पाएगा इस तरह के प्रयोगों के लिए वन्दरों - लगूरों की जान पर वन आई है। जैवीय प्राणीलियों में अपने मानव साम्य के चलते वन्दरों को सैनिक अनुसंधानों में काफी तादाद में इस्तेमाल किया गया हैं, जहाँ उन पर किटाणु आयुधों की तीक्ष्णता का भी परीक्षण होता आया है। वैसे तो भारत ने ऐसे प्रयोगों के विरोध में १९७८ में वन्दरों का निर्यात वन्द कर दिया था, किन्तु हाल में लंगूरों की एक प्रजाति को संकटापन्न प्राणियों की सूची के परिशिष्ट दो में सूचीवद्ध करना सन्देह उत्पन्न करता है, ज्ञातव्य हो कि सिटेस (कन्वेन्शन आन इण्टर नेशनल ट्रेड इन एन्डेन्जर्ड स्पीशीज (के परिशिष्ट एक में जानवरों के आयात में ज्यादा अड़चनें नहीं है, सव कुछ निर्यातक देश की मर्जी पर निर्भर करता है, दूसरी और परिशिष्ट एक के जानवरों का आयतक देश से भी परमिट लेना आवश्यक है, क्या वन्दरों के वाद लगूरों पर भी गाज गिरने वाली है?

यह तो रही वैज्ञानिक अनुसंधान में लगी प्रयोगशालाओं और अस्पतालों में जानवरों पर होने वाले नियोजित अत्याचारों की एक झलक, हमारी शिक्षा संस्थाओं के वैज्ञानिक संकायों में मेढ़कों, चूहों, कवूतरों, गिलहरियां का अन्तःच्छेदन किया जाता है ज्यादातर संज्ञाशून्य करके और कुछक वार लापरवाही के चलते अच्छी तरह उन्हें वेहोश किये विना ही उन छुरी कैंची चला दी जाती है, कभी-कभी वे अन्तःच्छेदन के दौरान ही चैतन्य हो उठते है। आज गांवों तक में हाई स्कूल स्तर के विज्ञान का पाठ पढ़ाने वाले स्कूलों के भी अपनी जानवर खोजी दस्ते (एनिमल केचर्स) हैं, जो प्रायः काफी ऊँचे दामों २० या २५ रूपया प्रति मेढ़क और इम्तहान के दिनों में मुहँमांगा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कीमत पर मेंढ़कों की कालाबाजारी करते हैं, वे ताल, तलैयों पोखरों से मेंढ़कों को बीनते चले जाते हैं। ग्रामीण अंचलों के बड़े (राना जाति) के मेंढ़क लुप्त होते जाने का दोष शिक्षण संस्थाओं पर भी है वैज्ञानिक शिक्षण के लिए जीवन्त माडलों की पेशकश की जानी चाहिए, आज तकनीकी क्रान्ति के इस युग में यह बहुत आसान है, बस इस दिशा में पहल नही हुई है और करोड़ों बेकसूर जानवर हर साल बे मौत मारे जाते हैं।

वैज्ञानिक जगत में थैलिडोमाइड़ काण्ड भी अभी पुराना नहीं हुआ है यह औषधि जानवरों पर प्रयोग की गई और इसे मानव उपयोग के लिए निरापद पाया गया, इसके बाद इसे तनावग्रस्त अनिद्राग्रस्त गर्भवती महिलाओं को दिया गया और अगले साल ही दस हजार हाथ पैर विहीन पशुओं ने जन्म लिया बहुत से बच्चे जन्म लेते ही मर गए शेष की जिन्दगी मौत से बदतर सिद्ध हुई, (राजेन्द्र कमार राय) विज्ञान प्रगति १९९०)

विश्व के कई प्रसिद्ध वैज्ञानिक (लैम्सन टैंट ब्रिटेन) आज इस मुद्दे पर एकमत नहीं हो रहे हैं कि प्रयोगों में अकारण ही जिन जानवरों की जाने जा रही हैं बिना उनके वध के भी बखूबी सम्पन्न किये जा सकते हैं, और अब तो वैज्ञानिकों के हाथ टिशु कल्चर क्लोनिंग (ऊतक संवर्द्धन) जैसी अभिनव प्राविधियां लग चुकी हैं जिनमें किसी खून खराबे की आवश्यकता नहीं है, सीधे मानव कोशिकाओं को संवर्द्धित करके उन पर मनमाने प्रयोग परीक्षण किए जा सकते हैं, इन्सुलिन प्राप्ति के लिए अब गौ-वध की आवश्यकता नहीं है, प्रयोगशालाओं में जीवाणुओं की फौज टनों इन्सुलिन तैयार करने में समर्थ हो चुकी है तो फिर हम जीव जंतुओं की जानों के पीछे हाथ धोकर क्यों पड़े हैं ? आवश्यकता है दृष्टिकोण परिवर्तन की, प्रयोगशालाएं बूचड़खाने बन गई हैं. टिशुकल्चर प्राद्योगिकी अपेक्षाकृत सस्ती है आवश्यकता है इसे बड़े स्तर पर अपनाने की । अपने देश में प्रत्येक जन्तु परीक्षण की प्रयोगशाला में टिशुकल्चर कक्ष की अनिवार्यता होनी चाहिए इससे करोड़ो जीव जन्तुओं की जान बचेगी और परीक्षणओं के नतीजे असंदिग्ध होगे इस प्रकरण पर व्यापक विचार विमर्श आवश्यक है।

आज कम्प्यूटरों का प्रयोग इस क्षेत्र में अधिक से अधिक होना चाहिए। प्लास्टर आफ पेरिस के माड़लों द्वारा हाईस्कूल एवं इण्टर के छात्रों को जीवोच्छेदन समझाया जाना चाहिए। पशुओं के प्रति करूणा रखते हुए ही वैज्ञानिक अनुसंधान होने चाहिए।

✤✤✤

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्यावरण संरक्षण एवं जैन दृष्टि

- डॉ० नलिन के० शास्त्री
रीडर (वनस्पति-विज्ञान विभाग)
ए-११, मगध वि० विद्यालय परिसर
बोध गया, (बिहार)

(शोधं-पत्र-सार)

पर्यावरणीय संरक्षण के मूलभूत तत्व जैन परम्परा के विभिन्न स्रोतों में समय-समय पर अनुगुंजित होते रहे हैं, किन्तु भारतीय परिदृश्य में यह चेतना पश्चिम में आये पर्यावरणीय संकट से ज्यादा अनुप्राणित रही है। इस सन्दर्भ में जब हम पर्यावरण के विभिन्न घट कों को विश्लेषित करते हैं तो मुख्य रूप से पाते हैं कि जनसंख्या का विस्फोट सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि संसाधनों का अपघटन इस कारण तेजी से हो रहा है। भारत की जनसंख्या लगभग ९१ करोड़ पहुँच चुकी है। यह वृद्धि (J) आकृति के ग्राफ द्वारा आसन्न खतरों को रेखांकित करती है। हमारे आचार्यों ने संयम तथा कुशील-त्याग के विधायक प्रयोग से जनसंख्या के अहिंसक नियन्त्रण तथा एड्स जैसे खतरनाक वीमारियों से वचाव का अमोघ अस्त्र हमें प्रदान किया है।

संसाधनों की हम जव चर्चा करते हैं तो पारिस्थितिक तंत्र के दो महत्वपूर्ण घटक जैविक एवं अजैविक तत्वों द्वारा उपलब्ध कराये जा रहे संसाधनों के परिज्ञान से होती है जैविक संसाधन, पेड़-पौधों एवं जन्तुओं द्वारा निर्मित होते हैं। तेजी से अनुपलब्ध होती विभन्न प्रजातियाँ, चाहे वे कृषि या उद्योग या वाणिज्य के कारण हों, चिन्ता का विषय हैं। जैवकि वैविध्य का पारिस्थितियों तंत्र में वना रहना धारणीय विकास की आवश्यक शर्त है। जैनाचार्यों द्वारा 'परस्परोपग्रहो जीवानाम' का घोष, अहिंसा के सिद्धान्तों की व्याख्या तथा शाकाहार की वुनियादी पकड़ जैविक वैविध्य को स्थापित करा सकती है तथा हिंसा की अनावश्यक संस्कृति को रोक सकती है। इन्हीं अवधारणाओं को वल मिल सके तो तेजी से घट रहे वनावरण, जो अव, लगभग घट कर २३ प्रतिशत हो चुका है, वच सकता है। जैन दृष्टि ने पेड़-पौधों को कल्पवृक्षीय अवधारणाओं से जोड़ कर तथा तीर्थंकरों के चिन्हों के रूप पहचान करा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर संरक्षण की अवधारणा को वल दिया है।

इसी प्रकार अजैविक तत्त्वों में जल संसाधन, वायवीय संसाधन, भूमि-सम्पदा संसाधन आदि के क्षय एवं उसके संरक्षण से सम्बद्ध चिन्तन है आलोचना पाठ में संदर्भित नदियन वीच चीर धुआए ... जल संसाधनों का प्रदूषण के विषय में सार्थक चिन्तन को रेखांकित करती है। परिग्रह प्रमाण के व्रत तथा अन्य व्रतों की अवधारणा संसाधनों के संरक्षण के लिये आचार्यों की जागरूकता से प्रमाणित करनी हैं।

धारणीय विकास को अक्षुण्ण रखने के लिए एक एल.ई.टी माडल प्रस्तावित किया जाता है अर्थात Ethics (नीति-शास्त्र) यह दिशा देगा कि Life Style (जीवन शैली) कैसी हो तथा इसके अनुरूप मानवीय चेहरे की तकनीक का चयन सम्भव हो सकेगा।

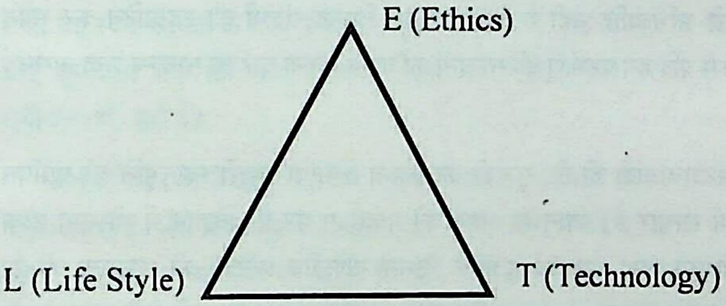

नीतिशास्त्र के नियामक तत्त्व हमें आगमिक दृष्टि से प्राप्त होंगे और तदनन्तर तकनीक का चयन करने में हम अधिक जागरूक हो सकेंगे।

✤✤✤

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनेकान्त : एक वैज्ञानिक दृष्टि

- पं० निहालचंद जैन
शासकीय उ० मा० विद्यालय
क्रमांक-३ के सामने, वीना (सागर)

वस्तु वहुआयामी है। कोई वस्तु निरपेक्ष नहीं है। वह अनेक विरोधी धर्मों का समूह रूप है। वस्तु जो भी हो वह सम्बन्धों की एक अमराई है। भाषा उस वस्तु के केवल एक आयाम, गुण या संदर्भ को ही व्यक्त कर सकती है। हमारी पास भाषा की ऐसी अभिव्यक्ति नहीं है कि एक साथ विरूद्ध संदर्भों को उद्घाटित कर सके। विज्ञान में यदि हम परमाणु की संरचना का वर्णन करना चाहें तो सामान्य शव्द असमर्थ हैं।

अध्यात्मवादी डी.टी. मुजर्की का कहना है भाषा हमारी स्वानुभूति को संप्रेषित करने में लाचार है। स्वानुभव भाषा की पकड़ से परे हैं। विज्ञान में भी ऐसा होता है। जव-जव शव्द असमर्थ हुआ है, उसने गणितीय प्रतीकों की सहायता ली है। अनेकांतात्मक वस्तु के स्वरूप को वताने में स्याद्वाद - भाषा की इसी व्यवस्था का एक समाधान है।

वस्तु को जव भी समझना है तो उसकी अस्मिता या व्यक्तित्व को जानना होता है और वह ४ संदर्भों को ध्यान में रखकर ही समझा जाता है। वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव (देश)।

जैन संस्कृति के एकांगिक दृष्टियों का निराकरण करने, विविध और परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली मान्यताओं का समन्वय करने, सत्य का शोध करने या चिन्तन के विविध पक्षों को मुक्तमाला के समान एक सूत्र में निवद्ध करने के लिये अनेकांत स्याद्वाद की स्वीकृति आवश्यक है।

भौतिक वेत्ता अल्वर्ट आइन्स्टीन (१९०५-१९१९) के स्पेशल थ्योरी आफ रिलेटिविटी तथा जैन दर्शन के अनेकांतवाद में कोई फर्क नहीं है।

आइन्स्टीन की यह घोषणा - " One thing may be true but may not be

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

real true. We can only know the relative truth, The absolute truth is known only by The universal observer." हम केवल सापेक्ष सत्य को ही जान सकते हैं, निरपेक्ष सत्य को सर्वज्ञ ही जान सकता है।

क्या अल्वर्ट आइन्स्टीन की उक्त घोपणा जैन धर्म की घोषणा नही है? आइन्स्टीन सत्य को दो संदर्भों में लेता है। एक सापेक्ष सत्य और दूसरा नित्य सत्य। जैन दर्शन का अनेकांत वाद भी सापेक्ष सत्य पर आधारित है।

आइन्स्टीन इस को एक सटीक उदाहरण द्वारा प्रस्तुत करता है। अचल विद्युत (चार्ज) के आसपास कोई चुवंकीय क्षेत्र नहीं होता जवकि चल विद्युत के आसपास चुम्वकीय क्षेत्र होता है। किसी सुदूर ग्रह पर एक वैज्ञानिक बैठा है और पृथ्वी पर रखे आवेश पर प्रयोग कर रहा है। पृथ्वी गतिमान है, अतः वह देखता है कि आवेश के आसपास चुम्बकीय क्षेत्र है। जव वह पृथ्वी पर उतर कर यह अध्ययन करता है तो वह स्वयं आवेश के साथ पृथ्वी पर घूम रहा है। अतः उस आवेश के आसपास कोई चुम्वकीय क्षेत्र नहीं पाता है। अतः विज्ञान के सभी निष्कर्ष सापेक्ष होकर ही समीचीन हो पाते हैं।

रिलेटिविटी किसी वस्तु में स्थित परस्पर विरोधी स्थितियों को जानने के लिये वहुत जरूरी है। जैसे क्रोध बुरा है। लेकिन कव ? जव यह अपनी बुराई पर न करके वाहरी वस्तुओं या व्यक्तियों पर करते हैं। यदि वही क्रोध अपने अज्ञान के विनाश हेतु करें तो ऐसा क्रोध कल्याणकारी वन सकता है। पेड़ की जड़ विरोधी दशा में जाकर ही उसे आकाश में ऊपर उठाने में मदद करती है। दो विरोधी तलों के कारण समतल का अस्तित्व है। हाथ की चार अंगुलियाँ एवं अंगूठे की विरोधी दिशाएं व दशायें हाथ में शक्ति लाती है।

अनेकांत का अर्थ है जीवन के सब पहलुओं की एक साथ स्वीकृति । अनुभव के अनंतकोण है। प्रत्येक कोण पर खड़ा हुआ आदमी सही है। लेकिन भूल वहीं हो जाती है जब वह अपने कोण को ही सर्वग्राही बनाना चाहता है। विजली का वल्व जला हुआ है उसे बुझाना है। एक व्यक्ति डन्डे से बल्ब फोड़ कर बुझा देता है, दूसरा कैची से वायर काटकर उसे बुझा देता है, तीसरा बटन दबाकर वुझा देता है, कभी बिजली गुल हो जाने से भी वल्व बुझा हुआ पाया जाता है। प्रत्येक की दृष्टि दूसरे की दृष्टि से विरोध में हैं, लेकिन महावीर स्वामी कहते हैं कि विरोधी दृष्टि है ही नहीं। सव एक दूसरे के परिपूरक है। हमारी सीमित दृष्टि उसमें विरोधाभाप देखती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सापेक्षता सिद्धान्त के पूर्व पदार्थ (metter) और ऊर्जा (Energy) दो विभिन्न द्रव्य (antities) माने जाते रहे। साथ ही यह धारणा थी कि न तो पदार्थ को ऊर्जा में वदला जा सकता है और न ही ऊर्जा को पदार्थ में लेकिन अव स्पेशल थ्योरी आप रिलेटिविटी के द्रव्यमान ऊर्जा सूत्र $E=mc^2$ के अनुसार यह रूपान्तर संभव हो गया। एक किलोग्राम पदार्थ से $9X10^{16}$ जूल ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। जैन दर्शन की यह मान्यता सापेक्षवाद के सिद्धान्त के पूर्व से ही थी। वह पदार्थ और ऊर्जा दोनों को पुदगल का पर्याय मानता है।

महावीर एक संभावनाओं के पुंज के रूप में माने जा सकते हैं। महावीर का दर्शन संभावनाओं का प्रतिफल है। संभावनाओं को ही सारे शास्त्र और ज्ञान संबोधित हैं। जो निरपेक्ष और अंतिम है, वह महावीर हो गया है। वीतराग मूर्तियां क्या हैं ? वहां भौतिक रूप गौण वन गया। मूर्तियां क्या हैं ? वहां भौतिक रूप गौण वन गया। मूर्तियाँ में अनेकांत की धारणा का कला में वितरण हो जाता है। ये मन्दिर, ये मूर्ति, ऊंकार आदि प्रतीक चिन्ह जीवन संभावनाओं के ही रूप हैं।

आइन्स्टीन के सापेक्षवाद ने निरपेक्ष को मान्यता नहीं दी। उन्होंने वस्तु की संहति, लम्वाई चौड़ाई रूप क्षेत्र को, उसके अवन्धित समय को तथा अवगाह रूप जुड़े स्पेस या आंतरिक्ष आयाम को भी निरपेक्ष आयाम को भी निरपेक्ष नहीं है, सिद्ध किया। उन्होंने कहा कि इनमें वेग के कारण तथा संदर्भ भेद के कारण अन्तर आ जाता है। जैसे प्रकाश वेग से गतिशील वस्तु की लम्वाई विरामावस्था की वस्तु की लम्वाई से कम हो जाती है। यदि घट नाएं एक साथ घटित हो लेकिन एक उसे प्रकाश वेग से गतिमान रकिट में वैठकर देखी जाएं और दूसरा स्थिर अवस्था में रहकर देखे तो दोनों अवलोकन कर्ताओं को वे अलग-अलग समय की दो घटनायें प्रतीत होंगी।

अन्तर्नक्षत्रीय यात्राओं के क्षेत्र में, गति की अवस्थाओं में देश के संकुचन एवं काल के प्रसारण के विचित्र परिणाम होते हैं। यदि हम पृथ्वी से प्रकाश वर्ष की दूरी पर एक नक्षत्र की यात्रा पर प्रकाश वेग से जाएं तो जाने न लौट ने में कम से कम १८ वर्ष लगेंगे। लेकिन यह हमारा केवल भ्रम है। क्योंकि यदि हम प्रकाश वेग से चलें तो हमारी घड़ियां, हृदय पिंड, श्वासोच्छवास रक्त परिवहन, पाचनक्रिया आदि सभी सत्तर हजार गुणन से मंद हो जायेंगे। और हमारा एक मिनट पृथ्वी वासियों के सत्तर हजार मिनट के वरावर होंगे। १८ वर्ष की पार्थिव अवधि हमारे लिये कुछ घंटों के वरावर होगी। यदि सुवह का नाश्ता लेकर हम वहां पहुँचे तव तक दोपहर को भूख लगेगी और वापस पृथ्वी लौटने तक रात का समय हो जायेगा। लेकिन यहां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचित्र बात घटेगी। पृथ्वी के १८ वर्ष व्यतीत हो चुके होंगे। संसार में बैठे परिवर्तन हो चुके होंगे। वह पुत्र जो १७ वर्ष छोटा था अपने पिता से एक वर्ष बड़ा हो जायेगा।

विज्ञान के इन तथ्यों से निरपेक्षवाद का खंडन होता है। इस प्रकार वस्तु की सर्वांगीणता, उसके विविध पक्षों और कोणों से ही देखने पर पायी जा सकती है। सर्वथा निरपेक्ष कुछ नहीं चल सकता। मनुष्य की इन्द्रियां भी उसकी बुद्धि, विवेक तथा भावना के सहारे चलती हैं।

जीवन व्यवहार जितना अधिक व्यापक दृष्टि कोण वाला होगा या अनेकांत दृष्टि वाला, वह उतना ही सफल होगा।

"एकान्तधर्मभिनिवेशमूला,
रागदयोग कृतिजा जनानाम् ।
एकान्तहानाच्च यमदेव,
स्वाभाविकत्वाच्च सम् मनस्ते ।।५।।
(समन्त भद्रस्वामी युक्त्यनुशासन में)

एकांत आग्रह से एकांती को अंहकार हो जाता है, उसके अहंकार से रागद्वेष और पूर्वाग्रह हो जाते है, जिससे वस्तु स्वरूप का यथार्थ दर्शन नहीं हो पाताप अनेकांती को न अहंकार पैदा होता है न रागादि विचाराभाव। जिसे वह अंतधर्मा वस्तु का सम्यक दर्शन करता है।

अनेकांत के पथ पर चलकर अंहिसा की साधना सहिष्णु बनती है। वह सह अस्तित्व की पक्षधर होती है। वह अंहकार छोड़ने के लिये राजी हो जाता है। वह ऐसा कुछ नहीं करना चाहता कि आपकी हस्ती मिटे और आप भी ऐसा कुछ न करें कि स्वयं मिट जाएं। भगवान महावीर अच्छी तरह से जानते थे कि मनुष्य का अंहकार अहिंसा का रास्ता रोक लेगा इसलिये उन्होंने अनेकातरूपी राडार मनुष्यों के हाथ थमाया। अनेकांत का सर्वोपरि महत्व इसी से लक्षित होता है कि इसके बिना अहिंसा भी पंगु है। अहिंसा महज जीव हत्या का परहेज करके चुप नहीं बैठ ता। हमारी रसोई घर की अहिंसा, मन्दिर की अर्चना, दान धर्म की करूणा, अहिंसा की सार्वभौमिकता को आगे नहीं बढ़ा सकता। यह तो केवल अनेकांत ही कर सकता है।

यदि हमें राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाना है। भावात्मक एकता को मजबूत करना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, विश्व समस्याओं का एक सम्मत समाधान खोजना है, जिससे संघर्ष और रक्तपात रूक सके तथा विश्व के राष्ट्र युद्धों की विभीषिकाओं से निजात पा सके, तो हमें शलाका पुरूष भगवान महावीर के अनेकांत को अंगीकार करना होगा।

एक वैचारिकक्रान्ति के द्वार पर बैठे सजग प्रहरी की भांति है यह अनेकांत। जिसमें समाजवादी समाज रचना तथा धर्म निरपेक्षता की भावना विद्यमान है। अनेकांत के गवाक्षों से प्रत्येक व्यक्ति व प्रत्येक सम्प्रदाय सत्य के द्वार खोल कर मानवता को गौरवान्वित कर सकता है।

सत्य दर्शन के तीन रास्ते हो सकते हैं।

१. स्यात् है (२) स्यात् नहीं है ३. स्यात् नहीं भी और है भी। यह त्रिभंगी के नाम से जाना जाता है। जो महावीर स्वामी के पूर्व से था। महावीर ने इसे सप्तभंगी किया। उन्होंने कहा अव तीन से काम नहीं चलेगा। सत्य वड़ा जटिल है जैसे कोई कहता है घड़ा है लेकिन दूसरी संभावना है कि यह मिट्टी है। तीसरी संभावना कि यह घड़ा नहीं मिट्टी है। भगवान महावीर ने इसमें चौथी भंगी जोड़ी-स्यात् अनिर्वचनीय है। कुछ ऐसा भी है जो कहा नहीं जा सकता। घड़ा अणु भी है परमाणु भी, इलेक्ट्रान भी है, प्रोटोन विद्युत भी है सव कुछ है। और इन सवको इकट्ठा कहना वड़ा मुश्किल है। घड़े में जो अस्तित्व का होना है वह अनिर्वचनीय है। पांचवा-स्यात् है और अनिर्वचनीय है। छठा-स्यात् न हीं है और अनिर्वचनीय। उप-निषद कहते हैं व्रह्मा की व्याख्या नहीं हो सकती। वाइविल कहती है कि ईश्वर की व्याख्या नहीं हो सकती। महावीर कहते हैं ईश्वर या व्रह्मा तो वड़ी वात है, घड़े की भी व्याख्या नहीं हो सकती। स्यात् शव्द में कोई दावा नहीं। कोई आग्रह नहीं । कोई आग्रह नहीं। अतः यह स्यात् की भाषा रोज-व-रोज महत्वपूर्ण होती चली जा रही है।

अव तक यह समझा जाता था कि अणु एक विन्दु है जिसकी लम्वाई चौड़ाई नहीं होती लेकिन प्रयोगों द्वारा पता चला कि यह अणु कभी विन्दु की तरह व्यवहार करता है तो कभी तरंग की तरह। अणु कण भी है और यह लहर भी है। इसलिये आइन्स्टीन को एक नया शव्द (क्वांटा) खोजना पड़ा। क्वांटा का मतलव है जो परम अणु कण भी है और लहर भी, उन्होंने कहा कि दोनों संभावनाएं एक साथ हैं। एक नये वैज्ञानिक विचारक्रांति के वाद जो कल एक निरपेक्ष सत्य का दावा करती थीं वे सभी मान्यताएं डगमगा गयीं। विज्ञान अव सापेक्ष के भवन पर खड़ा हो गया है। अतः इस वैज्ञानिक संदर्भ में महावीर स्वामी की स्यात् की भाषा परम सार्थक हो गयी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भौतिक जगत में सापेक्षता का संबल पकड़कर आज का वैज्ञानिक मानव चांद देख आया और मंगल पर जाने के प्रयास में है। मैं नहीं सोच पा रहा हूँ वहीं आत्म जगत में इतना पंगु कैसे रह गया। आज क्यों अध्यात्म के क्षेत्र में इतने विवाद और वाद उठ खड़े हुए हैं ? हम क्यों अपने धर्म के ही वैचारिक द्वन्दों में झूलने लगे हैं। निश्चित ही हमारी एकांतिक दृष्टि या नए पक्ष व्यामोह इसके लिये उत्तरदायी हैं। हम "ही" पर ठहर गए हैं। हम कूटस्थ बन गए हैं। जबकि तथ्य यह है कि "एक" भी कूटस्थ नहीं है वह भी अनेक हो सकता है। क्योंकि वह एक कई एकांशों का बना है जैसे सफेद प्रकाश देखने में एक है परन्तु वह ७ रंगों के प्रकाश तरंगों का सम्मिलन है। इसी प्रकार चाहे चेतन तत्व हो या जड़ पदार्थ उसे शब्दों की परिभाषा में कैसे बांध सकते हैं। जैसे चेतन आत्मा कर्मों का कर्ता भी और अकर्ता भी। वह भोक्ता है और अभोक्ता भी। वह कर्तव्य बुद्धि वाला है तथा अकर्तव्य भी। वह साकार भी और निराकार भी। परन्तु वह कब कैसा है। इसमें नये सापेक्ष लेना होगा। निरपेक्ष रूप वह अनिर्वचनीय है। जैसे गन्ने में रस होता है, किन्तु छिलके के संयोग से वह देखने में नहीं आता। इसी प्रकार आत्मा पुद्गल कर्म के संयोगावस्था में रागद्वेष और अज्ञान के विकारी भाव हैं वे वर्तमान में एक एक समय मात्र है और अंतरंग में अखण्ड अविकारी ध्रुव है। भेद लक्ष से रागमय है परन्तु अखंडगुण के लक्ष से राग से अलिप्त है। ऐसी दृष्टि अनेकांत की देन है। जिसका आश्रय लेकर ही अभिव्यक्ति फलती फूलती है। अनेकांत दर्पण में ही वस्तु स्वरूप सर्वांग झलक सकता है। स्याद्वाद और अनेकांत के आलोक में ही जैन दर्शन/धर्म विश्व धर्म की संज्ञा को प्राप्त कर सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन आहार की वैज्ञानिकता

निर्मल जैन
सुषमा प्रेस, सतना

जैन आहार विज्ञान

जैन धर्मानुयाइयों के लिये जिस प्रकार के आहार का विधान किया गया है, वह पूर्णतः वैज्ञानिक है। उसमें अहिंसा को तो प्रधानता है ही क्योंकि अहिंसा के बिना तो जैनधर्म या जैन दर्शन की कल्पना ही नहीं की सकती। परन्तु साथ ही जैनाचार्यों ने यह भी ध्यान रखा है कि वह आहार स्वास्थ्य रक्षक एवं स्वास्थ्यवर्धक हो।

जैनाचार्यों ने आहार विज्ञान में केवल खाने योग्य वस्तुओं का ही विधान नहीं किया वरन वैज्ञानिक आधार पर यह भी निर्धारण कर दिया कि आहार कब किया जाए, किस प्रकार किया जाए, शरीर और स्थान शुद्धि कैसी हो तथा कौन सी वस्तु कैसी और कब तक उपयोग में लाई जाये।

जैन श्रावक को प्रारम्भ में ही आठ मूलगुणों के पालन की बात कहते समय कुछ वस्तुओं के न खाने का निर्देश दिया जाता है। आचार्य समंतभद्रस्वामी ने श्रावक के आठ मूलगुणों का वर्णन करते हुए "रत्नकरण्ड श्रावकाचार" में कहा -

मद्यमांसमुधत्यागै : सहाणुव्रत पंचकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गहिणां श्रमणोत्तमा ।।६६।।

अर्थात् मद्य, मांस मधु के त्याग के साथ पांच अणुव्रतों के पालन को श्रावक के मूलगुण कहते हैं।

इसमें आचार्य महाराज ने पांच अणुव्रतों से भी पहले मद्य-मांस मधु के त्याग की बात कही है। अन्यत्र अन्य आचार्यों ने इन मूलगुणओं में रात्रि भोजन त्याग, पंच उदम्बर फल का त्याग तथा पानी छानकर पीने के नियमों को भी सम्मिलित किया है।

जहां तक मद्य (शराब) एवं मांस के त्याग की बात है यह त्रस जीवों की हिंसा के विना उत्पन्न नहीं होते अतः ये घोर पाप का कारण तो हैं ही साथ ही अनेक कारणों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से आज दुनियां के आहार विज्ञानी भी इन्हें छोड़ने की वात कह रहे हैं। यह सर्वमान्य तथ्य के रूप में स्वीकार किया जा चुका है कि मांस एवं शराव के उत्पादन से पर्यावरण प्रदूषित होता है और इनके सेवन से मनुष्य अनेक प्रकार की वीमारियों का शिकार होता है।

मधु (शहद) को यद्यपि शरीर विज्ञानियों ने शरीर के लिये हानिकारक नहीं माना है फिर भी तथ्य यह है कि शहद मधु मक्खियों का जूठ न होने से अपवित्र तो है ही, क्योंकि मधु मक्खियों फूलों का रस चूसकर फिर उसे वमन करके अपने छत्ते में मधु एकत्रित करती हैं। साथ ही मधु एक हिंसाजन्य पदार्थ है क्योंकि मधु निकालने वाले जव छत्ते को तोड़ते हैं तो उसमें रहने वाली मधु मक्खियों एवं अन्य जीवों का घात होता है। मधु में स्वयमेव भी निरंतर सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। पं० आशाधरजी "सागर धर्मामृत में लिखते हैं।

मधुकृदव्रातघातोत्थं मध्वशुच्यपि बिन्दुश :।
खादन् बध्नात्यघं सप्तग्रामदाहांप्तसो धिकम् ।।११।।

अर्थात् प्राणियों के समूह के नाश से उत्पन्न होने वाले अपवित्र मधु को बिन्दु प्रमाण भी खाने वाला मानव सात ग्रामों के जलाने वाले पाप से अधिक पाप को बांधता है।

रात्रि भोजन त्याग -

रात्रि भोजन के त्याग की बात भी आज के विज्ञान की कसौटी पर खरी उतरती है। च्रिकित्सा विज्ञानी यह मानते हैं कि रात्रि विश्राम से चार घंटे पूर्व भोजन पान बंद कर देना चाहिये। उनका मानना है कि नींद आ जाने के बाद पाचन क्रिया पूर्णतः वंद हो जाती है, जवकि आमाशय में भोजन को पचाने के लिये सात्विक भोजन के लिये ४ घंटे व गरिष्ठ भोजन के लिये ६ से ८ घंटे तक पाचन क्रिया चलना चाहिये।

एक वैज्ञानिक तथ्य यह भी है कि दिन में वायुमण्डल अधिक आक्सीजनयुक्त होने के कारण स्वास्थ के लिये अनुकूल होता है अतः अनुकूल एवं शुद्ध वायुमण्डल के प्रभाव में ही भोजनादि करना चाहियें। यह भी सर्वमान्य तथ्य है कि सूर्य की रोशनी में सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति कम होती है तथा सूर्यास्त के बाद वह बढ़ जाती है। रात्रि में उत्पन्न होनेवाले विषाक्त कीड़े मकोड़े यदि भोजन में पड़ जायें तो फूड़पायजिनिंग की घटनायें भी हो जाती हैं जिससे मृत्यु भी हो सकती है।

प्रश्नोत्तर श्रावकाचार ग्रंथ में आचार्य सकलकीर्ति स्वामी ने रात्रि भोजन से होने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाले अनेक दोषों की चर्चा करने बाद लिखा है।

इत्येवं दोष संयुक्तं त्याज्यं सम्भोजनं निशि ।
विषान्नमिव निःशेषं पापभीतैर्नरैः सदा ।।२२ ८१।।

अर्थात् पापों से डरने वाले मनुष्यों को अनेक दोषों से भरे हुए रात्रि भोजन को विष मिले हुए अन्न के समान सदा के लिये अवश्य त्याग कर देना चाहिये।

जैन शास्त्रकारों ने रात्रि भोजन को अत्यधिक पाप का कारण मानते हुए जगह-जगह उसके त्याग की बात कही ही है। वैदिक ग्रंथों में भी रात्रि भोजन का निषेध किया गया है। मार्कण्डेय पुराण में तो यहां तक लिख दिया गया कि-

अस्तंगते दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते ।
अन्नं मांससमं प्रोक्तं, मार्कण्डेय महर्षिणा ।।

अर्थात् सूर्यास्त के बाद जल रुधिर के समान और अन्न मांस के समान हो जाता है। ऐसा महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं।

महाभारत का वह श्लोक भी अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसमें कहा गया है -

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कन्द भक्षणम् ।
ये कुर्वन्ति वृथा, तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः ।।

अर्थात् जो मद्यपान करते हैं, मांस खाते हैं, रात्रि में भोजन करते हैं, कंद भक्षण करते हैं उनकी तीर्थयात्रा और जप तप सब व्यर्थ हो जाते हैं।

हम देखें कि महाभारत के रचियता महर्षि व्यास की यह अवधारणा जैन आहार की आचार संहिता से कितनी मिलती जुलती है।

पंच उदम्बर फल -

पंच उदम्बर फल का अर्थ है बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर (अंजीर) एवं पाकर। इन फलों का विकास सूक्ष्म कीटों के द्वारा होता है, इनमें मुख्य कीट ततैया है जो प्रायः फल तोड़ने पर उड़ने भी लगते हैं।

वनस्पति विज्ञान का मानना है कि इस जाति के फलों में जो प्रायः फूल जैसे होते हैं, पहले मादा कीट ऊपरी छिद्र द्वारा अंदर प्रवेश करती है वहां उन्हें अण्डे देने के लिये सुरक्षित जगह मिल जाती है और फल के चारों ओर चिपके नर कीटों के संसर्ग से वहां अनगिनत अण्डे वह रख देती हैं जिनसे असंख्यात जीव उत्पन्न होते रहते हैं, मरते भी रहते हैं। इनमें इल्लियां भी उत्पन्न होती हैं और संमूर्छन जीव भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार यह फल इन कीटों के कलेवर एवं जीवित कीट समुदाय के पुंज ही होते हैं। आयुर्वेद में उदम्बर फलों को जन्तुफल भी कहा गया है जो बहुत सटीक नाम है।

इस प्रकार ये उदम्बर फल असंख्य जीवों की हिंसा के कारण भी हैं और स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हानिकारक हैं। अतः इनके खाने का निषेध वैज्ञानिक भी है और धार्मिक दृष्टि से भी उचित है।

पानी छानकर पीना

पानी छानकर पीना/उपयोग में लाना जैनियों की प्रमुख पहचान है। जैन आहार विज्ञान का यह प्रमुख अंग है।

पानी में स्वाभाविक रूप से सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति निरंतर होती रहती है, प्राकृतिक रूप से बहते पानी में जितनी राशि होती है उससे कहीं अधिक ठहराव वाले पानी अर्थात् तालाब कुआं आदि के पानी में होती है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० जगदीशचंद बसु ने एक बूंद जल में ३६,४५० सूक्ष्म जीव यौगिक सूक्ष्मदर्शीय से देखे थे। जैन दार्शनिकों ने तो एक बूंद में असंख्यात जीवों की स्थिति मानी है। हमारे आचार्यों का कथन है कि यदि एक बूंद पानी के जीव कबूतर बनकर उड़ें तो उनसे पूरा जम्बूद्वीप भर जायेगा। अतः विनाछना पानी पीने में कितने जीवों का घात हो सकता है, इसका अंदाज लगाया जा सकता है।

आजकल कुछ लोग फिल्टर किये हुए पानी को छना पानी मानकर उसे कपड़े से छानने की आवश्यकता नहीं समझते। इस बात पर दो प्रकार से विचार किया जाना चाहिये। एक तो पानी साफ करने के लिए फिल्टर किया जाता है। फिल्टर करते समय पानी में रहने वाले जीवों को मारने/नष्ट करने का संकल्प होता है, उनकी रक्षा का नहीं। दूसरे बड़ी पानी की टंकियों में भरते समय भले ही पानी फिल्टर कर लिया जाय परंतु वे टंकिया तो सफाई न होने के कारण स्वंय अपने भीतर गंदगी और जीव राशि भरे रहती हैं।

जैन दार्शनिकों के द्वारा कही गई पानी छानने की बात के पीछे अहिंसा प्रमुख है। हमारा जियो और जीने दो का सिद्धान्त हर जगह काम करता है। पानी छानने में जीव रक्षा का भाव प्रमुख होने के कारण ही हमें जीवाणी को भी सावधानी पूर्वक यथास्थान पहुंचाने का आदेश दिया गया है। आज तो जो हम नल या हैण्डपंप से पानी छानते भी हैं उसमें पानी को जीव रहित करना ही उद्देश्य रह गया है। जीवों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की रक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं है।

विधिवत छाना गया पानी भी ४८ मिनिट तक ही पीने योग्य माना गया है, उपरान्त उसमें पुनः जीवों की उत्पत्ति होने लगती है। हां यदि पानी छानकर तुरन्त उवाल लिया जाय तो वह २४ घंटे के लिये सुरक्षित हो जाता है। उवला हुआ अर्थात प्रासुक पानी तो सर्वोत्तम है, वह स्वास्थ की सुरक्षा भी करता है, कई प्रकार की वीमारी के कीटाणुओं से वचाता है।

भक्ष्य अभक्ष्य विचार

जैन आहार विज्ञान को भली भांति समझकर यदि हम उसे अपने रसोईघर/भोजनकक्ष का पहरेदार वना लें तो हम वहुत सी अनावश्यक हिंसा से भी वच सकते हैं और अपने स्वास्थ्य के साथ भी न्याय कर सकते हैं। जैनाचार्यों ने वड़ी वारीकी से भक्ष्य अभक्ष्य का विचार किया है और प्रमुख रूप से २२ अभक्ष्य (न खाने योग्य) पदार्थों की सूची वनाई है -

ओला, घोरवड़ा, निशि-भोजन, वहुवीजा, बैंगन, संधान ।
बड़, पीपर, ऊमर, कठ-ऊमर, पाकर, फल जो होय अजान।
कन्दमूल, माटी, विष, आमिष, मधु, माखन अरू मदिरापान ।
फल अति तुच्छ, तुषार, चलित रस ये अभक्ष्य बाईस बखान ।

कहने को तो इसमें वाइस ही अभक्ष्य गिनाये गये हैं, परन्तु यदि हम सावधानी से देखेंगे तो वहुत सी हानिकारक चीजों के लिये हमारे रसोईघर के द्वार बन्द हो जायेंगे। ऊपर दूसरी पंक्ति में कहे गये पांच उदम्बर फलों की चर्चा तो हम पहले ही कर चुके हैं, पर इस पंक्ति में पांच फलों के नाम के बाद एक नाम और है जिसे फल जो होय अजान कहा गया है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण संकेत है, २२ अभक्ष्य में अजानफल की भी गिनती करके आचार्यों ने हमें कई तरफ से सुरक्षित कर दिया है। जिस फल के गुण दोषों का हमें ज्ञान न हो उसे नहीं खाना। इस प्रसंग में आचार्य कुंन्थुसागर जी द्वारा रचित "श्रावकधर्म प्रदीप" का यह श्लोक दृष्टव्य है -

यावद्येषां फलानां तु गुणधर्मो न ज्ञायते ।
न तावद् भक्षणं तेषां कार्य तत्वार्थवेदिभिः ।।१०७।।

अर्थात् जिस फल के विषय में यह भक्ष्य है या अभक्ष्य ऐसा निर्णय नहीं किया जा सकता, वह कभी भक्ष्य नहीं हो सकता। ज्ञानी पुरूष को वह कभी नहीं खाना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह अजान शब्द फल के अतिरिक्त अन्य वनस्पत्तियों तथा सभी प्रकार की भोज्य सामग्री में हमें लगाना चाहिये। यदि हम आचार्यों की यह सीख मानलें तो बाजार से आई तैयार भोज्य सामग्री का उपयोग तो हम कर ही नहीं पायेंगे। क्योंकि हमें न तो सही सही पता है कि उसमें क्या क्या पड़ा है और न ही यह ज्ञात है कि कैसी बनी है, उसके गुण दोष क्या हैं, मर्यादा क्या है। इस तरह अनजानी भोजन सामग्री को यदि हम भोजन कक्ष से निष्कासित कर सकेंगे तो शायद हमारे चौके-चूल्हे की पवित्रता/ पहचान पुनः लौट सकती है। और हम अनेक प्रकार की बीमारियों से बच सकते हैं। अन्यथा तो एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक के इस विचार को हम प्रमाणित कर रहे हैं कि-

"हम जो खाते हैं उसके एक तिहाई भाग से तो हम नीचे हैं
और दो तिहाई बाग से डाक्ट र-वैद्यों की आजीविका चलती है । "

कंदमूल -

ऊपर गिनाये गये २२ अभक्ष्य में एक कन्दमूल भी है। इस पर आजकल बहुत उपापोह होता है। अनेक प्रकार के कुतर्कों का सहारा लेकर कन्दमूल खाना उचित ठहराया जाता है, परन्तु सत्य तो हमेशा सत्य ही रहेगा। जैनाचार्यों का मानना है कि कन्दमूल अनंत जीवों का पिण्ड है। देखें प्रश्नोत्तर श्रावकाचार का यह श्लोक -

तिलमात्रसमे कन्दे चानन्तजीवस्थितिः ।
तस्य भक्षणतो भुक्ता : सर्वे जीवाः कुदृष्टिभिः ।।१८-१७।।

अर्थात् तिल के समान जरा से कन्दमूल में भी अनंत जीवों का निवास होता है इसलिये जो मिथ्यादृष्टि उस कंदमूल का भक्षण करते हैं वे उन सब जीवों को खा जाते हैं। आचार्य सकलकीर्ति ने इस श्लोक के माध्यम से कन्दमूल की स्थिति भी बताई और यह भी घोषित किया कि सम्यग्दृष्टि जीव कंदमूल नहीं खाते।

वनस्पति विज्ञान को जानने वालों का मानना है कि कन्दमूल जाति के पौधे मूल अर्थात् जड़ रूपी कन्द के रूप में अपनी भोजन सामग्री एकत्रित करते हैं और उसी पर जीवित रहते हैं। बल्कि बाह्य वातावरण के कारण ये पौधे यदि नष्ट भी हो जाये तो उस जड़ रूपी कन्द से दूसरे पौधे निकल आते हैं और यह क्रम चलता रहता है। परन्तु हम हैं कि अपनी स्वाद लोलुपता के कारण उन पौधों की पोषक सामग्री को उखाड़कर उसे अपनी भोजन सामग्री बना लेते हैं जिससे पौधा हमेशा के लिये मर जाता है। जब इतनी शाक-सब्जियां प्रकृति हमें उदारता पूर्वक दे रही है जिसे तोड़ने से पौधों का जीवन नष्ट नहीं होता तो फिर कन्दमूल उखाड़कर पौधों का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवन नष्ट करने का हमें क्या अधिकार है।

चलित रस

अभक्ष्य पदार्थों की सूची का अंतिम पदार्थ है चलित रस अर्थात् जिसका स्वाद विगड़ गया हो। यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि भोज्य पदार्थों का स्वाद विगड़ने का मतलव है उसमें जीवों की उत्पत्ति होना। इसका अर्थ यह हुआ कि हमें भक्ष्य पदार्थ भी मर्यादा के भीतर ही खाना चाहिये। मर्यादा समाप्त होने पर या स्वाद विगड़ने पर भक्ष्य पदार्थ भी अभक्ष्य माने जायेंगे। जैनाचार्यों ने इतनी गहरी सूझ-वूझ और छान-वीन के वाद आहार की आचार संहिता वनाई है कि उनके वैज्ञानिक दृष्टि कोण आज भी खंडित नहीं होते।

पांच प्रकार के अभक्ष्य

जैनाचार्यों ने पांच प्रकार के अभक्ष्यों का वर्णन किया है। देखें पं० आशाधरजी के प्रसिद्ध ग्रंथ सागार धर्मामृत का यह श्लोक -

पलमधुमद्यवदखिल त्रसवहुघात प्रमादविषयोऽर्थः।
त्याज्योऽन्यथाप्यनिष्टोऽनपसेव्यश्च व्रताद्धि फलामिष्टम् ।।१५-५।।

अर्थात् - मद्य, मांस, मधु के समान ही त्रसघात विषयक, वहुघात विषयक, प्रमाद विषयक वस्तुयें भी अभक्ष्य हैं और त्रसघात आदि विषयक न होने पर भी जो वस्तुयें अनिष्ट कारक हैं या अनिष्टकर न होकर भी जो अनुपसेव्य हैं ऐसे अभक्ष्य पदार्थों का त्याग कर देना चाहिये।

त्रसघात विषयक - उन्हें कहा गया है जिनके खाने से त्रस जीवों का घात होता है, जैसे कमलनाल, केतकी, नीम, अर्जुन, अरणी के फूल आदि।

वहुघात विषयक - उन्हें कहते हैं जिनके खाने से वहुत से स्थावर जीवों का घात होता है। जैसे -- कंदमूल, गुरवेल, लहसुन आदि।

प्रमाद विषयक - वे हैं जिनके सेवन से प्रमाद उत्पन्न होता है। जैसे भांग धतूरा आदि।

अनिष्ट कारक - उन्हें कहते हैं जो खाने योग्य होते हुए भी अपनी प्रकृति के अनुकूल नहीं हैं, नुकसान कर सकते हैं।

अनुपसेव्य - उन्हें कहते हैं जो जीवों के घात का कारण तो नहीं हैं परन्तु उत्तम पुरुषों के सेवन योग्य नहीं हैं। जैसे मूत्र आदि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरीर को स्वस्थ रखने के लिये अधिक भोजन या महंगा भोजन आवश्यक नहीं है। आहार जितना सात्विक एवं सीमित होगा वह उतना ही उपयोगी होगा। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है, तभी तो हृदयरोग, कैंसर जैसी अनेक घातक बीमारियों की रोकथाम के लिये शरीर विज्ञानी आजकल शाकाहार करने की सलाह देते हैं। परंतु शाकाहार को भी यदि हमने संतुलित नहीं बनाया तो उससे भी बीमारियां हो सकती हैं।

तन की भूख मिटाने के लिये संतुलित शाकाहार करेंगे तो हम पूरी उम्र स्वस्थ रहकर जी सकते हैं और यदि मन की भूख मिटाने के लिये चटपटे, गरिष्ठ, तामसिक आहार को अपनायेंगे तो औषधियां भी हमें बीमार होने से रोक नहीं पायेंगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन भौतिकी और नवीन भौतिकी

- डॉ० नन्द लाल जैन
निदेशक, जैन केन्द्र
८/६६२, बजरंग नगर, रीवां (म०प्र०)

आलेख-सार

प्रस्तुत आलेख तुलनात्मक समीक्षण के माध्यम से जैन शास्त्रों में वर्णित भौतिकी की वर्तमान स्थिति को मूल्यांकित करता है। जैनों की मान्यता है कि हमारा सजीव एवं पौद्गलिक जगत पांच अमूर्त तत्वों के ९० प्रतिशत विश्वसमुद्र में तैर रहा है। अंतर्दर्शिनी जैन दर्शन उपकरणदर्शनी भौतिकी की निरंतर विकाससानता एवं परिवर्तनीयता के कारण विभेदित माना जा सकता है। विज्ञान स्थूल से सूक्ष्म एवं सापेक्षता की ओर और जैन दर्शन अदृश्य एवं निरपेक्षता की ओर वर्धमान रहा है। फिर भी, विज्ञान अनेक क्षेत्रों में अंतर्दर्शन का पूरक और सहायक सिद्ध हुआ है। भौतिकी ने अब तक अपने विकास के तीन चरण पार किये हैं और अब यह ऐसे स्तर पर पहुँच रहा है जो इसे दर्शन में अन्तर्गर्भित करता जा रहा है।

जैन भौतिकी के अध्ययन से इसकी सैद्धान्तिक अवधारणाओं की ऐतिहासिक प्रबलता स्पष्ट होती है, पर इसके स्थूल जगत के विवरण प्रकृति निरीक्षण युग के हैं और आधुनिक दृष्टि से पर्याप्त अपूर्ण प्रतीत होते हैं। इनमें वर्गीकरण की प्रधानता अवश्य है।

इस आलेख में पदार्थ की परिभाषा, पदार्थ के गुण, परमाणुवाद, परमाणु-संयोजन, विश्व-विवेचन, अनेकान्तवाद एवं परासामान्य ज्ञान के शास्त्रीय विवेचन के आधार पर सारणी ३ एवं ४ के माध्यम से यह प्रदर्शित किया गया है कि जैन शास्त्रीय भौतिकी की अधिकांश मान्यतायें न्यूटनयुगीन (अठारहवीं सदी) भौतिकी से अधिक सादृश्य रखती हैं। वे नवीन भौतिकी से अधिकांश (१४ में से १०) बिंदुओं में मेल नहीं रखतीं। इसका कारण संभवतः अंतर्दर्शन में प्रायोगिकता का अभाव है। इसकी निरपेक्ष-स्वरूपता जैन भौतिकी को ऐतिहासिक बनाती है। यह मान्यता अनेकांत सिद्धान्त से मेल नहीं खाती।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन भौतिकी का अनेकांतवाद निश्चित रूप से वर्तमान सापेक्षतावाद का ईसापूर्वी रूप का गुणात्मक एव दार्शनिक विवेचन है जो अनेक अंशो में प्रयोग सिद्ध हुआ है। इसने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की प्रभावकता स्पष्ट की है। इसने प्रायोगिकता और भाषा की सीमा भी अनिश्चायकता सिद्धान्त के रूप में प्रकट की हैं। यह सिद्धान्त गणितीय रूप भी ले चुका है। भौतिकी का यही एक क्षेत्र है जहाँ दोनों भौतिकी एक-सी दिखती हैं। अन्य क्षेत्रों में जैन भौतिकी ने ऐतिहासिक मील के पत्थर का रूप पाया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आधुनिक विज्ञान एवं जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में प्रकृति की व्यवस्था

- डॉ० पारसमल अग्रवाल
उपाचार्य भौतिक विज्ञान अध्ययन शाला
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म०प्र०)

१. प्रस्तावना

इस लेख में चार महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया गया है। (१) पहला प्रश्न क्या विश्व में जो कुछ भी हो रहा है वह किसी नियमित व्यवस्था के अन्तर्गत हो रहा है या अव्यवस्थित ढंग से दुनिया चल रही है ? (२) दूसरा प्रश्न यदि दुनिया में सव कुछ व्यवस्थित रूप से हो रहा है तो इसकी व्यवस्था अपने आप हो रही है या कोई स्वतंत्र व्यवस्थापक अपनी मर्जी के अनुसार दुनियां को संचालित कर रहा है ? (३) तीसरा प्रश्न यह है कि हमारा जीवन मात्र रासायनिक (अचेतन) पदार्थों के कारण ही है या अविनाशी जीव द्रव्य का भी अस्तित्व है ? (४) चौथा प्रश्न जीव के क्रिया-कलाप के अनुसार जीव को सुख-दुख दायक सामग्री कैसे मिल सकती है।

क्या जिन माता पिता के यहां मैंने जन्म लिया, क्या वह महज संयोग मात्र है? या किसी विशिष्ट आत्मा की योजना का अंग है ? या मेरे द्वारा इस जन्म से पूर्व में किये गये कार्यों का प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार प्राप्त फल है। इस प्रकार के प्रश्नों का जैन दर्शन तथा आधुनिक वैज्ञानिकों के चिन्तन के सन्दर्भ में विश्लेपण प्रस्तुत है।

२. आधुनिक विज्ञान एवं प्रकृति की व्यवस्था

यदि आधुनिक विज्ञान की गहराई एवं सूक्ष्मता में जायें तो यह देखेंगे कि ब्रह्माण्ड का प्रत्येक कण प्रति क्षण अन्य समस्त कणों से प्राप्त सिगलन को ध्यान में रखते हुए ही अगला कदम रखता है। भौतिक विज्ञान की भापा में हैमिल्टन के गति के समीकरण या श्रोडिंगर के समयाश्रित तरंग समीकरण के अनुसार कणों की गति प्रति क्षण होती रहती है व गति की गणना में प्रत्येक कण पर अन्य समस्त कणों का प्रभाव प्रति क्षण पड़ता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार के समीकरणों द्वारा नयें रसायनों के बनने की प्रक्रिया पर लेखक की दिलचस्पी वहुत रही है व वहुत कुछ अनुसन्धान कार्य भी प्रकाशित किया है। इस प्रकार के अनुसंधान में लेखक ने यह देखा कि एक सेकेण्ड के करोड़ों के अरबवें भाग जितने समय में कणों के खिसकने के बाद प्रत्येक कण की ताजा स्थिति के अनुसार पुनः इतने ही सूक्ष्म समय में कणों के खिसकने की गणित करना होती है। अनेकों बार ऐसा करते-करते कणों के एक दूसरे के पास आकर दूर जाने पर यह पता चलता है कि नया रसायन बना है या नहीं बना है। जो विशेष दो वातें में कहना चाहता हूँ वे ये हैं कि (१) प्रत्येक बार प्रत्येक कण पर शेष अन्य कणों के प्रभाव की गणना करना होती है। व (२) इस प्रकार की गणित में इतने सूक्ष्म समय के अन्तरालों से गणना करने पर ही गणित के परिणाम प्रयोगशाला में प्राप्त परिणामों में मेल खाते हैं। (समान होते हैं) यदि एक करोड़वे के अरबवें भाग के समय को कदम माना जाये व ऐसे १०० कदम चलें तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक सेकेण्ड के करोड़वे के एक करोड़वे भाग समय में क्या हुआ है। इसकी गणना की है। इसी गणित में यदि हम समय इतना सूक्ष्म न लेकर एक करोड़वें सेकण्ड के दस करोड़वां भाग को एक कदम बनाकर दस कदम चलें तो यद्यपि दोनों गणनाओं में समान समय कणों को चलने के लिए मिला है किन्तु दोनों अवस्थाओं में अन्तिम परिणाम समान नहीं आते हैं। बड़े कदम से चलते हुए गणना करने पर जो गणित से परिणाम आते हैं वे प्रयोगशाला से प्राप्त परिणामों में मेल नहीं खाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रकृति के कण अत्यन्त २ छोटा कदम रखते हैं व हर कदम के बाद शेष अन्य कणों का प्रभाव अनुभव करके फिर नया कदम रखते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि हमें चाहे लगे कि दुनिया में कुछ का कुछ हो रहा है किन्तु वस्तुतः दुनियां की प्रत्येक क्रिया वहुत-२ सूक्ष्म नाप तौल के अनुसार निश्चित नियमों के अनुसार चल रही है।

प्रकृति की व्यवस्था को समझने के लिये एक उदाहरण लें। यदि एक कांच के गिलास को जमीन पर ऊपर से गिरा दें तो उस गिलास के सैकड़ों छोटे-वड़े कांच के टुकड़े कई दिशाओं में विखर जाते है। सामान्य मस्तिष्क यह सोच सकता है कि कांच के टुकड़े होने में एवं बिखंरने में कोई व्यवस्था नहीं है किन्तु आज के भौतिक वैज्ञानिक यह कहेंगे कि गिलास की वनावट, जमीन की वनावट, नीचे पटकने के कोण, ऊँचाई, गति आदि के आधार पर निश्चित भौतिक नियमों का पालन करते हुए ही गिलास के उचित संख्या में उचित आकारों के टुकड़े हुए हैं व उचित दिशाओं में उचित दूरी तक गये है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सारांश यह है कि इस सम्पूर्ण घटना में सम्पूर्ण विस्तार प्रकृति के निश्चित नियमों के अनुसार ही होता है.

३. आधुनिक विज्ञान एवं अविनाशी द्रव्य की अवस्थाओं में परिवर्तन

अनाज के वीज के एक दाने से सैकड़ों दानों का उत्पादन हम देखते हैं। इसको देखकर हमें भ्रम हो सकता है कि सृष्टि में किसी का भी उत्पादन विना विनाश व अविनाश के भी हो सकता है। यदि हम प्रत्येक उत्पादन एवं विनाश के पीछे ध्रुव या अविनाशीपन को भी समझलें तो सृष्टि के वैज्ञानिक रहस्य एवं आध्यात्मिक रहस्य में भेद बहुत कम रह जायेगा।

विज्ञान के अनुसार सभी भौतिक पदार्थ एवं रसायन-ऊर्जा के ही रूप है व ऊर्जा का कुल योग न तो कम होता है और न ही वढ़ता है। विज्ञान व प्रकाश से रसायन तथा ऊर्जा निकालकर अनाज के नये दानों के रूप में एकत्रित होते हैं। अनाज उत्पादन की इस क्रिया की गणित करें तो देखेंगे कि इस क्रिया में विभिन्न प्रकार की ऊर्जाओं के रूप बदले है किन्तु कुल ऊर्जा का माप नहीं वदला है। जैन द्रव्यानुयोग की भाषा में इस बात को यों कहा जायेगा कि पुद्गल परमाणुओं की संख्या नहीं बदली है किन्तु उनकी अवस्था (पर्याय) वदली है। इसी तथ्य को तत्त्वार्थसूत्र में निम्नांकित सूत्रों में कहा है -

सद्द्रव्य लक्षणम् ।।५-२९।।

४. आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार जीव भी एक अविनाशी वास्तविक पदार्थ

आत्मा की बात करते ही ऐसा लगता है कि हम आधुनिक विज्ञान से दूर चले गए हैं क्योंकि अब तक विज्ञान द्वारा आत्मा का अस्तित्व सिद्ध नहीं हुआ है। निर्विवाद रूप से आत्मा का अस्तित्व वैज्ञानिक प्रयागों द्वारा कव सिद्ध हो सकेगा। ? इस प्रश्न का उत्तर देना तभी संभव होगा जब वैज्ञानिक इसका गंभीरता से उत्तर ढूंढना प्रारम्भ करेंगे। व्यापारिक या सैनिक लाभ की दृष्टि से ही अधिकांश अनुसंधान वैज्ञानिक अब तक करते रहे हैं। इतना सब होते हुए भी कई नोबुल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों ने अपने स्वयं के चिन्तन अनुभव एवं तर्क के आधार पर आत्मा का अस्तित्व स्वीकार किया है।

अमरीका के डाक्टर जार्ज वाल्ड जिन्हें औषधि विज्ञान का १९६७ का नौबूल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरस्कार मिला है, उन प्रसिद्ध वैज्ञानिकों में से हैं जिन्होंने अविनाशी आत्मा के अस्तित्व को ठोस तर्को के आधार पर स्वीकारा है। कुछ वर्षों पूर्व उनका एक व्याख्यान प्रकाशित हुआ है लेख में उन्होंने भारतीय दर्शन में प्रचलित शब्द आत्मा के लिए किया है। ऐसा इस लेख के अंतिम परिच्छेद में लेखक ने द्रव्य बताया है। उन्होंने आत्मा को अविनाशी एवं शाश्वत् द्रव्य स्वीकारा है। इससे संवन्धित उनके कुछ तर्क उस लेख के निम्नांकित दो परिच्छेदों में स्पष्ट हो सकते हैं।

इस भाषण में दो समस्याओं पर मैंने प्रकाश डाला है। पहली यह कि हमारी यह सृष्टि ऐसी अनोखी है कि इसमें ऐसी समस्त विशेषताएं है जिनसे जीवधारियों की पालना संभव है, तथा दूसरी समस्या चेतना आत्मा की है जो कि क्षेत्र एवं समय से परे है व जिसका ठिकाना बताना संभव नहीं है।"

कुछ वर्षों पहले मुझे ऐसा लगा कि अत्यन्त पृथक लगने वाली ये दोनों समस्याएं समीप लाई जा सकती है। ऐसा करने के लिए एक नया सिद्धान्त मानना होगा। आत्मा इस सृष्टि में विकसित जीवधारियों की उत्पत्ति के बाद आया - ऐसी जो मेरी तब तक की धारणा रह चुकी थी - ऐसी आत्मा की उत्पत्ति की धारणा के विपरीत यह सिद्धान्त मानना होगा कि आत्मा तो जगत में सदैव ही रहा है व ऐसे आत्मा की शाश्वत उपस्थिति से ही जगत में जीवधारी बने हुए हैं।

आत्मा को अविनाशी वास्तविक पदार्थ के रूप में स्वाकीर करते हुए लेख में आगे उन्होंने इसके लिए शब्द का भी प्रयोग किया। औषध विज्ञान के नौबुल पुरस्कार विजेता इतना सब लिखते हुए यह भी लिखते है कि उन्होंने शुरू-२ में ऐसा लगा था कि उनकी ऐसी मान्यता से वे वैज्ञानिक जगत में उपहास के मात्र हो जायेंगे। किन्तु कुछ ही सप्ताहों बाद उन्होंने यह जानकर अच्छा लगा कि इस बात को न केवल हजारों वर्ष पुराने पूर्व दार्शनिकों ने स्वीकारी है। अपितु आज के महान भौतिक शास्त्रियों ने भी स्वीकारा है। आगे विस्तार करते हुए उन्होंने भौतिकी के दो नोबुल पुरस्कार विजेता श्राडिंगर तथा पाउली एवं महान् वैज्ञानिक एडिगटन के कथनों को भी उद्धृत किया जिनमें इन वैज्ञानिकों ने चेतन द्रव्य के अस्तित्व को स्वीकारा है।

साराशं यह है कि चेतना या जीव मात्र रासायनिक ऊर्जा न होकर पृथक से अविनाशी या शाश्वत द्रव्य है - ऐसी धारणा कई श्रेष्ठतम वैज्ञानिकों की रही है।

५. महज संयोग को मानने में कठिनाई

यदि प्रकृति में सव कुछ व्यवस्था के अनुसार ही होता है तो महज संयोग जैसी कोई वात हो ही नहीं सकती है। बोल-चाल की भाषा में चाहे हम कह दें कि एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिक्का उछालते हैं तो उसके जमीन पर गिरने को दो रूप हो सकते हैं व संयोगवश कौन सा भी तल ऊपर हो सकता है। वस्तुतः सिक्के के उछालने की गति कोण, जमीन आदि की स्थिति के अनुसार ही एक निश्चित रूप से सिक्का जमीन पर गिरता है। गिराने की क्रिया में अत्यन्त सूक्ष्म परिवर्तन से सिक्के का तल बदल सकता है। क्योंकि हमारी वृद्धि से हम गिराने के पहले ही यह नही बता पाते है कि सिक्के का कौन सा तल ऊपर आयेगा। अतः यह हमें महज संयोग लगता है। सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण की घोषणा हम अग्रिम रूप से कर सकते है। अतः इन्हें महज संयोग नहीं मानते हैं। सूर्यग्रहण की पूर्व घोषणा से अधिक कठिन सौसमय की भविष्य वाणी करना है। इस कठिन कार्य को भी वैज्ञानिक लगभग सफल रूप से करने लगे हैं। अतः सामान्य जनता भी जब वर्षा, आंधी तूफान, भूकम्प आदि को महज संयोग नहीं मानते लगी है। किन्तु उसका अभिप्राय यही रहता है कि जो कारण हमारे लिये सन्दर्भ के अनुसार महत्वपूर्ण हैं उन कारणों के अतिरिक्त किसी अन्य ज्ञात या अज्ञात कारण से कोई घटना हो रही है।

यह हमें नहीं भूलना चाहिये कि यदि वैज्ञानिक बिना कारण के कार्य होना स्वीकार कर ले। तब ही महज संयोग मानने का अधिकार होगा। ऐसी स्थिति में वैज्ञानिकता का आधार ही कमजोर हो जायेगा।

क्वाण्टम यांत्रिकी के आधार पर और भी नये प्रश्न इस विषय पर हो सकते हैं किन्तु विस्तार से बचने के लिये क्वाण्टम यांत्रिकी से प्रश्न उठाकर उनका समाधान यहां नहीं किया जा रहा है। क्वाण्टम यांत्रिकी के कुछ आवश्यक तथ्य थोड़ा आगे दिए जा रहे है।

६. जो जैसा करें वह वैसा भरे

जन्म लेने की घटना यदि महज संयोग मात्र नहीं है तो दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या यह किसी विशिष्ट दिव्य शक्ति की योजना का अंग है ? या पूर्व कृत कर्मों के अनुसार प्रकृति की व्यवस्था से प्राप्त फल है ?

जहाँ तक प्रकृति के अतिरिक्त किसी अन्य दिव्य शक्ति द्वारा प्रकृति के नियमों में मन्नमर्जी से परिवर्तन करने का प्रश्न है, आधुनिक विज्ञान ऐसा नहीं मानता है। स्वयं महान वैज्ञानिक आइन्स्टीन ईश्वर में तो विश्वास करते थे किन्तु उनके ईश्वर का स्वरूप ऐसा नहीं था जो मनमर्जी से प्रकृति के साथ हेर-फेर करता रहे। उनके शब्दों में -

"व्यक्तियों के भाग्य एवं क्रिया कलापों की तरफ ध्यान देने वाले ईश्वर में मैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्वास नहीं करता हूं, अपितु स्पिनोजा के ईश्वर में विश्वास करता हूँ जो कि अपने आपको विश्व की व्यवस्था के रूप में अभिव्यक्त करता है।"

जैनाचार्यों का मत यह रहा है कि सृष्टि की समस्त क्रियाएं निश्चित नियमों से होती हैं व कोई भी इकाई अपनी मनमर्जी से इन नियमों में हेरफेर नहीं कर सकती है।

इस प्रकार जैनाचार्यों के अनुसार एवं वैज्ञानिकों के अनुसार कोई जन्म लेने की घटना प्रकृति की व्यवस्था के अन्तर्गत ही निश्चित नियमों से होना चाहिये।

१. प्रकृति के नियम -

भौतिक विज्ञान अचेतन पदार्थों की गति व स्थिति के बारे में प्रकृति के नियम बताता है। किन्तु प्रकृति में चेतन पदार्थ अर्थात् जीव द्रव्य भी है। चूंकि प्रकृति पूर्णतया व्यवस्थित है अतः जीव द्रव्य के व्यवहार के अनुसार जीव को निश्चित फल निश्चित समय पर निश्चित नियमों के अनुसारमिलना चाहिए।

प्रकृति की व्यवस्था एक आदर्श बैंक की तरह है जहां नियमानुसार एक नियत अवधि के लिये जमा कराई गई राशि निश्चित अवधि बाद निश्चित ब्याज सहित मिलती है। विशेष परिस्थितियों में अवधि में परिवर्तन भी नियमानुसार संभव है।

प्रकृति के ये नियम क्या है ? व किस कार्य का फल कब व कितना मिलेगा? इन प्रश्नों का उत्तर मोटे रूप में गोम्मटसार जैसे ग्रन्थ में आचार्य नेमिचन्द्र ने या तत्वार्थसूत्र में आचार्य उमास्वामी ने एवं अन्य कई आचार्यों ने देने का प्रयास किया है।

प्राणी के क्रिया कलापों एवं बातों में इतनी विविधता है कि ब्याज के सरल गणित को तरह प्राणी के कार्यों के बल के बारे में ऐसे सरल समीकरण नहीं लिखे जा सकते है जिन्हें हम कम्प्यूटरों से हल कर लें। इस असमर्थता के बावजूद गुणात्मक ज्ञान भी हमारे लिये उपयोगी हो सकता है। जैसे आचार्य उमास्वामी ने तत्वार्थसूत्र के छठे अध्याय के ११ वें सूत्र में लिखा है -

दुःख शोकतापक्रंदन वद्य परिदेवनान्यात्परो -
भयस्थानान्यसद्वेद्यस्य ।।६-११।।

इस सूत्र का भावार्थ यह है कि स्वयं को, पर को या दोनों को एक साथ दुःख शोक,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताप (पश्चाताप) आक्रान्दन (पश्चाताप से अश्रुपात करके रोना) वध (प्राणओं का वियोग) एवं परिदेव (संक्लेश परिणामों से ऐसा रूदन करना कि सुनने वाले के हृदय में दया उत्पन्न हो जाय। उत्पन्न करने से असातावेदनीय कर्म का बंधन होता है, अर्थात् ऐसा करने से भविष्य में भी दुःख एवं अशान्ति की समाग्री मिलती है।

इस प्रकार के सूत्रों की एक विशेष बात यह है कि ये सूत्र यह वताते है कि न केवल मनुष्य के वचन एवं शारीरिक क्रियाएं अपितु विचार भी भौतिक जगत एवं शरीर को प्रभावित करते है। कुछ वर्षों पूर्व तक वैज्ञानिक जगत में मस्तिष्क का भौतिक पदार्थों पर प्रभाव के बारे में बहुत जघन्य ज्ञान था। किन्तु आज वहुत प्रमाण एकत्रित हो गये है जिनसे यह सिद्ध होता है कि मनुष्य के शरीर एवं भौतिक जगत को प्रभावित करते है। इस तथ्य के समर्थन में आधुनिक वैज्ञानिकों के कई उद्धरण मिल सकते हैं। उदाहरण के रूप में यहां कुछ ही लिखे जा रहे है।

लेखक नार्मन विन्सेण्ट पील ने विचारों के कारण शरीर में व्याधियां हो सकती है, इस बात का खुलासा करते हुए निम्नांकित वाक्य लिखा है-

डा० वीस का कथन है कि जोड़ो एवं मांसपेशियों के दर्द के क्रानिक रोगों अपने किसी निकट व्यक्ति के प्रति अन्तरंग में आक्रोश भाव का पोषण करने से पीड़ित हो सकते हैं।

अमरीका के आधुनिक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक डा० वेन डायर द्वारा लिखित पुस्तक में मुख्यतया सही बताया है कि मनुष्य की अच्छी भावनाओं द्वारा उसके जीवन के सभी क्षेत्रों में चमत्कार हो सकते हैं। इस चमत्कार को वे सच्चा जादू कहते है। इस पुस्तक के शीर्षक का अभिप्राय भी यही है स्वास्थ्य सम्बन्धी चमत्कार की व्याख्या करते हुए पृ० २७६ पर ग्रेग पंडरन द्वारा लिखित पुस्तक, का उल्लेख करते है। डा० डायर लिखते है कि पुस्तक के लेखर ग्रेग पंडरसन को ऐसा कैंसर हो गया था कि डाक्टरों ने अस्पताल से यह कहते हुए छुट्टी कर दी ती कि अब इलाज सम्भव नहीं है वे ३० दिन से अधिक उम्र अब नहीं रही है। किन्तु विचारधारा को बदल कर ग्रेग पंडरसन ने कैंसर को जीता व पूरी दूनिया को एक पुस्तक लिखकर यह वताया कि किस तरह उनका कैंसर रोग अच्छे आचार-विचार से दूर हुआ। इस बारे में डा० डायर ने जो लिका उसका एक अंश निम्नानुसार है -

"उन्हें (ग्रेग पंडरसन को) यह अनुभव हुआ कि डर, क्रोध एवं दानहीन भावनाएँ व्यक्ति की रोग निवारण शक्ति की वहुत कमजोर वना देती है। उन्होंने यह भी अनुभव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया कि निस्वार्थ प्रेम, आंतरिक शांन्ति स्नेह देना, दूसरों से वापसी की चाह कम करना तथा ध्यान एवं अच्छे दृश्यों की मन में कल्पना, ये सव कैंसर को हटाने के साधन है। मैं यह सलाह देता हूं कि आप इस अद्‌भूत पुस्तक को पढ़े एवं जिसे कैंसर हो गया है उसको इस पुस्तक के ज्ञान की वितरित करें ।"

इसी प्रकार लूई है एक ऐसी अमरीकी महिला है जिसे भी कैंसर हो गया था व डाक्टरों ने लाइलाज एवं अत्यल्पायु घोपित कर दिया था किन्तु वह महिला न केवल आज स्वस्थ है किन्तु हजारों लोगों को स्वस्थ बने रहने का मंत्र सिखा रही है। उसके द्वारा अंग्रेजी में लिखित पुस्तक इतनी प्रसिद्ध हो रही है कि अब तक इस पुस्तक का स्पेनिश, फ्रैंच, जर्मन, पोलिश, डच एवं स्वीडिश भाषा में अनुवाद हो चुका है। इस पुस्तक के वाद लुई है न यह बताया कि न केवल शरीर को विचारों द्वारा चंगा होने में मदद मिलती है अपितु जीवन की कई समस्याओं का हल सद्विचारों से समंभव है। आवश्यक भौतिक सामग्री के संयोग विचारों के अनुसार बनते रहते हैं। इस तथ्य को लुई ने अपनी पुस्तक में बताया। इस पुस्तक में वर्णित विचारों की एक झलक निम्नांकित पैरा में मिल सकती है।

"लम्वे समय तक बने रहने वाला नाराजगी भाव शरीर में कैंसर पैदा कर सकता है। आलोचना करने की स्थायी आदत बहुधा आर्थराइटिस पैदा करती है। अपराध भाव (पश्चाताप भाव) हमेशा सजा की ओर ले जाता है। अतः शरीर में दर्द की वीमारी अपराध भाव से होती है। (जब कोई रोगी मेरे पास वहुत ज्यादा दर्द की शिकायत लेकर आता है तब मैं जान लेती हूं कि इस रोगी के मन में अत्यधिक पश्चाताप है।

डर एवं डर के कारण उत्पन्न तनाव से गंजापन, अल्सर एवं पांव फटने की बीमारियां होती हैं।

मैंने पाया है कि क्षमा भाव रखने एवं नाराजगी त्यागने से कैंसर भी ठीक हो सकता है। यह बहुत सरल (इलाज) लग सकता है किन्तु मैंने तो इसकी सफलता देखी है व अनुभव किया है" ।

सारांश यह है कि आज ऐसे कई प्रमाण उपस्थित हो रहे हैं जिनसे आसातावेदनीय या सातावेदनीय व सम्बन्धित जैनाचार्यों के सूत्र प्रमाणित हो रहे हैं।

८. भावकर्मों का लेखा एवं फल द्रव्यकर्मो द्वारा

वैंक में जितना भी लेन-देन होता है उसका लेखा रखा जाता है। अतः प्रश्न होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि प्राणियों के कार्यों का लेखा प्रकृति में कैसे व कहां रहता है ? इसके उत्तर में जैनाचार्यों ने समझाया कि अत्यन्त सूक्ष्म अचेतन पुद्गल कण (आधनुनिक ज्ञात प्रोटॉन, इलैक्ट्रान से भी अति सूक्ष्म) वातावरण में सर्वत्र मौजूद रहते हैं जिन्हें कर्म वर्गणा या कर्म धूली कहा जाता है। प्रति समय प्राणी के विचारों वचनों एवं कार्यों के अनुरूप ये कण उस प्राणी की आत्मा से चिपक जाते है। इसे कर्म वन्धन कहा जाता है।

ये कर्म न कवल कार्यों का लेखा जोखा रखते हैं किन्तु प्रकृति के नियमों के अनुसार प्राणी को सुख-दुख के साधन दिलाने में वी निमित बनते हैं जैसे टेलिफोन की आटोमैटिक अलार्म व्यवस्था से जुड़े इलैक्ट्रानिक सर्किट में यह व्यवस्था रहती है कि चाहे गये उचित समय पर ऐसी पल्स पैदा होती है कि उससे टेलिफोन की घंटी चाहे गये समय पर वज जाये, वैसे ही, आत्मा से वंधे हुए कर्म कण भी उचित समय में सृष्टि के उन समस्त पटकों को ऐसा प्रमाणित करते हैं कि उचित फल उचित प्राणी को उचित समय पर मिल जाये।

९. कर्म वर्गणा, क्वाण्टम यांत्रिकी एवं क्वाण्टम चिकित्सा

२०वी शताव्दी के प्रारम्भ तक भौतिक विज्ञान की यह मान्यता रही थी कि प्रयोगशाला में देखी जाने वाली समस्त घटनाओं में कार्य-कारण संवन्ध रहता है। १९२५ से प्रारम्भ होने वाली भौतिक विज्ञान की शाखा क्वाण्टम यांत्रिकी ने पुरानी मान्यताएं वदल दी। आज की वैज्ञानिक दृष्टि में सारे विज्ञान का मूल आधार भौतिक विज्ञान है व भौतिक विज्ञान का मूल आधार क्वाण्टम यांत्रिकी है। अतः यह कहा जा सकता है कि आज के विज्ञान की अधिकतम गहराई में क्वाण्टम यांत्रिकी है।

क्वाण्टम यांत्रिकी में संभावनात्मक व्यवहार एवं अनिश्चितता सिद्धान्त जैसी मूलभूत वाते हैं। इनके अनुसार दो पूर्णतः समान कण पूर्णतः समान परिस्थितियों में भिन्न व्यवहार कर सकते हैं। यानी समान कारण होते हुए भी असमान कार्य होते हैं। इस प्रकार कार्य-कारण सिद्धान्त क्वाण्टम यांत्रिकी में पूर्णतया लागू नहीं होता है। इसका विश्लेपण करते हुए वैज्ञानिक चर्चा में यह कहा जाता है कि सूक्ष्म कणों पर प्रयोग के परिणाम प्रयोग कर्ता की भावना एवं इच्छा पर भी आंशिक रूप से निर्भर कर सकते हैं। एक पक्ष डैविड वोम जैसे उच्चकोटि के भौतिक वैज्ञानिक एवं दार्शनिक का है जो यह मानता है कि कुछ छिपे हुए घटक हो सकते हैं जिनके कारण प्रारम्भ में समानता दिखाई देने पर भी असमानता है। कुछ वैज्ञानिक मनोरंजक भाषा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में यों कहते हैं जिनके कारण समान दिखाई देने वाली दो परिस्थितियों के असमान परिणाम प्राप्त होते हैं।

इस विवेचन के अन्तर्गत कर्म वर्गणा की वाहरी जगत को प्रभावित करने की शक्ति की संभावना वहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है चूंकि कर्मवर्गणा भौतिक विज्ञान के नाभिक, एटम एवं मालिक्यूल से अत्यन्त सूक्ष्म है अत: कर्मवर्गणा के कणों का देखा जाना आज के भौतिक उपकरणों की सीमा से परे हैं। कर्मवर्गणा का प्रभाव तो दिखाई दे सकता है किन्तु कर्म वर्गणा यंत्रों द्वारा नहीं देखी जा सकती है। आज जव भौतिक विज्ञान यह कहता है कि सूक्ष्म कणों का व्यवहार अनिश्चित है या संभावनात्मक है, तव हमें कारण कार्य सिद्धान्त की रक्षा करने हेतु किसी अदृश्य कारण की आवश्यकता होती है व ऐसी स्थिति में हम प्रयोगकर्त्ता की भावना एवं इच्छा शक्ति का सहारा लेने का प्रयास करते हैं। भौतिक दृष्टि से ऐसे अदृश्य कारण के रूप में जींवधारियों की भावना शक्ति से जुड़ी हुई अचेतन कर्मवर्गणा सहायक हो सकती है।

सारांश में यह भी कहा जा सकता है कि समान कारण होते हुए भी यदि असमान कार्य हो रहा है तो इसका एक संभावित हल यह हो सकता है कि कर्मवर्गणा जैसी अत्यन्त सूक्ष्म शक्ति एक अतिरिक्त कारण हो सकती है। व इसके कारण समान प्रतीत होने वाले कारण असमान वन सकते हैं व फलत: असमान कार्य हो सकते हैं।

क्वाण्टम यांत्रिक की तरह की चिकित्सा में भी क्वाण्टम चिकित्सा की वात आज हो रही है। डा० दीपक चौपड़ा आज अमरीका के श्रेष्ठतम चिकित्सकों की गिनती में आते हैं। वे व्याख्यानों, पुस्तकों एवं उनके अमरीकी चिकित्सालय में असाध्य रोगियों को चंगा करके यह बताते हैं कि मनुष्य के विचारों का श्वांस द्वारा ली गई प्राणवायु भोजन व औषधि के सूक्ष्म कणों व शरीर के कणों पर सूक्ष्म क्वाण्टम प्रभाव होता है व अच्छे विचारों से व्यक्ति चंगा हो सकता है। डा० चौपड़ा इस चिकित्सा को क्वाण्टम चिकित्सा कहते है।

डा० चौपड़ा की इस क्वाण्टम चिकित्साक की व्याख्या कर्म सिद्धान्त द्वारा सरलता से हो सकती है। विचारों के अनुसार कर्म वर्गणा का बंध एवं उदय होता है। कर्म वर्गणा की उपस्थिति एवं उदय के अनुसार कर्मवर्गणा के कणों का श्वांस की वायु, भोजन, व औषधि के कणों तथा रोगयुक्त शरीर के अवयव के सूक्ष्म कणों पर प्रभाव होता है। यानि अच्छे-बुरे विचारों के अनुसार हितकारी-अहितकारी परिवर्तन शरीर में हो सकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१० उपसंहार

इस लेख का सारांश यह है कि (१) अविनाशी जीव पदार्थ का अस्तित्व है, (२) प्रकृति के सभी कार्य व्यवस्थित रूप में नियमानुसार होते हैं, (३) जीव के सुख दुख का मूल कारण स्वयं जीव ही है, (४) जीव के साथ बंधी हुई अचेतन कर्मवर्गणा जीव के कार्यों का लेखा जोखा रखती है व उचिंत समय पर उचित फल दिलाने में यह कर्म वर्गणा रिमोट कण्ट्रोल की तरह सम्वन्दित घटकों प्रभावित करने में निमित्त वनती है, एवं (५) क्वाण्टम यांत्रिकी व क्वाण्टम चिकित्सा में कारण - कार्य नियम की रक्षा करने में कर्म सिद्धान्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

यह सब व्याख्या आध्यातम के लिए आधार भूत है व आध्यात्म की शूरूआत इस मान्यता से प्रारम्भ होती है कि मैं जीव हूँ व जीव को शाश्वत सुख अन्य द्रव्यों से भिन्न स्वयं की आत्मा से ही मिल सकता है।

लेख का समापन करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र के समयसार कलश क्रं० २१२ के भावार्थ का उल्लेख करना उचित होगा। इस कलश में यह वताया गया है कि समस्त वस्तुएं अपने-अपने स्वभाव में नियत है। फिर भी अज्ञानी जीव ऐसा न समझने के कारण मोहित एवं आकुलित होकर क्लेश पाता है।

सन्दर्भ

१. उदाहरण के लिए देखिए-

(a) Paras M. Agrawal, D.L. Thompson, and L.M. Raff, (J.chem. Phys. 101, 9937 (1934)).

(b) P.M. Agrwal, and L.M. Raff., (J.Chem. Phys. 74, 5076 (1981))

जैन दर्शन में परमाणु का अर्थ विज्ञान के Atom से अति भिन्न है। सूक्ष्मतम कण जिसका आगे विभाजन न हो सके, जैन दर्शन में परमाणु या अविभागी पुद्गल परमाणु कहलाता है।

३. आचार्य उमास्वामी, तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय ५, सूत्र २९ एवं ३०.

4. George wald, "The Cosmology of Life and Mind", in "Synthesis of Science and Religion", Edited by T.D. singh

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(The Bhaktivedanta Institute, San Francisco, Bombay, 1988) P.P. 8-21. The original English version of the quotation is as follows :

"In this talk I have propounded two riddles : one, the very peculiar character of a universe such as ours that breeds life; and two, the problem of consciousness, mind, a phenomenon that lies outside the parameters of space and time, that has no location.

a few years ago it occurred to me that these seemingly very disparate problems might be broguht together. That would be with the hypothesis that mind, rather than being a very late development in the evolution of living things, restricted to organisms with the most complex nervous systems - all of which I had believe to be true - that mind instead has been there always, and that this universe is life breeding because the pervasive presence of mind had guided it to be so."

5. Peter Michelmore, "Einstein : Profile of the man', (dodd, mead and Co., N.Y., 1962), p-139. The original English version of the quotation is as follows :

"I believe in Spinaza's God who reveals himself in the harmony of all that exists, into a God who concerns himself with the fate and actions of Men."

6. आचार्य नेमिचन्द्र, गोम्मटसार : कर्मकाण्ड, (श्री परमश्रुतप्रभावक मंडल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगोस, आणंद, १९७८)

7. आचार्य उमास्वामी, तत्वार्थसूत्र

8. Narman Vincent Peale, "The Power of Positive Thinking". The Original English version on page 194 of the quotation is as follows :

"Dr. Weiss stated that chromic victimid of pains and aches in the muscles and jointed may be suffering from nursing a smoldering grudge against someone close to them. He added that such persons useally are totally unaware that they bear a chronic resentment ."

9. Wayne W. Dyer, "Real Magic', (Harper Paperbacks, 1993).

The quotation is on p.276 It is as followws :

"He discovered how powerful fear, anger and distress are in

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

affecting the immune system. He discovered also that unconditional love, inner peace, giving away love, reducing expectations of others and twining into the powerful effect of meditation and visualization were the seeds for defeating the cancer that was raging in his boy.... I recommend that you read his wonderful book and share it with anyone you know who us diagnosed with cancer."

10. Louise L Hay, "You can Heal your life "

(Hay House 3029 Wilshire Blod, Santa Monica, (A 90404, USA). Page 12-13) The original English version of the quotation is as follows :

"Resentment that is long held can eat away at the body and become the disease we call coner. Criticism as a permanent habit can often lead to arthritic in the body guilt always looks for punishment, and punishment creates pain (when a client comes to me with a lot of pain I know may are holding a lot of guilt). Fear, and the cession it produces, can create things like baldness, ukers, and even dore jeet. I have found that for giving and releasing resentment will."

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन आगमों में उपलब्ध गणितीय सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन

- डॉ० रमेश चन्द जैन
सांख्यिकी विभाग
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

गणितीय सामग्री कई जैन आगम ग्रंथों में उपलब्ध है। ये ग्रंथ प्राचीन शौर सेनी एवं अर्धमागधी भापाओं में निवद्ध है। वह सामग्री लोक के स्वरूप एवं संरचना, जीवों के स्वरूप स्थिति एवं कर्मों की प्रकृति आदि से सम्वद्ध है। इसी प्रकार धार्मिक अनुष्ठ ानों हेतु मुहूत आदि की गणना हेतु आवश्यक ज्योतिप ज्ञान प्राप्त करने के लिए जैन आचार्यों ने गणित का अध्ययन किया।

गणितीय सामग्री से संवधित प्रमुख ग्रंथ हैं आचार्य यति वृपभ द्वारा विरचित तिलोयपण्णति भाग एक और दो, पट्खंडागम वीर सेन की धवला टीका, गणितसार संग्रह महावीराचार्य गोम्मटसार जीव कांड एवं कर्म कांड - आचार्य नेमिचन्द्र और लब्धिसार आचार्य नेमिचन्द्राचार्य।

प्रस्तु लेख में प्रथम चार ग्रंथों में उपलब्ध गणितीय सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन विभिन्न उपमा नामों के लिए किया है।

तिलोयपण्णति आचार्य यतिवृपम की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति है। यद्यपि वर्तमान कृति मूल कृति से काफी भिन्न है फिर भी इसका महत्व कम नहीं हुआ है। इस कृति पर कई लेख विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखे गये है। इनमें प्रमुख हैं -

१. तिलोयपण्णत्ती का गणितः लक्ष्मी चंद जैन
२. विश्व प्रहेलिकाः मुनि श्री महेन्द्र कुमार द्वितीय
३. दार्शनिक गणितज्ञः लक्ष्मी चन्द जैन एवं अनुपम जैन

तिलोयपण्णति के गणित पर कुछ लेख भी प्रकाशित हुए हैं किन्तु वे अपूर्ण हैं और उपमा मानों का सिर्फ वर्णन है, विवेचन नहीं है। तिलोय पण्णत्ती एवं पट्खडागम में अनेक स्थानों पर उपयोग में आये उपमा मान जैसे पल्य, मागर, मूच्यांगुल प्रत्यांगुल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घनागुल जगश्रेणी जगप्रतर और लोक आदि का विस्तार से वर्णन किया है। राजू अथवा रज्जू के मान पर भी विस्तार से प्रकार डाला गया है। इस प्रकार का वर्णन पूर्व में वर्णित संदर्भों में उपलब्ध नहीं है।

मापन पद्धति - खगोलीय ग्रंथ होने के कारण क्षेत्र के माप की सूक्ष्मतम इकाई की आवश्यकता हुई। लोक के माप के लिए विशाल संख्याओं एवं इकाई की आवश्यकता के साथ काल की विभिन्न इकाईयों की भी आवश्यकताओं है। संक्षेप में वह द्रव्य क्षेत्र एवं काल पर आधारित है।

द्रव्य प्रमाण - इसके तीन भेद है। संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त। संख्यात के तीन भेद हैं. जघन्य, मध्यम एवं उत्तम। असंख्यात के ९ भेद हैं और अनन्त के भी ९ भेद है इस प्रकर द्रव्य प्रमाण के कुल २१ भेद हैं। जघन्य संख्यात का मान २ माना गया है और अन्तिम मान उत्कृष्ठ अनंतानंत तक जाता है। कुछ उपमा मान भी दिये है जिन्हें हम विस्तार से काल प्रमाण एवं क्षेत्र प्रमाण में अध्ययन करेगें।

काल प्रमाण - इसके भी तीन भेद हैं। संख्यात काल मान, असंख्यात कालमान और अनन्त काल मान। विश्व प्रहेलिका (१९६९) एवं ग्रंथों के अनुसार संख्यात काल मान संमय से अचलात्म ($84^{31} \times 10^{90}$ वर्ष) तक दिया है।

समय - काल का अविभागी मान समय है और इसका सूक्ष्मतम अंश है मंदगामी एक परमाणु को एक आकाश प्रदेश से दूसरे आकाश प्रदेश तक जाने में जो काल लगता है उसे समय कहते हैं। जघन्य युक्त असंख्य समय की १ आवली होती है। जघन्ययुक्त असंख्यात संख्या के मान के बारे में दिगम्बर जैन शास्त्र मौन है।

पल्योपम तथा सागरोपम आदि असंख्यात काल मान हैं। विश्व प्रहेलिका (१९६९) के अनुसार पुद्‌गल परावर्तन आदि अनन्त काल मान हैं किन्तु दिगम्बर परम्परा में इनका उल्लेख नहीं है। पल्यराशि की संख्या निश्चित करने के लिए एक योजन व्यास एवं योजन गहरा एक बेलनाकार गड्ढे को उत्तम भोग भूमि के मेढे के बालाग्र से पूर्ण भर दिया जाता है।

विश्व प्रहेलिका के अनुसार इसमें संग्रहित बालाग्रों की संख्या 4.13×10^{44} जो कि ४५ अंकों की संख्या है। यदि प्रत्येक बालाग्र १०० वर्ष पश्चात् निकाला जाए तो इससे व्यवहार पल्य काल 4.13×10^{46} वर्ष आता है।

यदि १ वर्ष में समयों की संख्या x_1 हो तो व्यवहार पल्य = $4.13x1 \times 10^{46}$ समय होगा। अतएव व्यवहार पल्य काल समय की इकाई में असंख्यात है और वर्ष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इकाई में संख्यात है।

उद्धारपल्य का मान

1 उद्धारपल्य = व्यवहार पल्य X असंख्यात करोड़ वर्षो के समयों की राशि

यदि असंख्यात राशि x_2 में प्रदर्शित की जाय तो 1 उद्धारपल्य = $4.13x_1$ X_2 x 10^{51} (राशि) द्रव्यमान

इसी प्रकार

1 उद्धारपल्य = 4.13 x_1 x_2 X 10^{53} वर्ष
1 उद्धारपल्य = 4.13 x^2_1 x_2 X 10^{53} वर्ष } कालमान

अद्धापल्य का मान

1 अद्धापल्य = उद्धारपल्य राशि x असंख्यात वर्षों के समय की राशि

1 अद्धापल्य = 4.13 x^2_1 x^2_2 X 10^{53} (राशि) द्रव्यमान

इसी प्रकार

1 अद्धापल्य = 4.13 x^2_1 x^2_2 X 10^{53} वर्ष
1 अद्धापल्य = 4.13 x^3_1 x^2_2 X 10^{53} समय } कालमान

व्यवहार सागरोपम का मान

1 व्यवहार सागरोपम = 10 कोड़ा कोड़ी व्यवहार पल्य राशि

10 कोड़ा-कोड़ी = 10 X 10^7 X 10^7 = 10^{15}

अतएव

1 व्यवहार सागरोपम = 4.13 X 10^{59} (राशि)

यह एक संख्यात राशि है

1 व्यवहार सागरोपम = 4.13 X 10^{61} वर्ष
1 व्यवहार सागरोपम = $4.13x_1$ X 10^{61} समय } कालमान

इस काल मान की अंतिम राशि असंख्यात है।

उद्धार सागरोपम का मान

1 उद्धार सागरोयपम = 10 कोड़ा कोड़ि उद्धार पल्योम

= $4.13x_1$ x_2 X 10^{66} (राशि) द्रव्यमान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी प्रकार

1 उद्धार सागरोयपम = $4.13x_1\ x_2 X 10^{68}$ वर्ष
= $4.13x_1\ x^2_1 X 2x10^{68}$ समय } कालमान

अद्धासागरोमप का माप

1 अद्धासागरोपम = 10 कोड़ा कोड़ि अद्धापल्य राशि

1 अद्धासागरोपम = $4.13x^2_1\ x^2_2 x10^{66}$ (राशि) द्रव्यमान

इसी प्रकार

1 अद्धासागरोपम = $4.13x^2_1\ x^2_2 X 10^{68}$ वर्ष
= $4.13x^3_1\ x^2_2 X 10^{68}$ समय } कालमान

उत्सर्पिणी का माप

1 उत्सर्पिणी = दस कोड़ा कोड़ि अद्धासागरोपम

1 उत्सर्पिणी = $4.13x^2_1\ x^2_2 x10^{81}$ (राशि) द्रव्यमान

इसी प्रकार

1 उत्सर्पिणी = $4.13x^2_1\ x^2_2 X 10^{83}$ वर्ष
= $4.13x^3_1\ x^2_2 X 10^{83}$ समय } कालमान

उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी के मान बराबर होते हैं।

1 कल्पकाल = उत्सर्पिणी + 1 अवसर्पिणी

1 कल्पकाल = $8.26x^2_1\ x^2_2 X 10^{83}$ वर्ष
1 कल्पकाल = $8.26x^3_1\ x^2_2 X 10^{83}$ समय } कालमान

उपर वर्णित सभी मानो में x_1= 1 वर्ष में समयों की संख्या एव x_2= असंख्यात वर्षों की राशि किंतनी ली जाए इसका कहीं भी उंल्लेख नहीं है। इसी कारण से ये सभी मान अज्ञात जैसे हैं।

क्षेत्रमान

द्रव्य के अविभागी अंश को परमाणु कहते हैं। इसके मान रथरेणु तक सभी ग्रंथों में एक से हैं। मध्यलोग में सबसे पहला द्वीप जम्बू द्वीप है और इसमें ५ विभिन्न क्षेत्र हैं। निम्न तालिका से विभिन्न प्रकार की भूमि एवं काल की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रम संख्या	क्षेत्र	भूमि	काल
१.	देवकुरू- उत्तरकुरू (विदेह क्षेत्र)	उत्तम भोग भूमि	प्रथम
२.	हरि एवं रम्यक्	मध्यम भोग भूमि	द्वितीय
३.	हेमवत् एवं हेरण्यवत्	जघन्य भोग भूमि	तृतीय
४.	विदेह क्षेत्र	कर्म भूमि	चतुर्थ
५.	भरत एवं ऐरावत	कर्मभूमि	पटकाल परिवर्तन

क्षेत्र प्रमाण की इकाईयों में 8x8x8x8x8 रथरेणु = 1 लीक्षा होना चाहिये जबकि तिलोयपण्णति में दो कर्म भूमियों को मिलाकर एक कर दिया है। तिलोयपण्णति के अनुसार 8^4 रथरेणु = 1 लीक्षा दिया गया है। यह परिवर्तन कब और कैसे हुआ वह एक विचारणीय प्रश्न है। वालाग्रो की मोटाई पर भूमि एवं काल का प्रभाव अवश्य पड़ता है। काल समान होने पर भी विदेह क्षेत्र के मनुष्य के वालाग्रो की मोटाई भरत अथवा ऐरावत क्षेत्र के मनुष्यं के वालाग्रो से कम होना चाहिये। इसके पश्चात् अंगुल तक माप सवी ग्रंथो में एक समान हैं। अंगुल दो प्रकार के माने जाते हैं। उत्सेधागुंल और आत्मांगुल का क्रमशः वड़े और छोटे मापों के लिए उपयोग किया जाता है। आत्मांगुल का माप काल के अनुसार बदलता रहता है। अंगुल से योजना तक के माप ठीक हैं।

कालमान एवं क्षेत्रमान का परस्पर संवन्ध- इस शीर्षक के अन्तर्गत दो इकाईयाँ सूच्यांगुल तथा जगश्रेणी का वर्णन मिलता है। अन्य इकाईयां इन्हीं से प्राप्त की गई हैं इनको प्राप्त करने के लिए लघुगणक का उपयोग किया है। लघुगणक में स्थापना का मूल्य २ लिया गया है जो कि एक जघन्य संख्यात राशि है। लघुगणक का उपयोग पट्खंडागम की आचार्य वीरसेन की टीका धवला में भी हुआ है। महावीराचार्य कृत गणित सार संग्रह में लघुगणक का उपयोग नहीं हुआ है।

1 सूच्यांगल = (अद्धापल्य) $^{\text{लघु 2 (अंद्धापल्य)}}$

1 सूच्यांगल = = $[4.13x^2{}_1\ x^2{}_2 X 10^{51}]^{\text{लघु 2 }(4.13x^2{}_1\ x^2{}_2\ x10^{51})\text{ राशि}}$

सूच्यांगुल का यह मान द्रव्य एवं क्षेत्र की अपेक्षा से है जिसकी इकाईयां क्रमशः संख्या एवं परमाणु होगी।

इसी प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

$$1 \text{ सूच्यांगल} = [4.13x^2{}_1\, x^2{}_2 X\, 10^{53}]^{\text{लघु } 2\,(4.13x^2{}_1\, x^2{}_2\, x10^{53})} \text{ वर्प}$$

$$1 \text{ सूच्यांगल} = x_1[4.13x^2{}_1\, x^2{}_2 X\, 10^{53}]^{\text{लघु } 2\,(4.13x^2{}_1\, x^2{}_2\, x10^{53})} \text{ ममय}$$

ये दोनों इकाईयां काल मान की है।

प्रतरांगुल का मान

$$1 \text{ प्रतरांगुल} = (\text{सूच्यांगुल})^2$$

$$1 \text{ प्रतरांगुल} = [4.13x^2{}_1\, x^2{}_2 X\, 10^{51}]^{2\, \text{लघु}_2\,(4.13x^2{}_1\, x^2{}_2\, x10^{51})} \text{ राशि}$$

$$1 \text{ प्रतरांगुल} = [4.13x^2{}_1\, x^2{}_2 X\, 10^{53}]^{2\, \text{लघु}_2\,(4.13x^2{}_1\, x^2{}_2\, x10^{53})} \text{ वर्प}$$

$$1 \text{ प्रतरांगुल} = x_1[4.13x^2{}_1\, x^2{}_2 X\, 10^{51}]^{2\, \text{लघु}_2\,(4.13x^2{}_1\, x^2{}_2\, x10^{53})} \text{ समय}$$

घनांगुल का मान

$$1 \text{ घनांगुल} = (\text{सूच्यांगुल})^3$$

$$1 \text{ घनांगुल} = [4.13x^2{}_1\, x^2{}_2 X\, 10^{51}]^{3\, \text{लघु}_2\,(4.13x^2{}_1\, x^2{}_2\, x10^{51})} \text{ राशि}$$

$$1 \text{ घनांगुल} = [4.13x^2{}_1\, x^2{}_2 X\, 10^{53}]^{3\, \text{लघु}_2\,(4.13x^2{}_1\, x^2{}_2\, x10^{53})} \text{ वर्प}$$

$$1 \text{ घनांगुल} = x_1[4.13x^2{}_1\, x^2{}_2 X\, 10^{51}]^{3\, \text{लघु}_2\,(4.13x^2{}_1\, x^2{}_2\, x10^{53})} \text{ समय}$$

जगश्रेणी का मान

$$1 \text{ जगश्रेणी} = (\text{घनांगुल})^{\frac{\text{लघु}_2\,(\text{अद्धापल्य})}{\text{अ संख्यात}}}$$

$$1 \text{ जगश्रेणी} = [(\text{सूच्यांगुल})^3]^{\frac{\text{लघु}_2\,(\text{अद्धापल्य})}{x_2}}$$

$$1 \text{ जगश्रेणी} = (\text{सूच्यांगुल})^{\frac{3.\ \text{लघु}_2\,(\text{अद्धापल्य})}{x_2}}$$

$$1 \text{ जगश्रेणी} = (\text{अद्धापल्य})^{\frac{3}{x_2}[(\text{लघु}_2\,(\text{अद्धापल्य})]^2}$$

अद्धापल्य का मान रखने पर

$$1 \text{ जगश्रेणी} = [4.13x^2{}_1\, x^2{}_2 X\, 10^{51}]^{\frac{3}{x_2}[(\text{लघु}_2\,(4.13x^2{}_1\, x^2{}_2\, x10^{51})]^2} \text{ राशि}$$

$$1 \text{ जगश्रेणी} = [4.13x^2{}_1\, x^2{}_2 X\, 10^{53}]^{\frac{3}{x_2}[(\text{लघु}_2\,(4.13x^2{}_1\, x^2{}_2\, x10^{53})]^2} \text{ वर्ष}$$

$$1 \text{ जगश्रेणी} = x_1[4.13x^2{}_1\, x^2{}_2 X\, 10^{53}]^{\frac{3}{x_2}[(\text{लघु}_2\,(4.13x^2{}_1\, x^2{}_2\, x10^{53})]^2} \text{ समय}$$

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जगप्रतर का मान

1 जगप्रतर = (जगश्रेणी)^2

1 जगप्रतर = $[4.13x^2_1\ x^2_2 X\ 10^{51}]^{\frac{6}{x_2}}$ [(लघु $_2$ $(4.13x^2_1\ x^2_2\ x10^{51})]^2$ राशि

1 जगप्रतर = $[4.13x^2_1\ x^2_2 X\ 10^{53}]^{\frac{6}{x_2}}$ [(लघु $_2$ $(4.13x^2_1\ x^2_2\ x10^{53})]^2$ वर्ष

1 जगप्रतर = $x_1[4.13x^2_1\ x^2_2 X\ 10^{53}]^{\frac{6}{x_2}}$ [(लघु $_2$ $(4.13x^2_1\ x^2_2\ x10^{53})]^2$ समय

लोक का मान

1 लोक = (जगश्रेणी)^3

1 लोक = $[4.13x^2_1\ x^2_2 X\ 10^{51}]^{\frac{9}{x_2}}$ [(लघु $_2$ $(4.13x^2_1\ x^2_2\ x10^{51})]^2$ राशि

1 लोक = $[4.13x^2_1\ x^2_2 X\ 10^{53}]^{\frac{9}{x_2}}$ [(लघु $_2$ $(4.13x^2_1\ x^2_2\ x10^{53})]^2$ वर्ष

1 लोक = $x_1[4.13x^2_1\ x^2_2 X\ 10^{53}]^{\frac{9}{x_2}}$ [(लघु $_2$ $(4.13x^2_1\ x^2_2\ x10^{53})]^2$ समय

राजू का मान

1 राजू = जगश्रेणी/7

1 राजू = $\frac{1}{7}[4.13x^2_1\ x^2_2 X\ 10^{51}]^{\frac{3}{x^2}}$ [(लघु $_2$ $(4.13x^2_1\ x^2_2\ x10^{51})]^2$ राशि

1 राजू = $\frac{1}{7}[4.13x^2_1\ x^2_2 X\ 10^{51}]^{\frac{3}{x^2}}$ [(लघु $_2$ $(4.13x^2_1\ x^2_2\ x10^{51})]^2$ वर्ष

1 राजू = $\frac{x_1}{7}[4.13x^2_1\ x^2_2 X\ 10^{51}]^{\frac{3}{x^2}}$ [(लघु $_2$ $(4.13x^2_1\ x^2_2\ x10^{51})]^2$ समय

सूच्यांगुल प्रतरांगुल, घनांगुल, जगश्रेणी, जगप्रतर, लोक और राजू के प्रथम मान द्रव्य एवं क्षेत्र के लिए हैं जबकि इकाईयाँ क्रमशः राशि एवं परमाणु है। द्वितीय मान काल मान वर्ष अथवा समय में है। राजू के क्षेत्रिय मान से योजन अथवा कोस का मान निकालना संभव नहीं है कारण अनन्तानंत परमाणुओं का एक अवसन्नासन्न होता है जिसका मान ज्ञात नहीं है।

अंत में हमारे लिए गौरव का विषय है कि हमारे आचार्य द्रव्य क्षेत्र एवं काल की सूक्ष्मतम एवं अधिकतम इकाईयों से परिचित थे। आधुनिक विज्ञान अभी इस स्तर तक नहीं पहुँच पाया है। विज्ञान के सहयोग से हमारी अनेक स्थापनाएं सिद्ध हो रही हैं और जैन धर्म एक वैज्ञानिक धर्म के रूप में स्थापित हो रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संदर्भ ग्रंथ

१. श्रीयतिवृषभाचार्य विरचित तिलोय-पण्णत्ती भाग १,२, सम्पादक प्रो० हीरा लाल जैन, प्रो० ए०एन०उपाध्ये १९४३, १९५०

२. श्री धवला टीका समन्वित पट् खडागम् पुस्तक ३ एवं ४ मम्पादक प्रो० हीरालाल जैन १९४१, १९४२

३. तिलोयपण्णति का गणित - प्रो० लक्ष्मीचंद जैन जवलपुर ।

४. विश्वप्रहेलिका - मुनिश्री महेन्द्र कुमार द्वितीय १९६९ जवेरी प्रकाशर वंवई

5. Philosopher Mathematicians and Laxmichand Jain Anupam Jain D.J.I.C.R. Hastinapur.

६. गणित सार संग्रह - महावीराचार्य विरचित अनुवादक प्रो० लक्ष्मी चन्द्र जैन शोलापुर १९४२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपवास और वैज्ञानिकता

- डॉ० रमेश चन्द जैन
जैन मन्दिर के पास
विजनौर, (उ०प्र०)

उप का अर्थ समीप में और वास का अर्थ है निवास करना। आत्मा के समीप में निवास करने का नाम उपपास है। इसमें कपाय और विपयों के आहार का परित्याग किया जाता है। किन्हीं आचार्य ने ठीक ही कहा है -

कपाय विपयाहारः त्यागो यत्र विधीयतं ।
उपलसः स विज्ञेयः शेपं लंघनकं विदु : ।।

अर्थात् कपाय, विपयों के आहार का जहाँ परित्याग किया जाता है, उसे उपवास कहते हैं। यदि कपाय और विपयों के आहार का त्याग नहीं हुआ तो वह उपवास (मात्र आहार का त्याग) लंघन ही रह जाता है।

उपवास करने से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्ति वढ़ती है। यही कारण है कि भारत के महापुरूषां मे लेकर जनसमान्य ने इसे अपनाया है। भगवान ऋपभदेव छह माह तक निराहार ही रहे, बाद में भोजन की अनुकूल विधि न मिल पाने का कारण उन्हें छः माह तक और निराहार रहना पड़ा। इस प्रकार उन्होंने एक वर्ष का उपवास किया। भगवान वाहुवलि एक वर्प तक कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानवस्थित रहे। इस बीच उन्होंने आहार नहीं लिया। इस युग में आचार्य शान्तिसागर घोर तपस्वी रहे हैं। उनके पूरे तपःकाल में आहार के दिनों की संख्या सीमित रही, अवशिष्ट सारा समय उन्होंने उपवास में ही व्यतीत किया। महात्मा गांधी प्रति सप्ताह एक दिन का उपवास रखते थं।

उपवास के फलस्वरूप अनेक प्रकार की ऋद्धियों और सिद्धियों की प्राप्ति होती है। कहा जाता है कि आचार्य भद्रवाहु ने जव सल्लेखना धारण कर ली तो उनकी परिचर्या के लिए चन्द्रगुप्त मुनि साथ रहे। परन्तु वन में श्रावकों का अभाव होने से उन्हें प्रोपध करना पड़ना था। एक दिन आचार्य ने उनमे कहा वंत्स ! निराहार तो रहना किसी तरह उचित नहीं है। इसलिए तुम वन में भी आहार के लिए जाओ:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि यह जैन शास्त्रों की आज्ञा है। चन्द्रगुप्त मुनि गुरूके कहे हुए वचनों को स्वीकार कर और उनेक पादारविन्द को नमस्कार कर आहार के लिए वन में भ्रमण करने लगे। उस अटवी में पांच वृक्षों के नीचे घूमते हुए चन्द्रगुप्त मुनि को गुरूभक्त तथा सुदृढ चरित्र के धारण करने वाले समझकर किसी वनदेवी ने अपना रूप वदलकर एक ही हाथ से वृक्ष के नीचे धरी हुई उत्तम उत्तम अन्न से भरी घी तथा शर्करादि से सुशोभित थाली मुनि के लिए दिखलायी।

चन्द्रगुप्त मुनि इस आश्चर्य को देखकर मन में विचार करने लगे कि भोजन भले ही तैयार क्यों न हो ? परन्तु दाता के विना लेना योग्य नहीं है। ऐसा सोचकर वहां से चल दिए और गुरू के पास जाकर उन्हें नमस्कार किया तथा वन में जो कुछ देखा, उसे गुरु को ज्यों का त्यों सुना दिया। गुरू को ज्ञान होने पर उन्होंने अपने शिप्य की बहुत प्रशंसा की तथा वोले ! वत्स ! तुमने यह वहुत ही अच्छा किया, क्योंकि जब दाता प्रतिग्रहादि विधि से आहार दे, तभी हम लोगों को लेना चाहिए।

दूसरे दिन पुनः चन्द्रगुप्त आहार के लिए वन में निकले, परन्तु वहां उन्होंने केवल भोजनपात्र देखा। उसी समय वहाँ से लौट कर गुरू के पास गए और प्रणाम कर वीते हुए वृतान्त कह सुनाया। गुरू ने प्रशंसा कर कहा - भव्य ! तुमने यह वहुत अच्छा किया, क्योंकि साधुओं को अपने आप दूसरों का अन्न ग्रहण करना योग्य नहीं है।

तीसरे दिन जब चन्द्रगुप्त आहार के लिए निकले तो उन्हें केवल एक स्त्री आहारदान के लिए उद्यत दिखायी दी। उस दिन भी वे निराहार लौट गए। चन्द्रगुप्त की दृढ़ता देखकर गुरूने उनकी प्रशंसा कर कहा - वत्स ! जैसा शास्त्रों में कहा है, वैसा ही तुमने आचरण किया। जहां केवल एक स्त्री हो, वहां साधु को आहार करना योग्य नहीं है।

चौथे दिन चन्दुगुप्त जब आहार के लिए निकले तो वनदेवी ने उन्हें पवित्र हृदय समझकर वन में गृहस्थजनों से पूर्णनगर रचा। मुनिराज ने गृहस्थों द्वार यथाविधि दिए हुए दान को स्वीकार किया। पारणा के वाद आकर उन्होंने गुरूचरणों में निवेदन किया कि मैंने जाते समय पास में एक नगर देखा था वहीं अन्तराय रहित आहार किया है। इस प्रकार प्रतिदिन चन्द्रगुप्त मुनि निरन्तराय आहार करने लगे।

वारह वर्ष पश्चात् विशाखाचार्य अपने संघ सहित वहाँ आए, जहां भद्रवाहु की समाधि हुई थी। मुनिराज चन्द्रगुप्त ने विशाखाचार्य को प्रणाम किया। उस समय विशाखाचार्य ने मन में विचार किया कि श्रावक के विना ये यहां कैसे रहे होंगे ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी विचार से प्रति वन्दना भी नहीं की। इस स्थान पर श्रावकों का अभाव समझकर उस दिन सब मुनियों ने उपवास किया। तव चन्द्रगुप्त मुनि वोले - यहां उत्तम लोगों से परिपूर्ण वड़ा नगर है, उसमें श्रावक निवास करते हैं। दूसरे दिन सबने नगर में जाकर विधिपूर्वक आहार किया। उस दिन नगर में एक व्रहचारी अपना कमण्डलु भूल आया। जव वह कमण्डलु लेने गया तो वहां पर नगर न देखा, परन्तु किसी वृक्ष की डाली पर उसे कमण्डलु टंगा दीख पड़ा। उसे लेकर व्रह्मचारी वापिस आया और गुरू से समाचार कह सुनाया। गुरू ने विचार किया कि ये चन्द्रगुप्त मुनि शुद्ध चरित्र के धारक हैं। इन्हीं के पुण्य के प्रताप से देवताओं ने यह नगर रचा था। उन्होंने चन्द्रगुप्त मुनि की प्रशंसा कर प्रतिवन्दना की और कहा कि देवों के द्वारा रचित आहार श्रावकों को नहीं लेना चाहिए। यह सुनकर समस्त संघ ने प्रांयश्चित किया और वहां से विहार कर गए।

इस प्रकार शास्त्रों में उपवास की वड़ी महत्ता कही गयी है। आहार विज्ञान की दृष्टि से उपवास उपयोगी है। मनुष्य को जीवित रहने और कार्य करने के लिए ऊर्जा चाहिए। हमारे शरीर को यह ऊर्जा मुख्यतः कार्वोहाइड्रेट और वसा के चयापचय से प्राप्त होती है। सामान्य अवस्था में हमारे शरीर में उतनी ही ऊर्जा वनती है, जितनी की आवश्यक है। यदि हम आहार के माध्यम से अधिक कार्वोहाइड्रेट और वसा प्राप्त करते हैं तो उसका कुछ भाग हमारे शरीर में आरक्षित रहता है। सत्तर किलोग्राम भारवाले एक स्वस्थ व्यक्ति के यकृत में लगभग १०० ग्राम ग्लाइकोजन, पेशियों में ४०० ग्राम अलाइकोजन और वसीय ऊतकों में लगभग १२ किलोग्राम वसा आरक्षित रहती है। ग्लाइकोजन ग्लूकोज का स्तर कम होने लगता है तो सर्वप्रथम यकृत में आरक्षित ग्लाइकोजन ही अपघटित होकर रक्त ग्लूकोज के स्तर को वनाए रखता है। उपवास के माध्यम से हम अपने शरीर में जमें हुए हानिकारण पदार्थों से मुक्ति पा सकते हैं। उपवास के दौरान पाचन सम्वन्धी अंगो को आराम मिलता है, जव कि शरीर को त्याज्य पदार्थों से मुक्त करने वाले अंग यकृत, गुर्दे, फेफड़े तथा त्वचा आदि शरीर के आन्तिरक वातावरण को फिर से समस्थिति में लाने के लिए सक्रिय वने रहते हैं। उपवास द्वारा अवचेतन मन को वुरे विचारों से मुक्त करके अच्छे विचारों से भरा जा सकता है। नियमपूर्वक उपवास करने वाले व्यक्ति मानसिक दृष्टि से सदा निरोग वने रहते हैं।

रात्रि में सोने के वाद यदि प्रातःकाल से उपवास किया जाए तो धीरे आंत में अवशोषण हेतु कोई भी वाहर से प्राप्त आहार समाग्री शेष नहीं रहती है। तत्पश्चात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि फिर से आहार ग्रहण न किया जाए तो शारीरिक रक्त में ग्लूकोजका स्तर कम होने के कारण हमें भूख महसूस होने लगती है। इस अवस्था में पहुँचने पर ग्लूकोज का उपयोग मुक्य रूप से मस्तिष्क द्वारा किया जाता है। उपवास की समयावधि बढ़ने के साथ साथ कंकाल पेशियां ग्लूकोज के बजाए वसा उतकों से प्राप्त वसीय अम्लों का उपयोग करने लगती है। इस अवस्था में धीरे-धीरे रक्त में इन्सुलिन नामक हार्मोन का स्तर क्‍म होने लगता है।

प्रारम्भ में यकृत अपने ग्लाकोजन भण्डार से ग्लूकोज की पूर्तिकरता है। इस भंडार के चुकने से पहले ही यकृत वसा तथा मिनो अम्लों से ग्लूकोज बनाना प्रारम्भ कर देता है। इस क्रिया को ग्लूकोनियोजिनिसिस कहते हैं। चौबीस घंटे के उपवास के पश्चात यकृत मुख्य स्प्र से इस क्रिया के द्वारा ही ग्लुकोज का निर्माण करता है। जव तक शरीर में वसा शेष रहती है, ऊर्जा स्रोत के स्प्र में शारीरिक प्रोटीनों का उपयोग अपेक्षाकृत धीमी गति से होता है। जव उपवास करने वाले व्यक्ति के शरीर में आरक्षित वसा लगभग समाप्त होने लगती है। तो उसके शारीरिक अंगों की प्रोटीन तेजी से घटने लगता है और वह धीरे धीरं मौत की तरफ वढ़ने लगता है। अल्पकालिक उपवास रक्त वाहिकाओं में वसा के जमाव को रोकता है और हृदय रोगों को बचाने में सहायक हो सकता है।

उपवास के प्रथम तीन दिनों तक भूख की अनुभूति बनी रहती है। इसके बाद यह क्षीण होने लगती है और आहार के प्रति अरूचि पैदा होने लगती है। तत्पश्चात् भोजन ग्रहण करने पर दो, तीन दिन में यह कमजोरी दूर हो जाती है और व्यक्ति अपने को पहले से अधिक स्फूर्त और ऊर्जावान महसूस करता है। जिन वैज्ञानिकों ने स्वेच्छा से चार दिन तक उपवास किया था। उनका कहना है कि उन्हें बाद में ऐसा महसूस हुआ जैसे वे किसी पर्वतीय स्थान पर एक माह तक विश्राम और मनोरंजन कर लौटे हों। इस प्रकार अल्पकालिक उपवास मानसिक और शारीरिकं दृष्टि से लाभकारी है।

उपवास व्रत की दृष्टि ' से लाभकारी है जो जीव सम्पूर्ण पाप क्रियाओं से परिमुक्त होकर १६ पहर व्यतीत करता है। उसके इतने समय समय तक निश्चयपूर्वक सम्पूर्ण अहिंसाव्रत होता है। भोगोपभोग के हेतु से स्थावर जीवों की हिंसा होती है, किन्तु उपवासधारी पुरूष के भोगोपभोग के निमित्त से जरा भी हिंसा नहीं होती है। उपवास में वचनगुप्ति होने से झूठ वचन नहीं है, मैथुन, अदत्तादान और शरीर में ममत्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का अभाव होने से क्रमशः अब्रह्म, चोरी व परिग्रह का अभाव है। उपवास में पूर्ण अहिंसाव्रत के पालन होने के अतिरिक्त अवशेष चारों व्रत स्वयमेव पलते हैं। प्रोषधोपवास करने वाला पुरूष उपचार से महाव्रतीपने को प्राप्त होता है। अन्तर केवल इतना रह जाता है कि चरित्रमोह के उदय रूप होने के कारण संयम स्थान को प्राप्त नहीं करता है।

जो पित्त के प्रकोपवश आहार करने में असमर्थ हैं, उन्हें अवमौदार्य करना चाहिए।

उपवास की लम्बी अवधि में संचित वसा के समाप्त हो जाने पर उष्मा और शक्ति के उत्पादन का भार प्रोटीन पर आ पड़ता है। शरीर के कोमल भाग का प्रायः ७५ प्रतिशत अंश प्रोटीन से वना हुआ रहता है। उपवास की अवस्था में यही प्रोटीन एमिले-अम्लों में परिवर्तित होकर रक्त में प३वाहित होता है। लम्बे उपवास में जब तक मस्तिष्क और हृदय का भार प्रायः ३ प्रतिशत कम होता है, तब तक पेशियां का ३० प्रतिशत, यकृत का ५५ प्रतिशत और प्लीहा का ७० प्रतिशत भार कम हो जाता है। शारीरिक ऊतकों टिशूज से प्राप्त एमिनों-अम्लों के मुख्य दो कार्य हैं- (१) अत्यावश्यक अंगों को सुरक्षित रखना और (२) रक्त में ग्लूकोज की अपेक्षित मात्रा को स्थिर रखना। प्रोट्रोन नाइट्रोजन पदार्थ होते हैं। अतएव जव शरीर के प्रोटीन को उपयुक्त काम करने पड़ते हैं, तव मूत्र का नाइट्रोजन अंश बढ़ जाता है। उपवास के पहले सप्ताह में यह अंश प्रतिदिन मूत्र के साथ लगभग १० ग्राम निकलता है। दूसरे और तीसरे सप्ताह में इसकी मात्रा कुछ कम हो जाती है। यदि इस नाइट्रोजनीय अंश को वाहर निकालने में युवक असमर्थ होते है, तो वह अंश रक्त में जाने लगता है और व्यक्ति में मूत्ररक्तता (यूरीमिया) की दशा उत्पन्न हो जाती है। इसको व्यक्ति की अन्तिम अवस्था समझना चाहिए। शरीर में कार्बोहाइड्रेट और वसा के समान प्रोटीन का संचय नहीं रहता। शरीर एक जीवित यंत्र है। इसकी रचना का आधार प्रोटीन है। इस यंत्र की यह विशेषता है कि इसके सामान्य भागों के प्रोटीन उपवास काल में आवश्यक अंगों की रक्षा करते रहते हैं। शारीरिक यंत्र का सुचारू रूप से कार्य करते रहना शरीर में बनने वाले रसायनों, किण्वों (एनजाइम्स) और हार्मोनों पर निर्भर करता है। ये उपवास की अवस्था में भी बनते रहते हैं। इनके निर्माण के लिए शरीर के सामान्य भाग अपना प्रोटीन एमिनों अम्ल के रूप में प्रदान करते रहते हैं, जिससे ये रासायनिक पदार्थ बनते रहें और शरीर की क्रिया में बाधा न पड़े।

स्वस्थ शरीर के लिए प्रोटीन की दैनिक मात्रा प्रायः निश्चित है। एक युवक के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिए प्रतिदिन प्रत्येक किलोग्राम शारीरिक भार के अनुपात में लगभग एक ग्राम प्रोटीन आवश्यक है और यह आहार के मिलता है। गर्भवती स्त्री तथा बढ़ते हुए शिशु बालक अथवा तरूण को ५० प्रतिशत अधिक मात्रा में प्रोटीन आहार में रहने से शरीर को उसका विश्लेषण करके बहिष्कार करना पड़ता है जिससे यकृत और वृक्क का कार्य बहुत ही बढ़ जाता है। प्रोटीन शारीरिक यंत्र की मरम्मत के काम आता है। अतएव रोगोत्तर तथा उपवासोत्तर काल में आहार में प्रोटीन बढ़ा देना चाहिए। इन सब बातों का पता नाइट्रोजन संतुलन के लेखे जोखे से लगाया जा सकता है। यह काम जीव रसायन प्रयोगशाला में किया जाता है। यदि मूत्र के नाइट्रोजन की मात्रा भोजन के नाइट्रोजन के बराबर हो, तब इसे नाइट्रोजन संतुलन अवस्था कहते हैं। यदि मूत्र का नाइट्रोजन भोजन के नाइट्रोजन से कम हो तब इसे धनात्मक नाइट्रोजन संतुलन कहते हैं। इससे यह समझा जाता है कि आहार के नाइट्रोजन अर्थात प्रोटीन से बने नाइट्रोजन का भी बहिष्कार कर रहा है। इस अवस्था को ऋणात्मक प्रोटीन संतुलन और उपवासोत्तर काल में आहार में प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में रहने पर धनात्मक प्रोटीन संतुलन रहता है।

उपवास में कुछ दिनों तक शारीरिक क्रियायें संचित कार्बोहाइड्रेट पर, फिर विशेष, संचित वसा पर और अन्त में शरीर के प्रोटीन पर निर्भर रहती है। मूत्र और रक्त की परीक्षा से उन पदार्थों का पता चल सकता है, जिनका शरीर उस समय उपयोग कर रहा है। उपवास का प्रत्यक्ष लक्षण है - व्यक्ति की शक्ति का निरंतर ह्रास। शरीर की वसा घुल जाती है, पेशियां क्षीण होने लगती है। उठना, बैठना, करवट लेना आदि व्यक्ति के लिए दुष्कर हो जाता है और अंत में मूत्ररक्तता की अवस्था में चेतना भी जाती रहती है। रक्त में ग्लूकोज की कमी के कारण शरीर क्लांत तथा क्षीण होता जाता है और अन्त में शारीरिक यंत्र अपना काम बन्द कर देता है। अतः उपवास अपनी शारीरिक शक्ति के अनुसार करना चाहिए।

१. पुरूषार्थ सिद्धयुपाय १५७-१६०

२. धवल १२१५, ४,२६/५६/१२

❖❖❖

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन आहार - एक वैज्ञानिक विवेचन

- डॉ० सुपार्श्व कुमार जैन
दि० जैन डिग्री कालेज
वड़ौत (मेरठ)

सागार हो या अनागार, उसके जीवन में केवल तत्वचर्चा करने से अथवा शास्त्राभ्यास कर लेने मात्र से शान्ति की प्राप्ति होना असम्भव है क्योंकि जीवन में शान्ति की प्राप्ति का अन्तरंग व वहिरंग संयम के साथ घनिष्ठ सम्वन्ध है। साधक पंचेन्द्रिय व मन तथा षट्काय के जीवों की विराधना रूप विकल्पों पर नियंत्रण स्थापित करके संयम की साधना करता है क्योंकि नियम है कि कार्य की सिद्धि के लिए कारण भी विचारणीय होते हैं। अतः अशान्तिजनक विकल्पों की शान्ति के लिए तत्हेतुक इन्द्रियों व मन पर इन्द्रिय संयम के द्वारा नियंत्रण स्थापित किया जाता है तो प्राणि संयम के द्वारा छोटे-वड़े सभी जीवों की द्रव्य व भाव हिंसा से विरत होकर "मित्ती मे सव्वभूदेसु" का परिपालन किया जाता है। यह दोनों संयम मन की शुद्धि पर निर्भर हैं और मनशुद्धि आहारशुद्धि पर निर्भर है। आहार अर्थात् भोजन ग्रहण करना इस संसारी प्राणी के लिए अत्यन्त आवश्यक है, तभी तो आहार (अन्न) को ही प्राण कहा गया है।

आहार की विविधता : आहार तीन प्रकार का है -

१. तामसिकआहार - यह सवसे जघन्य और निकृष्ट कोटि का आहार है[1]। क्योंकि ऐसा आहार मदकारक होने से व्यक्ति के मन में तम अर्थात् अन्धकार उत्पन्न करते हैं अर्थात् तामसिक आहार करने से व्यक्ति हेय-उपादेय का विवेक को देता है तथा निर्विवेक और कर्तव्य शून्य होता हुआ वह व्यक्ति न केवल स्वंय के लिए अपितु दूसरों के लिए भी खतरनाक और कष्टदायक वन जाता है क्योंकि ऐसा आहार मद्य, मांस, शहद लहसुन, प्याज, पंच उदम्बर फल तथा कन्द-मूल आदि से संयुक्त होता है जिसमें षट्काय के जीवों की हिंसा अवश्यम्भावी होती है। आज विश्व में जो हत्याएं अपहरण, व्यभिचार, चोरी और अनेक अपराध विद्यमान है या हो रहे हैं उनके पीछे तामसिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आहार का ग्रहण सबल कारण है।

२. राजसिक आहार - ऐसे आहार का निर्माण अनेक प्रकार के खाद्य अखाद्य मसालों को मिलाकर, घी-तेल आदि में तलकर और विभिन्न प्रकार के विभिन्न खाद्यों का निर्माण कर तैयार किया जाता है। होटलों से लेकर खोमचे वालों तथा एक सितारा से लेकर पांच सितारा वाले होटलों में इस प्रकार का आहार तैयार होता है जो केवल इन्द्रियों के पोषण और ऐयाशी वृत्ति को उत्पन्न करता है। यह आहार गरिष्ठ से गरिष्ठ तम होता है ऐसा आहार व्यक्ति को न केवल विलासी बनाता है बल्कि विलासिता की पूर्ति के लिए अपराधी, वैश्यावृत्ति, स्त्रियों के विक्रय-क्रय, अनैतिक व विधान विरोधी भी बनाता है।

३. सात्विक आहार - वह आहार है जिसके निर्माण के लिए त्रस जीवों की हिंसा से बचा जाता है। इसमें घी, दूध, दही व विभिन्न शाक-सब्जी आदि शामिल होती हैं किन्तु एकनिश्चित सीमा तक। इस सीमा के वाद वह आहार राजसिक और उसके बाद वह आहार तामसिक हो जाता है। यह सव कुछ व्यक्ति के विवेक पर निर्भर करता है। मनशुद्धि के लिए यही सात्विक आहार उपयुक्त है जिससे संयमशुद्धि पलती है और साध्य की सिद्धि सहज हो जाती है।

संयमित जीवन वाले जैन आदि के लिए आहार न केवल सात्विक होता है। अपितु शुद्ध भी होता है। संयमियों के लिए पड़गाहते समय दाता की मन-वचन-काय की शुद्धि के साथ-साथ आहार-जल शुद्ध है भी वोलना आवश्यक होता है अन्यथा संयमी उस घर में आहार ग्रहण नहीं करता है। जैनाहार का तात्पर्य आहार कोईजैन होता है ऐसा नहीं है अपितु इसका तात्पर्य जैनों द्वारा ग्रहण किया जाने वाला शुद्ध आहार है। आहार की यह शुद्धि मूल रूप में चार वातों पर निर्भर करती है- द्रव्यशुद्धि, क्षेत्रशुद्धि, कालशुद्धि, और भावशुद्धि।

१. द्रव्यशुद्धि - आहार का निर्माण जिन-जिन वस्तुओं, वनस्पतियों आदि से किया जाता है उनकी शुद्धि को ही द्रव्यशुद्धि कहा जाता है। इसमें मूलतः अन्न, जल, दूध, दही, घी, तेल, वनस्पति, ईंधन तथा मिष्ट पदार्थ चीनी आदि शामिल हैं।

२. अन्नशुद्धि - जैसा खायें अन्न वैसा होवे मन " अतः मनशुद्धि हेतु अन्न शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। अन्न में गेहूँ दाल, चावल, सूखे मेवा तथा मसाले आदि सभी गर्भित हैं। इन सव पदार्थों को सूर्य के प्रकाश में अच्छी तरह शोध-बीन कर साफ कर लेना चाहिए जिससे एक भी त्रसजीव की संभावना न रहे। अनन्तर उसे छानं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri .

एवम् अच्छी तरह धो लेना चाहिए जिससे इनके ऊपर लगा हुआ मिट्टी गोबर आदि तथा इस पर संभावित विद्यमान सम्मूर्च्छन-जीव अर्थात् वैक्टिरिया साफ हो जायें। फिर धूप में सुखाकर रख लें। अव तो एयर-टाईट करने वाली मशीनें व डिब्बे आने लगे हैं उनमें इस वस्तुओं को अधिक काल तक सुरक्षित रखा जा सकता है। शास्त्रों में जिस वस्तु की जो मर्यादा बतलाई गई है, उसे भी अवश्य ध्यान में रकना चाहिए। हालांकि वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण मर्यादाओं में वृद्धि हो सकती है। परन्तु यह विवेक पर निर्भर करेगा। नमी आने पर वस्तु खराव हो सकती है।

३. जलशुद्धि - दोहरे किए हुए मोटे कपड़े से जल को छानकर जहां तक हो गरम कर प्रासुककर लेना चाहिए। अन्यथा जब भी जल का प्रयोग करें तभी छानकर प्रयोग करना चाहिए। छानने के बाद जिवानी कुए में या पानी में ही छोड़ देना हितकर है। छानने के वाद छन्ना को तत्काल सुखा देना आवश्यक है अन्यथा कुछ देर बाद ही उसमें वैक्टिरियां उत्पन्न होने लगेगे। इस प्रकार जलशुद्धि वाणीशुद्धि का साधन वनती है, तभी तो कहा है जैसा पीवे पानी वैसी होवे वाणी। यदि जल के छह घण्टे के अन्दर काम में लेना है तो उसमें लौंग या जीरा आदि पीस कर मिला देना चाहिए जिससे कि उसका रंग वदल जावे। यदि १२ घंटे के अन्दर काम में लेना हो तो जल को अच्छा गमर कर लेना चाहिए और यदि २४ घंटे के अन्दर काम में लेना हो तो उसे ऊवाल लेना चाहिए। इससे न केवल त्रस बल्कि सूक्ष्म वैक्टोरिया जीवों में होने वाले संक्रामक रोगों से बचा जा सकता है और यत्नाचार/अप्रमाद होने के कारण अशुभास्रव भी नहीं होकर मात्र शुभास्रव ही होता है।

४. दूधशुद्धि - गाय-भैंस को नहलाकर थन आदि को अच्छी तरह धोकर स्वच्छ वर्तन में दूध निकलना चाहिए इससे गाय/भैंस के शरीर में लगे मिट्टी गोबर आदि के तथा बर्तन के वैक्टिरिया दूध में नहीं आ पाते हैं। दूध निकालकर तभी ढक देना जरूरी है जिससे वायुमण्डल से वैक्टिरिया दूध में प्रवेश न करें, तथा उसमें संभावित वैक्टिरिया को दूर करने के लिए उसे जल्दी से जल्दी गरम कर लेना चाहिए। इस प्रकार दूध जल्दी फटता नहीं है और शुद्ध दूध की प्राप्ति होती है।

५. दहीशुद्धि - हलके तापमान वाले दूध में मीठी दही का जामन मिलकर दही जमाना चाहिए। जामन खट्टा है तो दही भी खट्टी जमेगी। जामन को साफ स्वच्छ पानी से धो लेना चाहिए। नया जामन वनाने के लिए थोड़े से दूध में ज़ीरा डाल दे तीन चार घंटे में वह जम जावेगा। कच्चे गोले के ऊपरी कठोर छिलके या चांदी के रूपयें को दूध में डालकर भी दूध जमाया जा सकता है।

६. घीशुद्धि - शुद्ध दही को बिलोकर मक्खन निकालकर तत्काल पकाकर घी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निकाल लेना चाहिए अन्यथा इसमें वैक्टिरिया की उत्पत्ति तीव्रगति से होने लगती है। और अभक्ष्य की कोटि में चला जाता है। इस प्रकार दूध से घी वनने तक २४ घंटे लगें तो घी शुद्ध कहा जाता है। पुनः प्रत्येक महीने में उसे गरम करते रहना चाहिए जिससे कोई वैक्टिरिया वहां उत्पन्न ही न होने पावे।

७. तेलशुद्धि - आजकल तीन बार रिफाइण्ड किए गए तेल वाजार में उपलव्ध हैं। गृहस्थ उसे क्रय कर पुनः उवालकर ठण्डा होने पर सुरक्षित एयर-टाइट डिव्वे में भरकर रख लेवें ।

८. शक्कर या खाण्ड शुद्धि - आजकल गन्ने से स्वयं खाण्ड या बूरा बनाना संभव नहीं है। अतः वाजार से शक्कर/चीनी क्रय करके उससे बूरा बनाकर रखना चाहिए। वह ही शुद्धि बूरा / खाण्ड है। व्रती और महाव्रती के सेवन योग्य है।

९. अन्यशुद्धि - आहार वनाने में चितना सामान प्रयोग में लाया जावे उसका पूरा-पूरा प्रयोग कर लेना चाहिए। यदि कुछ सामान वच जावे तो उसे मूल पदार्थ में कभी नहीं मिलाना चाहिए। बुन्देलखण्ड में इसे "सकरा" नाम से जाना जाता है। अर्थात् यह सकता अन्य मूल शुद्ध पदार्थ में कभी नहीं मिलाना चाहिए अन्यथा समस्त पदार्थ ही खराव हो जाने का डर रहता है।

१०. वनस्पतिशुद्ध - जो भी फल एवं सब्जी वनाना हो उसे पहले शुद्धि प्रासुक जल से अच्छी तरह धोकर चाकू से उन्हें ऊपर-ऊपर हल्के छील देना चाहिए जिससे ऊपरी भाग में धोने से वचे हुए वैक्टोरिया दूर हो जावें।

११. ईंधनशुद्धि - ईंधन का प्रयोग अतन्त सावधानी के साथ झाड़कर प्रयोग में लेना चाहिए। आजकल तो चौकों में एल.पी.जी का प्रयोग होने लगा है। गैस जलाने के पूर्व स्टोव को अच्छी तरह से साफ-पोंछ लेना चाहिए जिससे गैस जीवों का घात न हो जावे।

२. क्षेत्रशुद्धि - आहार निर्माण का स्थान क्षेत्र अर्थात् चौका साफ-सुथरा होना जरूरी है। दीवाले चूने से पुती हुई हो; ऊपर चंदोवा हो, फर्श साफ हो, कहीं पर जाले आदि न हों, बर्तन स्टील के सूखे मजे हुए साफ हों, सभी छन्ने साफ और धुले हुए हो, बर्तन खोदे हुए या गडढे वाले न हों क्योंकि उन स्थानों पर वैक्टिरिया पनपते हैं, भोजन सामग्री जालीदान अलमारियों में रखे जावें जिससे मक्खी, मच्छर या चूहे आदि अशुद्धि न कर जावें आदि सबी क्षेत्रशुद्धि के अन्तर्गत आता है।

३. कालशुद्धि - आहार का निर्माण सूर्य के प्रकाश में होना चाहिए क्योंकि अनेक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्ष्म जीवाणूओं का आगमन सूर्य के प्रकाश में नहीं होता। रात में या अन्धेरे में बना हुआ भोज्य पदार्थ अशुद्ध और अभक्ष्य की कोटि में आता है क्योंकि तब न केवल स्थावर अपितु त्रस हिंसा से भी नहीं बचा जा सकता है।

४. भावशुद्धि - दाता के मन में अतिथि के प्रति आदर-सम्मान और भक्ति होना चाहिए तथा अपने तीव्र पुण्य का उदय मानकर अतिथि को आहारादिक प्रदान करना भावशुद्धि कहलाती है। उत्तम पात्र अर्थात मुनिराज के आगमन पर मन शुद्धि-वचनशक्तिशुद्धि कार्यशुद्धि और आहार-जल शुद्धि बोलना आवश्यक है क्योंकि यह नवधा भक्ति का एक हिस्सा है।

जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि संयमशुद्धि के लिए मनशुद्धि और मनशुद्धि के लिए आहारशुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। जैनों के चौके में आहार बनाते समय सभी तरह की शुद्धियों का ध्यान रखा जाता है। यह केवल रूढि ही नहीं है अपितु वैज्ञानिक तथ्ययुक्त है। आजकल डाक्टर और वैज्ञानिक आहार जल की शुद्धि पर अधिक जोर दे रहे हैं। उनका यह दृष्टिकोण स्वास्थ्यपूरक है तो जैनाचार्यों का दृष्टिकोण धर्मपरक है जो निमित्त नैमित्तिक सिद्धान्त की अकाट्यता का दिग्दर्शन कराते है। भोजन की अशुद्धि भावों में अशुद्धि पैदा करती है जिससे आत्मचिन्तन करना अशक्य है। जिस प्रकार आहार की शुद्धि न केवल स्वास्थ्य व अहिंसा की दृष्टि से आवश्यक है ब्ल्कि आत्महित व मोक्षसाधना की दृष्टि से यह अत्यन्त आवश्यक है जिसका उल्लेख किसी डाक्ट र या वैज्ञानिकों ने नहीं किया बल्कि जैनाचार्यों ने किया है।

जैन आहार शुद्धि - एक वैज्ञानिक दृष्टि

जीव छह प्रकार के हैं- पृथिवीकायिक आदि पांच स्थावर और एक त्रस। जिन्हें बैक्टिरिया नाम से कहा गया है वे स्थावर जीव हैं। इनमें वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं प्रत्येक शरीर और साधारण शरीर। प्रत्येकशरीर वनस्पति जब निगोद जीवों सहित हो तो सप्रतिष्ठित प्रत्येक और निगोद से रहित हो तो अप्रतिष्ठित प्रत्येक कही जाती है। साधरणशरीर वनस्पतिकायिक बादर और सूक्ष्म के भेद से दो प्रकार के हैं और बादर पर्याप्त और अपर्याप्त द्विविध होते हैं। निगोदजीव और सूक्ष्म सम्मूर्छन जीवों को द्रव्युक्त से देखना संभव नहीं है और इनमें अनेक जाति के जीवों को माइक्रोस्कोप से भी देखना संभव नहीं है और आलू की एक सूई के नोक बराबर हिस्से में अनंत निगदिया जीवों को देख लिया जाता किन्तु ऐसा संभव नहीं हो सका है। अलग-अलग जाति के बैक्टिरिया अलग-अलग कार्य करते हैं जैसे दही जमाने वाले बैक्टिरिया या सूक्ष्मजीव दही जमाने का ही कार्य करते हैं इसी प्रकार पनीर,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खमीर आदि के वैक्टिरिया अलग-अलग होते हैं। वैज्ञानकों ने इनके अलग-अलग नामकरण किए हैं। कुछ वैक्टिरिया पदार्थ को खट्टा बनाते हैं तो कुछ दुर्गन्धित, कुछ उसे नीला, हरा आदि वना देते हैं, कुछ फुई पैदा करते हैं तो कुछ काई रूप को उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार खाद्य पेय आदि पदार्थों में जो रस, रूप गंध आदि के रूप में विकार दिखाई देता है वह इन्हीं सूक्ष्मजीवों वैक्टिरिया के कारण है।

इनमें कुछ वैक्टिरिया स्वास्थ्य को हानि नहीं पहुंचाते हैं वे हमारे खाद्य पदार्थों में जानवूझकर पैदा कराये जाते हैं जैसे दूध में ऐसे वैक्टिरिया प्रवेश कराकर दही जमाना जिसे इष्ट माना जाता है। हालांकि इनमें हिंसा अवश्य होती है किन्तु गृहस्थ श्रावक इस हिंसा से वच ही नहीं सकता है खाद्य पदार्थों में प्रविष्ट वैक्टिरिया उसे चलितरस रूप, दुर्गन्धत्व विवर्णत्व वना देते हैं तो वे वैक्टिरिया अनिष्ट लाते हैं ऐसे पदार्थों के भक्षण से फूड-प्वाजनिंग हो जाती है, अतः ये अभक्ष्य होते हैं। जैन आहार में इसीलिए मर्यादा काल निश्चित किया गया है। इस मर्यादा काल के वाद वस्तु अभक्ष्य हो जाती है, जल आदि अपेय हो जाता है। प्रायः यह काल अन्तर्मुहुर्त या ४८ मिनिट स्वीकार किया गया है।

पाश्चुराईरेशन -

कुछ वैक्टिरिया थोड़ी गरमी सहन करते हैं तो कुछ वहुत अधिक गरमी सहन कर सकते हैं। किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो वहुत अधिक गरमी में उत्पन्न होते हैं। अतः समस्या यह बन जाती है कि यदि पदार्थ थोड़ा गरम करते हैं तो सभी वैक्टिरिया दूर नहीं होते और यदि अधिक गरम करते हैं तो दूसरे प्रकार के वैक्टिरिया उत्पन्न हो जाते हैं। तब ऐसी स्थिति में हमें या तो पदार्थ को कुछ समय के लिए वहुत अधिक गरम किया जाये या फिर अधिक देर तक थोड़ा गरम किया जाये। जैसे दूध/जल आदि को आधा घंटे तक ६३ डिग्री तापमान पर या ३ मिनट तक ८० डिग्री तापमान पर गमर किया जाये तो सब वैक्टिरिया दूर हो जाते हैं किन्तु यह कार्य गृहस्थों के लिए कठि न है। बड़े कारखानों में वडी-२ आधुनिकतम मशीने उपलव्ध होने के कारण पाश्चराईजेशन की यह प्रक्रिया उत्यन्त सहज हो गई है। वाजार का सेवन नहीं करता है उसके लिए यह उचित है कि वह दूध जलादि को खौलाकर गरम करके उसे ठण्डा करने हेतु पानी के वर्तन में रख दिया जाये जिससे दूसरी जाति के वैक्टिरिया उत्पन्न न हो सकें। ठण्डा होने पर उसे फ्रिज में रख दिया जाये इस प्रकार दूध आदिक की मर्यादा २४ घंटे की बन जाती है।

जब आचार्यों ने ग्रन्थों का निर्माण किया तब फ्रिज आदि नहीं थे आटा मसाला दूध पानी आदि को मिटटी या कागज आदि के वर्तनों में रखा जाता था. उस हिसाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से उन्होंने पदार्थों की मर्यादा वतलाई थी। किन्तु आज उन पदार्थों की मर्यादा को वढ़ाया जा सकता है - उन पदार्थों को फ्रिज में रखकर। फिर भी आगमभीरू को ऐसा करना चाहिए जिससे आगमोक्त मर्यादाओं का उल्लंधन भी न हो और पदार्थ भी अधिक समय तक शुद्ध बने रहें।

वायु, जल आहार एवं तापमान के कारण वैक्टिरिया की उत्पत्ति होती है। जिन निर्मित पदार्थों में ये चारों हैं उनमें वैक्टिरिया की उत्पत्ति को नहीं रोका जा सकता है किन्तु सूखे पदार्थों को एयर-टाइट वर्तनों में रखकर वैक्टिरिया की उत्पत्ति को रोका जा सकता है। आहार की शुद्धता बनाये रखने के लिए और सूक्ष्मजीवों की हिंसा से बचने के लिए हमें यत्नाचार का अवलम्वन लेना होगा। आजकल वाजार में एयर-टाइट की मशीन एवं डिव्वे विक्रय हेतु उपलब्ध हैं इनको क्रय करके पदार्थों की मर्यादा में वृद्धि और आहार की शुद्धता की सहजता से प्राप्त किया जा सकता है।

सूक्ष्मजीवों अर्थात् वैक्टिरिया का निवास समस्त लोक है। समस्त वायु मण्डल में ये जीव ठसाठस भरे हुए हैं। अतः खाद्य पैयादिक पदार्थों को सदैव ढक्कर ही रखना हितकर है अन्यथा ये सूक्ष्मजीव उन पदार्थों में प्रवेश कर अभक्ष्य बना सकते है। वर्तनों में मैल लगा हो या उसमें गड्ढे पड़ गए हो, पानी छानने का छन्ना यदि चिकना हो गया हो, रसोई आदिं के छन्ने तथा अन्य वस्त्र आदि गन्दे हों या विना सावुन आदि से हाथ धोये खाद्य आदि पदार्थों को उठाया धरा गया हो तो वैक्टिरिया उसमें प्रवेशकर तीव्रगति से पनपने लगते हैं। इसके विपरीत साफ-सुथरे स्टील आदि के वर्तनों में साफ वस्त्रों में से या शरीरादि में वैक्टिरिया प्रवेश नहीं कर पाते हैं। इससे स्पष्ट है कि विना नहाये-धोये और मेले वस्त्रों आदि से पदार्थों को छूना उचित नहीं है।

होना तो यह चाहिए कि जैसे एक डाक्टर आपरेशन कक्ष में स्टेरिलाईज्ड कपड़े पहन कर ही प्रवेश करता है और अच्छी तरह धोये हुए हाथों से ही आपरेशन करता है, हमें भी विल्कुल उसी तरह करना चाहिए। तो हमारे आहार की पूर्ण शुद्धता रह सकती है और हम सत् स्वस्थ रहकर आत्महित कर सकते हैं।

अन्त में मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं विज्ञान का छात्र नहीं हूँ अतः लेख में त्रुटियां होना स्वाभाविक है। पाठक व श्रोताजन इस लेख को मात्र एक दिशाबोधक से रूप में ग्रहण करें। धन्यवाद।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्यावरण संरक्षण और जैनधर्म

- डॉ० सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती'
बुरहानपुर (उ०प्र०)

सृष्टि के आधारभूत पांच तत्व माने गये हैं - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। मनुष्य इस सृष्टि की सर्वोत्तम कृति है अतः उक्त पांच तत्वों को मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बनाया गया पृथ्वी की शस्यश्यामलता, वृक्ष सम्पन्नता, जल की स्वच्छता (निर्मलता), अग्नि की शुद्धता और ताप, वायु की शीतलता और आकाश की विशाल संरक्षकता ने मनुष्य के इर्द-गिर्द जो परिमण्डल स्थापित किया उसे हम पर्यावरण कहते हैं। पर्यावरण संरक्षण के अन्तर्गत हम समस्त चराचर जगत की सुरक्षा जिसमें संसार के सभी जीव, अजीव, भूमि, जल, वायु वनस्पति आदि आते हैं, को लेते हैं। प्रकृति स्वयं इनमें संतुलन स्थापित करती है किन्तु मानवीय आवश्यकताओं में हुई वृद्धि ने इस संतुलन को डगमगा दिया है। आज देखने में आ रहा है कि विकास की शक्ल में निवास द्वार पर दस्तक दे रहा है। हम स्वयं ही अपने संसाधनों के हन्ता बन गये हैं जिसके कारण जीवों में मनुष्य ही नहीं अपितु पशु-पक्षी भी अपने प्राण संकट में पा रहे हैं।

पूर्व में कल्पवृक्षों का सद्भाव था। जिनके दस प्रकार थे एवं जो मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार करते थे - १. भोजनांग कल्पवृक्ष - भोजन सामग्री, (२) पानांग कल्पवृक्ष - पेय पदार्थ, (३) अलयांग कल्पवृक्ष - आवास सामग्री, (४) वस्त्रांग कल्पवृक्ष - वस्त्र, परिधान, (५) भूषणांग कल्पवृक्ष - आभूषण, (६) भाजनां कल्पवृक्ष - पात्र (७) तूर्यांग कल्पवृक्ष - वाद्य, (८) मलांग कल्पवृक्ष - सुगन्ध, (९) दीपांग कल्पवृक्ष - प्रकाश के दाता एवं (१०) तेजांग कल्पवृक्ष - सूर्य के हानिकारक विकीरण के निरूद्ध करने वाले थे। कलान्तर में जब कल्पवृक्ष नहीं रहे तब मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति वृक्षों से करने लगा। वृक्ष हमारा अनेक रूपों में हितसाधन करते हैं। वे हमें ऑक्सीजन (प्राण वायु) प्रदान करते हैं। वृक्षों की पत्तियों में पाया जाने वाला क्लोरोफिल कार्बनडाइ आक्साइड को ऑक्सीजन में बदल देता है। एक वृक्ष औसतन ५० वर्ष वर्ष के जीवन में लगभग १५ लाख ७० हजार मूल्य की आक्सीजन (प्राण वायु) देकर वायु शुद्धिकरण एवं आर्द्रता को नियंत्रित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है किन्तु वृक्षों की अन्धाधुन्ध कटाई से वायुमण्डल में कार्वन डाई आक्साइड की मात्रा वढ़ रही है जिससे तापक्रम में हुई वृद्धि के कारण ध्रुवों के वर्फ पिघलाने के फलस्वरूप समुद्री सतह में हुई वृद्धि से विस्तृत भूखण्डों के जलमग्न होने की संभावना दिखाई दे रही है। एक मोटर गाड़ी प्रति मिनिट में जितनी आक्सीज़न खर्च करती है उतनी आक्सीजन में लगभग ११३५ व्यक्ति सांस लेते हैं। वृक्षों के निरन्तर कटाव से ऑक्सीजन की मात्रा अत्यधिक घट गयी है। यदि नहीं स्थिति रही तो वह दिन दूर नहीं जव हमें रसोई गैस की तरह ऑक्सीजन सिलेंडर की महीनों पहले बुकिंग करना पड़े। हो सकता हैं समय पर डिलीवरी न हो और हम मर जायें।

जैन धर्मानुसार हरे पेड़ों का काटना या उन्हें हानि पहुँचाना घोर अव्रताचरण है। मनुष्य तो क्या अहिंसाणुव्रती जानवरी भी यह दुष्कर्म नहीं करता। भगवान पार्श्वनाथ के पूर्व पर्या के जीव हाथी द्वारा हरे पत्ते न खाते हुए सूखे पत्ते खाकर गुजारा करना इसका प्रमुख उदाहरण है।

मानवीय जीवन का मूलाधार वृक्ष हैं क्योंकि उनसे ही हमारे भोजन की पूर्ति होती है। जो लोग मांसाहारी हैं तथा यह मानते हैं कि हमारा वृक्षों से कोई लेना - देना नहीं है वे वास्तव में भ्रम में हैं क्योंकि मांस पाने के लिए बेहिसाब अन्न, शाक मांस देने वाले प्राणियों को खिलाया जाता है। अमेरिका में मासांहार के काम आने वाले पशुओं जितना मक्का, गेहूँ आदि अन्न खिलाया जाता है यदि वह अन्न बच जाये तो सम्पूर्ण विश्व की भूख मिट ायी जा सकती है। यह भी तथ्य है कि जो अन्न मांस हेतु पशुओं को खिलाया जाता है उसका १० प्रतिशत ही मांस के रूप में मिलता है शेष ९० प्रतिशत तो पशुओं के हलन-चलन, पाचन क्रिया आदि में ही नष्ट हो जाता है। जवकि शाकाहार सीधे १०० प्रतिशत ही भूख मिटाने, ऊर्जा देने के काम आता है। यदि एक ओर मांस उत्पादन में प्रति टन ५ करोड़ लीटर जल आवश्यक होता है तो दूसरी ओर प्रतिट न चावल के लिए ४५ लाख लीटर व गेहूँ के लिए ५ लाख लीटर जल की आवश्यकता होती है। इससे प्रतीत होता है कि संसार की भुखमरी का कारण अन्न, जल का अभाव या अपर्याप्त होना नहीं हैं। वल्कि मांसाहार ही है। वृक्ष तो हमारे परम हितैषी हैं जो हमें छाया, फल, शीतल वायु, ऑक्सीजन एवं लकड़ी देते हैं। डा० एम० शफ़ी की यह पंक्तियां सटीक ही हैं कि -

धूप की तेज हरारत से थके राही को,
तेरे साये में ठहर जाने से बल मिलता है ।
तेरी कृपा की जमाने में नहीं मिलती मिसाल,
तुझको पत्थर से जो मारे उसे फल मिलता है ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन धर्म ने वनस्पति को जीव माना है। इसमें स्पर्शन इन्द्रिय प्राण, काय बल प्राण, उच्छवास निःश्वास प्राण और आयु प्राण ये चार प्राण होते हैं (सर्वार्थ सिद्धि २/१३/२८६)। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० जगदीश चन्द्र बसु ने भी वनस्पति में जीव नामा है। वनस्पति रक्षा को जैन धर्म प्राणी संयम मानता है। जैन धर्म में शुक्ललेखा वाले जीव को महानपुण्यात्मा माना है उसके भाव वृक्ष को तनिक भी नुकसान न पहुँचाकर मात्र फल खाने के होते हैं। प्रायः सभी जैन मन्दिरों में षट्लेश्याओं एक वृक्ष से फल पाने की सेत के आधार पर इस प्रकार दिखाया जाता है कि कृष्ण लेश्या वाला फल प्राप्ति हेतु पूरे वृक्ष को काटना चाहता है, नीललेश्या वाला मोटी शाखा काट ना चाहता है, कापांत लेश्या वाला कम मोटी छोटी शाखा काटना चाहता है, पीत लेश्या वाला छोटी पतली शाखा काटना चाहता है, पद्म लेश्या वाला डाली से फल वाला डाली से फल तोड़ने की भावना करता है जबकि शुक्ल लेश्यावाला जीव विना वृक्ष को नुकसान पहुँचाये स्वयं गिरे फल को उठाकर खाने की भावना रखता है। वास्तव में जैन धर्म प्रकृति का इसी भाव से दोहन करने की बात करता है जहाँ हमारी आवश्यकतायें भी पूरी हो जायें और प्रकृति भी सुरक्षित रहे। यह भी ध्यातव्य है कि नदियां स्वयं अपना जल नहीं पीतीं, वृक्ष स्वयं अपने फल नहीं खाते। इससे वड़ी अधार्मिकता और क्या होगी कि हम आज उसे ही नष्ट कर रहे हैं जो हमारा सर्जक एवं पालन हार है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि पर्यावरण रक्षा के जनक भगवान ऋषभदेव के पुत्र भरत एवं वाहुवली ने इसलिए दृष्टि, जल एवं मल्लयुद्ध चना होगा ताकि मानव शक्ति के ह्रास के साथ साथ प्रकृति एवं प्रकृति जीवों की हानि न हो क्योंकि दोनों की सेनाओं के बीच जो आग्नेयास्त्रों - शास्त्रों का उपयोग होता वह प्रकृति को नुकसान पहुँचाने वाला ही होता।

जैनधर्मानुसार मुनि पगविहार करते हैं एवं ४ माह पर्यन्त वर्षावास करते हैं वे विना शोधन के जल नहीं पीते और दृष्टि से शोधे बिना कदम भी नहीं रखते। जीव रक्षा हेतु ईर्यापथ शुद्धि पूर्वक गमन उनकी अहिंसक एवं पर्यावरण संरक्षण की भावना का द्योतक है। जो मुनिव्रत के अनुरागी हैं तथा एक देश व्रत का पालन करते हैं उनकी क्रियायें भी पर्यावरण विरोधी नहीं हो सकती। वर्षावास में मुनि के एक स्थान पर रहने के पीछे स्वच्छ मार्ग का अभाव नहीं बल्कि हरित्काय सद्यः जात वनस्पति को संरक्षण देना है। आज भी जैनों में ऐसी किंवदन्ती मान्यता प्राप्त एवं प्रत्यक्ष होती है कि यदि कोई जैन जंगल काटने का ठेका लेगा तो वह धनहीनता ही नहीं वल्कि वंशहीनता को भी प्राप्त होगा। आज के अशान्त व्यक्ति को वनस्पति ही शान्ति दे सकती है यह सूक्त प्रसिद्ध है कि वनस्पतयेः शान्तिः "

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria; Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रदूपित पर्यावरण ने मूक पशु-पक्षियां पर प्रवल प्रहार किया है। यह तथ्य है कि भारत में प्रतिवर्प लगभग २० हजार कस्तूरीमृग मार दिए जाते हैं। सन् १६०० से अब तक स्तनधारियों की १२० जातियां तथा पक्षियों की २२५ प्रजातियां समाप्त हो चुकी हैं। आज स्तनधारियों की ७६ प्रजातियां, पक्षियों की ४० प्रजातियां, जल,थल एवं सरीसृप जीवों की २३ प्रजातियां तता कीट पतंगों की १३१ प्रजातियां अपी अस्तित्व रक्षा के लिए मनुप्य की ओर देख रही हैं। संभावना तो यह व्यक्त की जा रही है कि ये प्रजातियां २१ वीं शताब्दी का सूरज नहीं देख सकेंगी। शिकार के शौक ने घड़याल, चीतल, मील गाय, वारहसिंगा, गैंडा, मगर, सारंग, चीता जैसे प्राणियों को दुर्लभ वना दिया है। जो लोग इसके लिए जिम्मेदार हैं वे मेरा पेट हाऊ, मैं न जानूं काऊ " तथा जीव जीवस्य भोजनम् के हिमायती हैं और इन छद्म नारों के आहार पर प्रकृति जीवों को नप्ट कर रहे हैं जवकि हमारे जैन धर्म में "जीओ और जीने दो", "सत्व जीव-रक्खणं धम्मं", एवं "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" का संदेश दिया तथा दानों में अभयदान को श्रेप्ठ माना। भगवान महावीर ने माहणओं अर्थात् किसी को मत मारो, का संदेश दिया जिसके आधार पर ही हम पर्यावरण संरक्षण एवं शुद्धि के लिए आवश्यक उक्त जीवों की रक्षा कर सकते हैं।

विगड़ते पर्यावरण सन्तुलन ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया है पृथ्वी तल से लगभग १०० किलोमीटर की ऊँचाई पर स्थिर ओजोन पर वैज्ञानिकों ने एक छिद्र देखा है। यह ओजोन गैस की वह पारदर्शी रक्षापरत है जो परा वैंगनी और व्रह्माण्ड किरणों जैसी घातक सौर-किरणों को पृथ्वी तक पहुँचने से रोकती है। विश्व में प्रतिवर्प लगभग ७५० हजार टन ऐसी विपैली गैसें छोड़ी जाती हैं जिनका ओजोन पर घातक असार होता है। कल कारखानों, परमाणु भट्टियों विमानों एवं अन्य वाहनों से निकलने वाला धुआं ओजोन परत को नप्ट करने का कारण वन रहा है। एरोसोल एवं क्लोरो फ्लोरोकार्बन रसायनों का बढ़ता प्रयोग भी इसके लिए जिम्मेदार है।

उन्नत कृषि के नाम पर वढ़ रहे रासायनिक खाद एवं घातक कीटनाशकों के उपयोग से भूमि एवं जल प्रदूपण वढ़ रहा है। भूमि की उर्वराशक्ति मर रही है और जल स्रोत सूख रहे हैं।

विद्युत के उपभोग में हो रही वृद्धि एवं निर्भरता से विद्युत चुम्वकीय प्रदूपण वढ़ रहा है जिससे मानसिक तनाव एवं रक्तचाप आदि रोग वढ़ रहे हैं। विद्युत शवदाह गृह पर्यावरण को प्रदूपित करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्यावरण प्रदुषण के विषय में सन् १९८० में अमेरिकी राष्ट्रपति ने विश्व-२०० के प्रतिवेदन में कहा था कि "यदि पर्यावरण प्रदुषण नियंत्रित नहीं किया गया तो २०३० तक तेजाबी वर्षा भूखमरी और माहामारी का ताण्डव नृत्य होगा। इससे बचाव का मार्ग जैनधर्म में समता एवं सर्वोदय की भावन बतायी है।

परमाणु बम हाइड्रोजन बम एवं अन्य नाभिकीय शस्त्रों के भण्डार से उत्पन्न भय तथा उनके कचरे को निष्पादन करने की विधि का नियमानुसार प्रयोग न होने से पर्यावरण संतुलन बिगड़ रहा है। हिरोशिमा एवं नागासाकी की बम प्रहार की पुनरावृत्ति कभी भी हो सकती है। जिस बम को हिरोशिमा पर पटका गया था उस बम की क्षमता मात्र १२५०० टन (टी.एन.टी) थी, आज विश्व के पास १२००० से १५००० मेगावाट वाले नाभिकीय शस्त्र हैं, यदि इनका उपयोग हो जाय तो ५० लाखटन धुआं हवा में भर जायेगा, सूरज की ९० प्रतिशत रोशनी ढंक जायेगी, सम्पूर्ण चराचर जगत क्षत-विक्षत हो जायेगा। दूसरी ओर परमाणु कचरा लाखोंटन की मात्रा में समुद्र में विसर्जित किया जा रहा है जिससे असंख्य समुद्री जीव मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं तथा भविष्य में भी इस कचरे में विस्फोट की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। जैन धर्म एवं जैनाचार्य जिन्हें अणुशक्ति का सम्यक ज्ञान था वे शस्त्र रखने तथा हिंसा के उपकरण किसी दूसरे को देने या बेचने को पाप मानते थे। यह भली प्रकार विदिद है कि परमाणु अस्त्रों के भण्डारण के पीछे दूसरे देश को नुकसान पहुँचना या जीतना है जिसे जैन धर्म चोरी की संज्ञा देता है। अचौर्य भावना वाला जीव किसी की भूमि या धन हड़पने की तो बात ही दूर, मन से भी ऐसी विचारने को चोरी का भाव मानता है। दूसरी ओर जैन धर्म की कर्म व्यवस्था कहती है जो तुम्हारे कर्म में है उससे अधिक नहीं मिलेगा। फिर लोभ की भावना क्यों रखना। यदि जैन धर्म की अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह, अकषाय एवं निर्लोभता को कोई स्वीकार ले तो परमाणु बम गिराना तो दूर बनाने की भी न सोचे और परमाणु अप्रसार निषेध संधि की आवश्यकता ही न पड़े।

बढ़ते औद्योगिकीकरण ने पर्यावरण पर अनेक संकट लादे हैं। उद्योगों, कल-कारखानों की चिमनियों से उठने वाला धुआं पर्यावरण को विषाक्त बना रहा है। औद्योगिकी विषैली गैसों से कैंसर व त्वचा रोग तथा धुएँ से आँखों व फेफड़े के रोग होते हैं। यूनियम कार्बाइड, भोपाल से रिसी गैस हजारों जीवों की जानलेवा सिद्ध हुई है। बढ़ते औद्योगीकरण के कारण विश्व से कोयला ११ वर्षों के लिए पैट्रोलियम २० वर्षों के लिए और प्राकृतिक गैस ४० वर्षों के लिए ही बचा है। उद्योगों से निकलने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाला जहरीला मल नदियों के जल को दूषित बना रहा है। औद्योगिकीकरण की प्रकृति ने व्यक्ति को मात्र उपभोक्ता बना दिया है जिससे सामाजिक पर्यावरण भी नष्ट हो रहा हैं। रेडियों टी वी, कम्प्यूटर के उपयोग से बढ़ते विकिरण से नेत्रकैंसर, रक्त कैंसर एवं आनुवंशिकी संवाहिनी में विकृतियों की संभावनायें बढ़ गयी हैं। जैन धर्म संतोष पर बल देता है। आज जो औद्योगिक प्रतिस्पर्द्धा है वह मात्र धन कमाने की होड़ है जिसमें दूसरे देशों को भेजने के लिए व्यक्ति अपने प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट कर रहा है। जैन धर्म सादगी व स्वावलम्बन का पक्षपाती है। वह आवश्यकताओं की पूर्ति को तो अपरिग्रह के लघुरूप परिग्रह परिणाम व्रत के अन्तर्गत उचित मानता है किन्तु दूसरे के लिए स्वयं के संसाधनों को नष्ट करना उचित नहीं मानता। अपरिग्रह-जरूरतों को सीमित करने पर जोर देता है। फैशन के इस दौर में वस्तुओं की उपयोगिता तो नहीं बढ़ी किन्तु अनुपयोगिता एवं संग्रह की प्रकृति अवश्य बढ़ी है। अंततः इसका प्रभाव उद्योगों पर पड़ता है और मांग बढ़ जाती है परिणामतः १. प्राकृतिक संसाधन नष्ट होते जा रहे हैं (२) औद्योगिक प्रदूषण बढ़ रहा है (३) मानव शक्ति का दुरुपयोग हो रहा है। वास्तव में हमें अपरिग्रह प्राकृतिक संसाधनों की आवश्यकतानुसार उपयोगिता सिखाता है। जो है सो सबको मिले (सर्वोदय) एवं राष्ट्रीय धनसम्पन्नता को बढ़ावा देता है। प्रकारान्तर से यह उद्योगों से होने वाले पर्यावरण प्रदूषण को भी बचाता है।

आजकल उद्योग, कल कारखाने, मोटर वाहन, विमान, तेज संगीत ध्वनि विस्तार यंत्र ध्वनिप्रदूषण के कारक बन गए हैं। वैज्ञानिक मान्यतानुसार ७० देसीबल से अधिक शोर हानिकार माना जाता है। ऊर्जा के आकलन में मोटरसाइकिलों डीजल गाड़ियों का शोर ९० डेसीबल, छापाखाना एवं कल कारखानों का शोर १०० से १२० डेसीबल, रॉक, पाप, रैप, डिस्को आदि संगीत का १२० से १३० डेसीबल जेट विमानों का १४० १५० डेसीबल तता राकेट का १८० डेसीबल शोर मापा गया है। इस ध्वनि विस्तार. तथा तज्जन्य पर्यावरण प्रदूषण से मानसिक तनाव एवं अस्थिरता, कर्णशक्ति की मन्दता एवं बहरापन बढ़ रहा है। जैनाधर्म में मुनि को रात्रि मौन तथा मुनि एवं सद गृहस्थों को मौन से भोजन करना, सामायिक, जप ध्यान आदि में मौन रहना इष्ट माना है। यह मौन संकेत ध्वनि को सीमित रखने की भावना का प्रतीक ही प्रतीत होता है।

हमारे तीर्थकर बड़े ही प्रकृति प्रेमी एवं प्रयावरण के रक्षक थे उन्होंने तप के लिए शाल्मली, बरगद, अशोक, अश्वत्थ, जामुन आदि वृक्षों के तल भाग को चुना,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्वाण प्राप्त किया तो पहाड़ियों से, ताकि तीर्थभूत उन स्थानों का पर्यावरण सुरक्षित रहे सम्पूर्ण जीव प्रिय हैं इसलिए चिन्हों में वृषभ, हाथी, घोड़ा, वन्दर गेंडा, महिष, शूकर, सेही, हिरण, वकरी सर्प,शेर, आदि परस्पर विरोधी थलचर जीवों, चक्रवाक जैसे नभचर जीव मछली, कछुआ जैसे जलचर जीव एव लाल कमल, कल्पवृक्ष आदि वनस्पतियों को स्थान दिया मानो कह रहे हो सम्पूर्ण प्रकृति मेरे लिए प्रिय है।

भगवान के गर्भ में उतने पर माता जो सोलह स्वप्न देखती है उसमें मछली, निर्मल सरोवर, निधूर्म अग्नि आदि भी पर्यावरण संरक्षण की प्रेरणा देते हैं।

हमारे मुनिराज पर्यावरण संरक्षण के अनुकरणीय उदाहरण हैं उनका अस्नान मूलगुण जल संरक्षण, भूमि शयन, वन संरक्षण, पाणि में आहार खनिज धातु संरक्षण, अदन्त धावन वनस्पति संरक्षण का प्रतीक माना जा सकता है। तपस्यारत मुनियों के ऊपर वावी वना लेने पर भी वे उन जीवों को दुख नहीं देते, हरिण उनसे अपने शरीर की खाज खुजलाते हैं। धन्य है वे मुनिराज जो स्वयं दुख झेलकर भी अन्यजीवों के विघात का विचार भी मन में नहीं लाते। उनकी पीछी भी मयूरी द्वारा परित्यक्त पंखों से निर्मित होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनधर्म के सभी सिद्धान्त जल छानकर पीना, रात्रि में भोजन नहीं करना, रात्रि में अग्नि नहीं जलाना, पानी का अपव्यय नहीं करना, विना देखे भूमि की शुद्धि नहीं करना, यहां तक कि अभिषेक के लिए जल भी देव क्षीरसागर से लाते हैं जिसमें जीव नहीं होते। इन सब सिद्धान्तों के आलोक में एक वात स्पष्ट दृष्टि गोचर होती है कि पर्यावरण का संरक्षण जैनधर्म की नीतियों पर चलकर ही संभव हो सकता है। अन्त में लोगों से यही निवेदन है कि

जिन्हें फिजूल समझकर बुझा दिया हमने।
वही चिराग जलाओ तो रोशनी होगी ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्यकारिणी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा समिति, सहारनपुर

अध्यक्ष	श्री मंगल किरण जैन
वरिष्ठ उपाध्यक्ष	श्री विशाल चन्द जैन
उपाध्यक्ष	१. श्री सुरेश चन्द जैन
	२. श्री मृगेन्द कुमार जैन
	३. श्री नरेश चन्द जैन
	४. श्री इन्द्र सैन जैन
	५. श्री धर्म दास जैन
	६. श्री सुभाप चन्द जैन चौधरियान
	७. श्री कुलभूपण जैन आवास विकास
	८. श्री श्रीचन्द जैन
	९. श्री डा० पवन कुमार जैन
महामंत्री	श्री विरेश्वर प्रसाद जैन
मंत्री	१. श्री नरेश चन्द जैन एडवोकेट
	२. श्री अनील कुमार जैन कलकत्ता वाले
	३. श्री शान्ति कुमार जैन सर्राफ
अति० मंत्री	१. श्री विशाल चन्द जैन हौजरी वाले
	२. श्री अशोक जैन (वेहट वाले)
	३. श्री दीपक जैन
	४. श्री अरविन्द जैन
	५. श्री मुकेश जैन (संगियान)
	६. श्री सुधीर जैन (दाल वाले)
कोषाध्यक्ष	श्री विजय कुमार जैन सर्राफ
मेला मंत्री	श्री जितेन्द्र कुमार जैन
उपमेला मंत्री	१. श्री राजेन्द्र कुमार जैन
	२. श्री शैलेन्द्र कुमार जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समितियां एवं संयोजक

१. पंडाल ममिति	१. श्री दिनेश जैन मर्राफ
	२. श्री राजेन्द्र जैन पत्थर वाले
२. स्टेज निर्माण	१. श्री शैलेन्द्र कुमार जैन
३. स्टेज संचालन	१. श्री जितेन्द्र जैन (गैस वाले)
	२. श्री अशोक जैन (वेहट वाले)
४. विजली एवं माउण्ड	श्री चक्रेश कुमार जैन (कुमार इजि०)
५. सांस्कृतिक कार्यक्रम	१. श्री सतीश चन्द जैन (सर्राफ)
	२. श्री श्रीपाल जैन (ठकेदार)
६. विधान एवं पूजन	१. श्री सुभाप चन्द जैन (चौधरियान)
	२. श्री मुनील कुमार जैन (सर्राफ)
७. भण्डार	१. श्री अमर कुमार जैन (आवास विकास)
	२. श्री आर्दश कुमार जैन (छत्तावारू मल)
८. साधु सेवा समिति	१. श्री श्रेयांश कुमार जैन (चौधरियान)
	२. श्री अरूण कुमार जैन
	३. श्री रविन्द्र कुमार जैन
९. प्रतिष्ठाचार्य व्यवस्था	१. श्री इन्द्र सैन जैन
	२. श्री रमेश चन्द जैन (जैन वाग)
१०. सुरक्षा	१. श्री महेन्द्र जैन (जैन बाग)
	२. श्री कुलभूषण जैन (प्रिंसिपल)
११. प्रचार एवं छपाई	१. श्री विशाल चन्द जैन (होजरी वाले)
	२. श्री अनुज जैन (गैस वाले)
१२. स्वागत एवं सूचना	१. श्री रमेश चन्द्र जैन (अहमदबाग)
	२. श्री सुभाष जैन
१३. जल व्यवस्था	श्री प्रमोद कुमार जैन
१४. सफाई एवं जन मुविधाएं	श्री रवि सैन जैन
१५. जुलूम व्यवस्था	१. श्री अनिल कुमार जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	२. श्री चन्द्र मोहन जैन
	३. श्री नरेश चन्द्र (गर्ग) जैन
	४. श्री पवन कुमार जैन
१६. यातायात एवं पार्किंग	श्री कैलाश चन्द जैन (रामपुर वाले)
१७. बाजार व्यवस्था	१. श्री सुधीर कुमार जैन (सर्राफ)
	२. श्री विजय कुमार जैन (शोरमियान)
१८. चिकित्सा	१. श्री पवन कुमार जैन
	२. डा० अजय कुमार जैन
१९. जलपान	श्री मृगेन्द्र कुमार जैन
२०. हैलीकाप्टर व्यवस्था	श्री दीपक जैन (गर्ग)
२१. श्री भगवती मन्दिर निर्माण	श्री शान्ति कुमार जैन (सर्राफ)
२२. कलश क्रय एवम् सिक्का निर्माण	श्री अशोक जैन (रंग वाले)
	श्री प्रवीण जैन (सर्राफ)
२३. धोती दुप्पटा क्रय	१. श्री रमेश चन्द जैन (कोर्ट रोड)
	२. श्री राज कुमार जैन (कपड़े वाले)
२४. माला मुकुट क्रय	१. सुरेन्द्र कुमार जैन
२५. पान्डुक शिला	१. श्री दिनेश कुमार जैन
२६. अमानत कक्ष	श्री दि० जैन मित्र मण्डल (बड़तला)
२७. जूता चप्पल व्यवस्था	श्री नेम चन्द जैन
२८. आवास	१. श्री कुलभूषण जैन (आवास विकास)
	२. श्री मनोज जैन (जैन बाग)
२९. भोजन व्यवस्था	१. श्री राजकुमार (मंगियान)
	२. श्री संजय जैन
३०. गैस ईंधन आदि	श्री विनोद कुमार
३१. शाकाहार सम्मेलन	श्री नरेश चन्द जैन
३३. सराक सम्मेलन	डा० नीलम जैन
३४. महासमिति-सम्मेलन	श्री विजय कुमार जैन (सर्राफ)

***

4496
29-1-99
(का. हि. वि. वि.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narla, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi